श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्री हनुमते नमः

श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः

❃ मंगलाशासन ❃

दासोऽहं कोशलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनुमाञ्शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः॥

मैं सहज ही परम पुरुषार्थी श्रीरामचन्द्र जी का दास हूँ। शत्रु की सेना का संहार करने वाला मैं पवन पुत्र हूँ। मेरा नाम हनुमान है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्॥

इस विश्व में सभी सुखी हों। सभी निरोग हों। सब कल्याण-मंगलों का दर्शन करें, कोई भी लेशमात्र दुःख का भागी न हो।

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।
सर्वः सद्बुद्धिमाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु॥

कठिनाइयों से, विपत्तियों से सब त्राण पायें, सब मंगलों का दर्शन करें, सब सद्बुद्धि को प्राप्त हों और सब सर्वदा-सर्वत्र आनन्द लाभ करें।

दुर्जनः सज्जनो भूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात्।
शान्तो मुच्येत बन्धेभ्यो मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत्॥

दुष्ट लोग सज्जन हो जायँ, सज्जन शान्ति प्राप्त करें, शान्तजन बन्धन से मुक्त हो जायँ और मुक्तजन दूसरों को बन्धन से मुक्त करें।

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः।
गो ब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु॥

प्रजाजनों का कल्याण हो। राजा लोग न्याय युक्त मार्ग से पृथ्वी पर शासन करें। गौओं एवं ब्राह्मणों का सर्वदा मंगल हो। सम्पूर्ण लोक सुखी होवें।

काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी शस्यशालिनी।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः॥

बादल समय पर वर्षा करें, पृथ्वी धान्य से समृद्ध हो, यह देश (भारतवर्ष) क्षोभ रहित हो जाय और ब्राह्मण निर्भय हो जायँ।

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां,
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे,
आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी॥

विश्व-ब्रह्माण्ड का कल्याण हो, दुष्ट लोग शान्त हो जायँ, सभी प्राणी अपनी बुद्धि के द्वारा एक दूसरे का भला सोचें, मन सदा भलाई और मंगल का ही चिंतन करे एवं हम सबकी बुद्धि बिना किसी हेतु के भगवान में आविष्ट हो जाय।

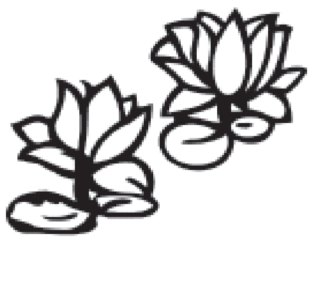
राधा पुनातु जगदच्युत दत्त चित्ता।

श्रीकृष्ण में समर्पित है चित्त जिनका ऐसी राधारानी सारे जगत को पवित्र करें।

वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानि च।
वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृप॥

वृन्दावन का हरा भरा वन, अत्यन्त मनोहर गोवर्धन पर्वत और यमुना नदी के सुन्दर सुन्दर पुलिनों को देख कर भगवान श्रीकृष्ण और बलरामजी के हृदय में उत्तम प्रीति का उदय हुआ।

❋



श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्री हनुमते नमः श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः

❋ गुरु महिमा ❋

१.–ईश्वर परम दयालु है। तभी हम लोग सुखपूर्वक रह रहे हैं। यदि हमारे दोषों को प्रभु देखें तो एक क्षण भी हमको सुख न मिले। जैसे अबोध शिशु के दोषों को देखकर माता-पिता उन पर ध्यान नहीं देते हैं, उसी प्रकार संसारी पिता-माता से भी कोटि गुना दयालु ईश्वर हम जीवों के दोषों पर ध्यान नहीं देता है। हम पग-पग पर अनेक अपराध करते हैं। भगवत् कृपा से सत्संग प्राप्त हो, जीव ईश्वर की शरण में पहुँच जाये तो वह निष्पाप व निर्भय हो जाता है। ईश्वर का नियम है कि वह किसी संत सद्गुरुदेव की सिफारिश के बिना किसी को नहीं अपनाता है।

गुरुदेव के रूप को धारण कर ईश्वर ही अपनी प्राप्ति का उपाय बताता है। प्रत्येक शिष्य का गुरु ईश्वर ही होता है। ईश्वर और गुरु एक हैं फिर भी वह ईश्वर जब गुरु रूप धारण करता है तब ईश्वर की अपेक्षा अधिक दयामय एवं क्षमाशील होता है। गुरु भक्त पर ईश्वर प्रसन्न रहता है। इतिहास में जिन लोगों ने गुरुवाणी में विश्वास किया उन्हें प्रत्यक्ष फल मिला। कल्याणकारी शिक्षा देने वाले को गुरु कहते हैं। सर्वप्रथम शिक्षा देने वाले पिता-माता हैं। वे गुरु हैं। उनमें श्रद्धा विश्वास रखकर उनकी सेवा करनी चाहिए। वर्णमाला तथा लौकिक व्यवहार की शिक्षा देने वाले गुरु हैं। ईश्वर को प्राप्त कराने वाली शिक्षा देने वाले सद्गुरु होते हैं। लोक में कोई ज्ञान बिना गुरु के नहीं होता हैं तो फिर ईश्वरीय ज्ञान बिना गुरुदेव के कैसे हो सकता है। गुरुवाणी में विश्वास से परधाम गए गुरु वापस आये और गंगा में गुरु भाव होने से चरणों के नीचे कमलदल प्रगट हो गए।

परोपकारी गुरु श्रीनारद जी, कपिलभगवान् हैं। पयहारी कृष्णदास जी महाराज कलियुग में श्रेष्ठ सद्गुरुदेव हैं। गुरुदेव दया करते हैं तो सम्पूर्ण ज्ञान एवं सम्पूर्ण भक्ति की प्राप्ति क्षणभर में मनुष्य को हो जाती है। जय गुरुदेव। गुरुदेवाय नमः।

२.–**'गुरुर्ब्रह्मागुरुर्विष्णुः'** यह प्रसिद्ध है। सत्य भी है। जैसे पिताजी माता में वीर्य स्थापित करके पुत्र को जन्म देते हैं वैसे ही गुरुदेव मंत्र और उपदेश देकर साधन करने योग्य शरीर को जन्म देते हैं। द्वितीय जन्म इसीलिए कहते है। पुत्र बिन्दु सन्तान है, शिष्य नाद वंश है। साधन देह का दाता होने से गुरु ब्रह्मा है। साधन देह की साधना का पालन, रक्षण गुरुदेव अपनी कृपा शक्ति से करते हैं अतः गुरुदेव विष्णु हैं। स्थूल-भौतिक शरीर का जैसे नाश होता है उस प्रकार सूक्ष्म का नाश नहीं होता है। गुरुदेव उस सूक्ष्म और कारण शरीर का नाश कर देते हैं। जिससे आवागमन का चक्र बंद हो जाता है तब दिव्य पार्षद-परिकर शरीर से सदा इष्टदेव की सेवा में स्थिति होती है। अथवा इच्छा भावनानुसार कैवल्यादि मोक्ष की प्राप्ति होती है अतः आत्यान्तिक प्रलयकर्ता गुरुदेव महेश्वर हैं।

३.–श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुदेव के लिए न बंधन है और न मोक्ष है। अखण्ड़ ज्ञान से युक्त हैं अतः ब्रह्म हैं। शरीर दृष्टि से गुरुदेव एक मनुष्य दीखते हैं पर मनुष्य नहीं हैं। जैसे श्रीराम, श्रीकृष्ण मनुष्य दीखते थे, पर मनुष्य नहीं वे ब्रह्म थे। सब प्रकार के भेद भावों से रहित थे। उसी प्रकार गुरु साक्षात् परं ब्रह्म हैं। जैसे मंदिर में अर्चा विग्रह से विराजकर प्रभु दर्शन और सेवा का सुयोग हमको देते हैं उसी प्रकार गुरुदेव का स्थूल विग्रह कृपा विग्रह है। हमें इसी का दर्शन प्राप्त है। इसी की सेवा और ध्यान संभव है, व्याप्त का नहीं। संत सद्गुरुदेव पूजनीय हैं।

४.–परमार्थ के लिए गुरु का आश्रय लिया जाता है और गुरु भी परमार्थ की सिद्धि के लिए शिष्य को आश्रय दें तब लाभ संभव है। लौकिक स्वार्थ की सिद्धि के लिए गुरु शिष्य संबंध अर्थहीन है। बाजीगर की तरह कुछ चमत्कार दिखाने वाले, शिष्य समुदाय को बढ़ाने वाले तथा अपने को भगवान या जगद्गुरु घोषित करने वालों का आश्रय लेने से लौकिक स्वार्थ शायद सिद्ध हो जायगा परमार्थ नहीं। प्रतिष्ठा, भोजन आवास आदि की सुविधाएँ शिष्य से गुरु और गुरु से शिष्य यदि चाहते हैं तो समझो कि एक दूसरे को ठगने का प्रयत्न करते हैं।

५.–जिसमें त्याग तितिक्षा है, जो संग्रह परिग्रह से रहित है वे ही सन्त सद्गुरुदेव हैं। वेषमात्र का वन्दन सेवन करने से हानि नहीं है लाभ है पर तुच्छ भाव हृदय में

रहने से गुरुत्व का नाश हो जाता है। हितोपदेष्टा–कल्याणकारी शिक्षा देनेवाला गुरु है। गुरु की आज्ञा मानने वाला ही शिष्य है।

६.–भगवान श्रीकृष्ण जगद्गुरु हैं। जहाँ–जहाँ से हितकारी उपदेश प्राप्त होते हैं वे सब गुरुतत्व हैं। श्रीकृष्ण ही सब गुरुओं में व्याप्त होकर फिर उपदेश देते हैं। प्रत्येक श्रद्धालु शिष्य का गुरु श्रीकृष्ण का स्वरूप है। सर्वत्र उपदेशक श्रीकृष्ण ही हैं। सर्वत्र गुरुतत्व श्रीकृष्ण ही हैं। इस प्रकार श्रीकृष्ण और गुरुदेव एक हैं इनमें अभेद है। **'संत सबै गुरुदेव हैं व्यासहिं यह परतीति।'** हरिराम जी व्यास कहते हैं कि मुझे यह विश्वास है भक्त–सन्त गुरुदेव हैं। **'संत भगवन्त अन्तर निरन्तर नहीं किमपि मति विमल कह दास तुलसी॥'** विमल बुद्धि से विचारकर श्रीतुलसीदास जी कहते हैं कि सन्त और भगवन्त में नाम मात्र का भी अन्तर नहीं है। इस प्रकार भक्तमाल का दिव्य सत्य सिद्धान्त ही सत्य है कि (संत) भक्त, भक्ति, भगवन्त, गुरु ये चारों एक हैं इनमें कोई अन्तर नहीं है। इनके चरणकमल की वन्दना करने से सभी प्रकार के विघ्नों का नाश होता है। यह समझ में आ जाय, इस सिद्धान्त में विश्वास हो जाय तो कल्याण है। इससे ही शांति, भक्ति की प्राप्ति होती है। श्रीभक्तमाल का, श्रीगुरुदेव भगवान का यह वाक्य हमारे लिए मान्य है कि **'बिना भक्तमाल भक्ति रूप अति दूर है।'** संत संग में भक्तमाल ही प्रधान है। भक्तमाल में भागवत, रामायण आदि के सारांश आ जाते हैं।

७.–संत सद्गुरुदेव में श्रद्धा की आवश्यकता है। जहाँ पर श्रद्धा होगी वहीं पर प्रभु अपना रूप प्रकट करके अनुभव करा देते हैं। अश्रद्धा के द्वारा दिया गया दान, हवन तुच्छ फल देता है। श्रद्धापूर्वक थोड़ा दान भी महान फल देता है। शिष्य परदेश जाने लगा तो गुरु ने कहा कि वापस आवोगे तो रहस्य की बात बताऊँगा। वापस आते–आते गुरु का शरीर छूट गया पर अपनी श्रद्धा के कारण उसने गुरु के शरीर त्याग को स्वीकार नहीं किया। बिना मुझे उस बात को बताये गुरुदेव भगवान वैकुण्ठ नहीं जा सकते हैं, गुरु की वाणी में शिष्य का विश्वास था अतः गुरुदेव वैकुण्ठ से वापस आ गए और कहा–संत में मुझसे अधिक श्रद्धा रखकर सेवा करो। गुरु वचन में विश्वास से रहस्यमय उपदेश मिला। वैकुण्ठ जाकर कोई वापस नहीं आता है पर शिष्य की श्रद्धा ने गुरु को वापस बुला लिया। पुनः जीवित कर लिया। शिष्य ने गुरु को जिलाया।

८.–गुरुदेव परदेश जाने लगे तो शिष्य से कहा कि गंगा जी को गुरु मानो। मेरे स्थान पर उन्हें प्रणाम करो। शिष्य ने गंगा जी में स्नान, वस्त्र धोना बंद कर दिया गुरु के आने पर भी गंगा में गुरुभाव बना रहा। लोगों के मन में गुरु भक्ति दृढ़ करने के लिए गुरु ने गंगा में प्रवेश करके शिष्य से वस्त्र माँगे। गुरु आज्ञा पालन करना है, वस्त्र देना है पर गंगा में पैर नहीं रखना। धर्म संकट के समय धर्म की निष्ठा की रक्षा स्वयं भगवान करते हैं। कमलपत्र प्रकट हो गए। उन पर चलकर वस्त्र दिया। गुरु वचनों में विश्वास का यह अद्‌भुत दृष्टान्त है।

९.–जिस प्रकार ईशतत्व सर्वव्याप्त है उसी प्रकार गुरुतत्व सर्वव्याप्त है। गुरु में और कृष्ण में भेद नहीं है **'कृष्णं वन्दे जगद्‌गुरुम्।'** कृष्ण ही गुरु रूप से मिलकर उपदेश देते हैं। गुरु सेवा से कृष्ण कृपा सुलभ होती है। तात्पर्य यह कि संत, भगवन्त, गुरु में एकता है। संत-भगवन्त-गुरु कृपा निरन्तर जीवों पर बरसती रहती है। जो साधक सात्विक हैं वे कृपा को पचा लेते हैं और पुष्ट हो जाते हैं। उनका ज्ञान, बुद्धि, भक्ति सब कुछ पुष्ट हो जाता है। जो कृपा को नहीं पचा पाते हैं वे दुष्ट हो जाते हैं। जैसे पौष्टिक पदार्थ पचेगा तो शरीर पुष्ट होगा। अति मात्रा में सेवन किया गया पौष्टिक तत्व जब नहीं पचता है तो उलटे शरीर में रोग पैदाकर देता है। इसलिए कृपा का अनुभव प्रत्येक परिस्थिति में करना चाहिए। यदि प्रभु की कृपा न हो तो हमारी जिह्वा पर प्रभु का नाम भी नहीं आ सकता है।

१०.–गुरु पूर्णिमा-भगवान वेदव्यास की जयन्ती ही गुरु पूर्णिमा है। इस दिन व्यास, संत, गुरुजन पूज्य हैं। नित्य ही पूजा होती है पर गुरु पूर्णिमा को पूजा विशेष होनी चाहिए। इस अवसर पर गो-सन्त सेवा की जानी अति उत्तम है।

११.–पूजा से तात्पर्य-पंचोपचार, षोडशोपचार, राजोपचार से है। यथासमय, यथा शक्ति प्राप्त उपचारों से पूजन करना चाहिए। इन उपचारों के साथ श्रद्धा-प्रेम की ही प्रधानता है। वस्तुएँ गौण हैं। श्रद्धा की अधिकता से ही श्रेष्ट उपचारों का संग्रह होता है। पूज्य का आदर, उनकी आज्ञा का पालन ही मुख्य पूजा है।

१२.–गुरु तत्व से परे कोई तत्व नही है। **'नास्ति तत्वं गुरोः परम्'** ऐसा कहकर यही जनाया गया कि ईश्वर तत्व ही गुरुतत्व है। अपने से विद्या, बुद्धि, आयु मे श्रेष्ठ सभी गुरु हैं। जो लोग अपनी दीनता से सभी जीवों को अपने से श्रेष्ठ मानते हैं उनके लिए गुरुतत्व सर्वव्याप्त है।

१३.–**'संत सबै गुरुदेव हैं व्यासहिं यह परतीति।'** प्रथम मंत्रदाता में, उपदेष्टा में क्रम-क्रम से सभी में गुरु भावना पुष्ट होगी। व्यापक गुरुतत्व का बोध हो जायगा।

१४.–संसार की सभी वस्तुएँ, सभी प्राणी शिक्षाप्रद हैं। शिक्षाग्राही को सर्वत्र शिक्षा प्राप्त होती है। शिक्षा की ग्राहकता न होने पर किसी बड़े से बड़े विद्वान की शिक्षा प्रभाव नहीं करती है। जो प्रभु से मिलन का मार्ग दिखावे वही गुरु है। जिसके वचनों में हमें श्रद्धा विश्वास है उसी में गुरुत्व है। झालीरानी को रैदासजी में गुरुत्व दिखाई पड़ा। प्रेम भक्ति की शिक्षा जहाँ भी मिले वहीं से लेना चाहिए। रानी रत्नावती ने अपनी दासी से शिक्षा ग्रहण की।

१५.–अनुकूल आचरणों से तथा प्रतिकूल आचरणों से दोनों से दत्तात्रेयजी ने शिक्षा ली। मधुमक्खी संग्रह से नष्ट होती है यह प्रतिकूल आचरण से शिक्षा ग्रहण है। बाण बनाने वाले से एकाग्रता की शिक्षा अनुकूलाचरण से है। तात्पर्य यह कि शिक्षाग्राही सर्वत्र शिक्षा लेता है और गुरुभाव को भी रखता है। गुरुओं में पिंगला आदि की गणना हुई और दत्त भगवान ने सर्वत्र अपनी श्रद्धा रखी।

१६.–**'कृष्णं वंदे जगद्गुरुम्।'** गुरुओं के गुरु भगवान कृष्ण हैं। अर्जुन को श्रोता बनाकर गीता में, उद्धव को श्रोता बनाकर श्रीभागवत में सभी मनुष्यों के लिए उपदेश दिए हैं। सारे जगत का कल्याण करने वाले उपदेश हैं अतः वे जगद्गुरु हैं। स्वयं ब्रह्म से उत्पन्न जगत भी ब्रह्म है। ज्ञानी भक्त की दृष्टि में संसार नहीं है ब्रह्म ही है। अनेक रूपों को धारणकर प्रभु ही इस जगत के रूप में हैं। ज्ञानी भक्त की दृष्टि में संसार नहीं है और विमुख नास्तिक की दृष्टि में ब्रह्म नहीं है। कपूर की गंध को कुत्ता और केशर की गंध को गधा नहीं पहचान सकता।

१७.–भावुक जिसका अनुभव करता है उसे नास्तिक नहीं जान सकता है। जो पदार्थ रागी, विषयी को प्रिय हैं वे विरागी को अप्रिय होते हैं। रागी को मान-बड़ाई अमृत के समान लगती है। विरागी को वह विष के समान प्रतीत होती है। संसार के सुख तो तुच्छ और क्षणिक हैं देवताओं के सुख भी विरागी को अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर पाते हैं। संसार के सुखों से मन को हटाने पर परमात्म सुख अपने आप मिलने लग जाता है। श्रीकृष्ण ने गोवर्धन के रूप में प्रकट होकर अपने को सबके लिए सुलभ कर दिया। गोवर्धन को समझने से श्रीकृष्ण तत्व समझ में आ जाता है। बड़े भारी वजन

और अति हल्के प्रभु हैं। सब गुरुओं के गुरु गोवर्धननाथ हैं इसी से गुरु पूर्णिमा को अपार जन, देव, दानव, मानव आकर दर्शन और प्रदक्षिणा करते हैं।

१८.–जो स्वयं अपना उद्धार न कर सके उसे दूसरे के उद्धार का भार नहीं लेना चाहिए। सत्संग में भक्त भगवन्त की चर्चा सुनकर लोगों का मन दीक्षा ग्रहण करने का होता है। विशेष आग्रह को देखकर भगवान का नाम सुनाकर उन्हें वैष्णवता की कुछ बात बताता हूँ। उन सज्जनों की श्रद्धा है उसका लाभ उन्हें अवश्य मिलेगा। साधारण पत्थर को भगवान मानकर श्रद्धालुजनों ने ईश्वर को प्राप्त किया है। जिसकी जैसी श्रद्धा है, जैसा विश्वास है तदनुसार उसे आज भी लाभ मिलता है।

१९.–मुझ वेषधारी के प्रति आपकी सच्ची श्रद्धा है तो यह भगवान की कृपा है और मेरा सौभाग्य है। मैं सर्वथा अयोग्य हूँ परन्तु भगवान योग्य हैं, समर्थ हैं। वे श्रद्धालुओं को श्रद्धा का फल देते हैं। मैं नित्य विश्व कल्याण के लिए प्रभु से प्रार्थना करता हूँ। आप सरीखे प्रेमियों के लिए विशेष प्रार्थना करता हू। और मैं आपको अपना मानता हूँ। आपके गुरुभाव को देखकर आपको अपना शिष्य मानता हूँ। मैंने अपनाकर आपको प्रभु चरणों में अर्पित कर दिया। बार-बार प्रभु से प्रार्थना है कि वे आपको अपना सेवक मानें। आपके हृदय में अपनी प्रेमाभक्ति का संचार करें। आपको श्रीधाम वृन्दावन में नित्य निवास मिले। प्रभु मुझे जहाँ चाहें वहाँ ले जायें। नरक से भय नहीं है और न स्वर्ग पाने की आशा है। पर आपको अपने श्रीचरणों में रक्खें। आपके सभी मनोरथ पूर्ण हैं आगे भी सभी मनोरथ पूर्ण होंगे। सदा आप को सत्संग मिला है आगे भी मिलता रहेगा। मैंने आपको अपना लिया है इसलिए भगवान आपको अपनायेंगे। संतों में आपकी श्रद्धा है। उनकी कृपा आपके ऊपर है। इसलिए भगवान ने आपको अपना लिया है। उत्तरोत्तर इस बात का आपको अनुभव होगा। भगवान करुणामय हैं। एक बार प्रणाम करने मात्र से अपनाते हैं। अपनाया न होता तो श्रीधाम से, श्रीधामवासी संतो से आपका सम्पर्क न होता। उनमें श्रद्धा न होती। आप भगवान के निकट रहें भगवान आपके निकट हैं। सर्वविधि मेरा आशीर्वाद है। श्रीसीतारामार्पणमस्तु।

२०.–गुरु पूर्णिमा सन्निकट है हम लोग सद्‌गुरुदेव के पूज्य श्रीचरणों में बारम्बार नमस्कार करते हैं। यदि स्वयं जगद्‌गुरु श्रीकृष्ण गुरु रूप से मार्गदर्शन न करें तो श्रीकृष्ण की ओर कोई जा ही नहीं सकता है। मानव, पशु, पक्षी, स्त्री, पुरुष, वृक्ष, नदी, पंचभूत

आदि सारे संसार के सभी स्वरूपों के द्वारा या उनमें प्रवेश करके अपनी प्राप्ति का उपाय श्रीकृष्ण ही बताते हैं। अनेक प्रकारों से जीव को, अपने भक्त को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं तब कोई नाम रूपादि साधनों को अपनाकर प्रभु की ओर चल सकता है तथा प्रभु को प्राप्त कर सकता है। इसलिए ही प्रभु श्रीकृष्ण को जगद्‌गुरु कहा जाता है। सम्पूर्ण जगत के कल्याण के लिए उपदेश देते है अतः जगद्‌गुरु हैं।

गुरु=भारी सबसे बड़ा। एक तत्व जगत में श्रीकृष्ण ही हैं। जगत में सबसे गंभीर गुरुत्व श्रीकृष्ण में है अतः वे जगद्‌गुरु सच्चे हैं। अन्य जगत मायिक है उसमें लघुत्व है गुरुत्व नहीं है। भक्त की दृष्टि में ईश्वर से प्रकट जगत ईश्वर रूप है अतः सारा जगत गुरु है, श्रीकृष्ण है। सारा जगत श्रीकृष्ण की सता-महत्ता का, तत्व का, प्राप्ति का उपदेश देता है अतः जगद्‌गुरु हैं। जगत श्रीकृष्ण से भिन्न नहीं है।

२१.—गुरुदेव श्रीविट्ठलनाथ जी ने श्रीछीत स्वामी को शरणागति से पहले अपना लिया क्योंकि वे अवतारी पुरुष थे। परीक्षा लेने परिहास करने गये थे। पर प्रभु ने इस दोष की ओर न देखकर उनके द्वारा समर्पित खोटे तुच्छ पदार्थों को दिव्य बनाकर स्वीकार किया। परीक्षा लेने का भाव भी उत्तम नहीं था। सन्त की परीक्षा नहीं लेनी चाहिए। प्रभु ने परीक्षा देकर स्वयं को उतीर्ण कर अनुतीर्ण को उतीर्ण कर लिया। इस प्रकार गुरुदेव कृपामय होते हैं।

'कृपा करहु गुरुदेव की नाईं।' श्रीकृष्ण प्रभु कृपालु हैं पर जब वे गुरु रूप में होते हैं तब अति कृपालु हो जाते हैं। परमात्मा श्रीकृष्ण से गुरु श्रीकृष्ण अति कोमल कृपामय हो जाते हैं। अपने अपमान से गुरुदेव रुष्ट नहीं हुए। गुरु अपमान से शंकर जी रुष्ट हो गए। क्योंकि उन्हें वेद मार्ग की रक्षा करनी है। सबसे बड़ा पाप गुरु अपमान को मानकर बड़े-बड़े शाप दे डाले। पर दयामय गुरु ने शिव को प्रसन्न कर शापों के स्थान पर बड़े-बड़े वरदान दिला दिये। गुरुदेव ने अपने कल्याण के लिए कुछ नहीं माँगा शिष्य के कल्याण के लिए वरदान माँगा। ऐसे गुरुदेव तत्व को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम है। गुरुदेव ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं। यह तो सत्य ही है। पर मुझे श्रद्धालु शिष्यों में ही गुरुत्व दिखाई देता है। गुरु में विश्वास करके गुरुदेव को वैकुण्ठ से बुला लेने वाले, संत सेवा रहस्य को प्रकट करने वाले गुरुभक्त भी गुरु है। गुरु वाक्य में विश्वास

करके गंगा में गुरुत्व का दर्शन करने वाले गुरुभक्त भी साक्षात गुरु है। जो जिसका भक्त होता है वह उसी का स्वरूप होता है। प्रभु सभी रूपों से कृपा करने के लिए तैयार हैं। उसे हमको स्वीकार करना चाहिए। सर्वत्र कृपा की प्रतीक्षा करनी चाहिए। तब ही कृपामूर्ति गुरुदेव की कृपा के दर्शन होंगे। जय सद्‌गुरुदेव।

२२.—श्रीविवेकानन्द जी का नाम नरेन्द्र था पूरे नास्तिक थे। वे कहते थे कि पत्थर की जड़ मूर्तियों में चैतन्य आत्मा को लगाने से क्या लाभ। श्रीरामकृष्ण देव परमहंस को पागल समझते थे। किसी दिन मन में आया कि देखें उस पागल को। जब परमहंस जी के पास आए तो उन्होंने कहा-क्यों नरेन्द्र! तुम इतनी देर से आए? नरेन्द्र के मन में आया कि इन्हें मेरे नाम का पता कैसे चला। इन्होंने कहा कि पत्थर की मूर्ति के सामने माँ-माँ-माँ करने से क्या लाभ? परमहंस जी ने कहा बेटा! ये साक्षात् माता हैं। प्यार करती हैं, बातचीत करती हैं। कृपा करके परमहंस ने कहा तुम माता जी के सामने बैठो ध्यान लगाकर माँ माँ पुकारो। नरेन्द्र ने ऐसा ही किया। परमहंस जी ने माता जी से कहा कि इस बालक पर दया करो। परमहंस की प्रार्थना पर माता ने ध्यान में दर्शन दिया सिर पर हाथ रक्खा। उसी क्षण नरेन्द्र के मन में विवेक की जागृति हो गयी और गुरुचरण रज के सिर पर लगाते ही विवेकानन्द हो गये। हाय! हाय कर पछताने लगे कि गुरु चरणों से अलग रहकर इतना समय व्यर्थ गया।

२३.—श्रीवल्लभाचार्य जी ने सूरदासजी के मुख से दीनता के पद सुने तो बोले—अरे! यह जिह्वा अपने दोषों का वर्णन करने के लिए नहीं मिली। इससे भगवान के नाम, रूप, गुणों का कीर्तन करो। सूरदासजी ने कहा कि मुझे लीला का अनुभव नहीं है। आचार्य ने कहा दीवाल के छिद्र में मुहरें कैसे दीख गईं। सूरदास ने कहा-प्राकृत जगत में मेरी बुद्धि का प्रवेश है दिव्य श्रीकृष्ण की लीला तक नहीं पहुँच पाता हूँ। आचार्य ने यमुना स्नान कराकर ब्रह्म संबंध **'श्रीकृष्णः शरणं मम'** मंत्र दिया उसी समय दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई। नंदभवन की लीला का अनुभव हुआ। **'ब्रज भयौ महर के पूत जब यह बात सुनी'** इस पद को गाया। गुरु कृपा सभी का कल्याण करे।

२४.—सेवा के लिए भगवान की प्रतिमा है पर प्रत्यक्ष सेवा के लिए अपने गुरुजन, पिता-माता हैं। वृद्ध की सेवा, गाय की सेवा से कृष्ण भक्ति मिलती है। यदि पिता-माता, संत, विप्र, वृद्ध, गाय आदि को कोई प्रसन्न करले तो समझो कि भगवान को प्रसन्न कर लिया।

२५.—**गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई। जौं बिरंचि संकर सम होई॥** मानस उत्तर ९२/५

सद्‌गुरु शरणागत को तिलक कण्ठी, मंत्र आदि देकर उपासना मार्ग पर चलना सिखाते हैं, फिर चलाकर प्रभु के निकट पहुँचा देते हैं। गुरुदेव की प्राप्ति श्रीकृष्ण की प्राप्ति है। गुरु वही है जो भक्ति का उपदेश दे। लोक धर्म में कपट छोड़कर सत्य, दया क्षमा, उदारता का जनता के साथ व्यवहार करना सिखावे। सभी देवों को श्रीकृष्ण का अंग अर्थात् भक्त मान उनका भी आदर करना सिखावे वही सद्‌गुरु देव है। **'बिना भक्तमाल भक्ति रूप अति दूर है।'** हमारे सद्‌गुरु का मुख्य उपदेश है। भक्तमाल में लोक शिक्षा का भी वर्णन है। सद्‌गुरु देव में श्रद्धा बढ़ाना। किसी भी कारण से श्रद्धा कम न हो।

जब प्रेम में कपट या स्वार्थ का लेश होता है तब प्रेम घटने लगता है, निःस्वार्थ सच्चा प्रेम दिन-दिन बढ़ता रहता है। गुरुदेव में श्रद्धा बढ़ेगी तो साथ ही साथ श्रीकृष्ण में भक्ति बढ़ेगी। भक्त, भक्ति, भगवान और गुरुदेव ये चारों एक हैं। एक का हृदय में निवास हो जाय तो चारों की प्राप्ति हो जायगी। बार-बार सत्संग में उपदेशों का श्रवण करने से भक्ति करने की इच्छा बढ़ती ही जायगी।

२६.—शरीर तो नाशवान है एक सा नहीं रह सकता पर मन को एक सा रखना चाहिए। भक्त का मन शरीर की स्थिति के साथ बदलता नहीं है उसमें तो प्रभु का नाम रूप स्थान पा चुका है। सर्वोपरि श्रीगुरु कृपा है। नारद जी ने युधिष्ठिर से सप्तम में कहा है संकल्पों के त्याग से काम को, कामनाओं के त्याग से क्रोध को जीतो। अर्थ में अनर्थ की भावना करके लोभ को जीत लो। सात्विक भोजन से निद्रा को जीतना चाहिए। इस प्रकार समस्त विघ्नों को एक-एक साधन से जीता जा सकता है पर गुरु कृपा से सभी विघ्नों पर अनायास ही विजय प्राप्त हो जाती है। काम क्रोध आदि को जीतने के जो उपाय कहे गये हैं वे सब दुःसाध्य हैं। गुरु भक्ति के बिना उन साधनों से भी अनर्थों का विनाश सम्यक प्रकार से नहीं होगा। गुरु कृपा से, गुरुदेव में भक्ति रहने से उस गुरु भक्ति के प्रभाव से समस्त अनर्थ बिना परिश्रम के दूर हो जाते हैं। भगवान की शरणागति समस्त अनर्थों को दूर करने में समर्थ है परन्तु श्रीभगवान के परम प्रिय भक्त श्रीगुरुदेव की शरणागति तथा उनकी नित्य सेवा द्वारा गुरु कृपा प्राप्त कर शिष्य के समस्त अनर्थों का नाश हो सकता है। मन की भक्ति में एकाग्रता, तल्लीनता से अनर्थों का नाश हो जायगा।

इस अवस्था में हुए कर्म बंधनकारक नहीं होते हैं। कर्म करना चाहिए परन्तु सावधानी यह रहे कि वह कर्म बन्धनकारक न हों, निष्काम एवं प्रभु समर्पित कर्म बंधनकारक नहीं हैं। कटहल का शाक बनता है उसे काटते छीलते समय दूध हाथों में चिपक जाता है जो कठिनाई से छूटता है। कटहल को काटना छीलना है पर दूध हाथ में न चिपके इसके लिए लोग हाथ में तेल लगाते हैं। तब दूध हाथों में नहीं चिपकता है। इसी प्रकार कर्मानुष्ठान में सावधान रहना चाहिए।

२७.–श्रीरामानन्दाचार्य के शिष्य रैदास, कबीर को आकाशवाणी ने, श्रीपीपा जी को देवीजी ने, और धनाजी को स्वयं भगवान ने आदेश दिया कि काशी जाकर श्रीरामानंद की गुरुता स्वीकार करो, शिष्य बनो। इससे आचार्य का महत्व तो सिद्ध होता ही है साथ में यह सिद्धान्त भी निष्पन्न होता है कि गुरुदेव से दीक्षा ग्रहण किये बिना भक्ति या वैष्णवता पूर्ण नहीं होती है। प्रभु का कथन है–मूर्ति में मैं हूँ, गुरुदेव में मैं हूँ, भक्तों में मैं हूँ, साधक को इस प्रकार का विश्वास प्राप्त करने के बाद क्रमश: मैं उसे यह ज्ञान देता हूँ कि वह मुझे सदा सर्वत्र देखे। जब तक सर्वत्र मुझे नहीं देखता है तब तक मेरी आराधना–भक्ति पूरी नहीं होती है। सर्वत्र प्रभु दीखें, लक्ष्य यही है। इसकी सिद्धि के लिए पहले एकरूप में प्रभु दर्शन होना चाहिए। एक स्थान पर सिद्ध होने के बाद ही दूसरे स्थानों में प्रभु दर्शन देने लगते हैं।

२८.–गुरुओं का कार्य सत्य प्रिय वचन कह कर कानों में भरे मल को कुरेद कर निकाल देना है। कानों से मैल निकालते समय कष्ट होता है पर गुरुदेव सुखपूर्वक कानों में भरे अनिष्ट शब्दों को निकाल देते हैं। फिर उनमें उत्तमोत्तम अमृतमय प्रिय वाक्य भर देते हैं। ऐसे गुरु नामक तत्व में परमात्मशक्ति प्रकाशित होकर शिष्य का पथ प्रदर्शन करती है। इसी से गुरु उपासना ईश्वरोपासना ही है। गुरु कृपा से शास्त्रों का अर्थ अपने आप शिष्यों के पास आ जाता है। जिन शास्त्रों में श्रद्धा करनी चाहिए वे शास्त्र गुरु कृपापात्र शिष्य में श्रद्धा करने लगते हैं अतएव ज्ञातव्य को जानने में कठिनाई नहीं होती है। ऐसे गुरु को सादर नमस्कार है।

२९.–गुरुदेव के सामने बैठे श्रद्धालु शिष्यों की शंकाए अपने आप मिट जाती हैं। गुरुओं की महिमा बड़ी विचित्र है जो शिष्य को भी एक दिन गुरु बना देती है।

भा० १-१-८ में **'ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत।'** स्नेही शिष्य को गुरुजन गुप्त से गुप्त रहस्य बतला देते हैं। भावना बढ़ाने के सात स्थानों में गुरु का स्थान सर्वोपरि है।

३०.—एकलव्य ने अपने अभ्यास में गुरुदेव की भावना भरकर सिद्धि प्राप्त की। गुरु की महत्ता इतनी है कि उन्हें ब्रह्मा विष्णु और महेश कहा गया।

'यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।'

अर्थात् जैसी भक्ति की आवश्यकता देवता के लिए है वैसे ही गुरु के लिए भी। जिनसे हमें ज्ञान शिक्षा आदि की प्राप्ति होती है वे हमारे गुरु है। माता-पिता आदि गुरु हैं। परिवार का गुरु कुलगुरु होता है। पैतृक रूप से हम उसके शिष्य बनते जाते हैं। वे धार्मिक अनुष्ठान यथा समय कराकर कल्याण करते हैं।

३१.—विद्यागुरु से अनेक प्रकार की विद्याओं की प्राप्ति होती है। धर्मगुरु हमें विशेष धर्म में दीक्षित करते हैं। मन्त्र आदि की दीक्षा-शिक्षा देकर ईश्वर प्राप्ति का मार्ग दिखाते हैं। ईश्वर तक पहुँचा देते हैं। ऐसे सद्गुरु के बिना ज्ञान-भक्ति नहीं मिलती है **'बिन गुरु होय कि ग्यान'** ऐसे गुरु की उपासना करनी चाहिए। उनके प्रति हुए अश्रद्धा अपराध से ईश्वर भी शरण नहीं देता है। इसी से उनकी महत्ता ईश्वर से भी अधिक कही जाती है।

'बंदउँ गुरु पद कंज ....।
..........जासु वचन रविकर निकर।। तथा
कृष्णं वंदे जगद्गुरुम्।

३२.—जो स्वयं आचरण करते हैं और अपने अनुयायियों से आचरण कराते हैं वे आचार्य हैं। आचार्य गुरुदेव स्वयं भगवान हैं, बिना इनके जीव ईश्वर या उसके प्रेम को नहीं पा सकता है। जैसे अन्धा अपने गाँव में घर में चल फिर लेता है उसे वहाँ चलने फिरने का अभ्यास है। परन्तु यदि उसे दूसरे गाँव देश में जाना पड़े तो वह अकेले नहीं जा सकता है। उसे मार्गदर्शक की आवश्यकता पड़ेगी। जीव अन्धा है। इसे खाने पीने तथा शरीर या संसार के व्यवहार का अभ्यास है अत: इसे कर लेता है। लोक ही उसका गाँव घर है वहाँ उसका रहने करने का अभ्यास है परन्तु परलोक, ईश्वर लोक भक्ति पथ उसके लिए नया है उस पर चलने का उसे अभ्यास नही है अत: वहाँ के आचार्य की आवश्यकता है।

३३.—**गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई। जौं बिरंचि संकर सम होई॥** मानस उत्तर ९२/२

श्रीरामानन्द स्वामी श्रीराम ही थे पर वहाँ आकर वे भक्तवत्, दासवत् व्यवहार करते रहे। दूसरों को सिखाने के लिऐ। प्रभु को भी ईश्वरता में आनंद का अनुभव वैसा नहीं हुआ जैसा कि भक्त बनने में है। अतः ईश्वर भी भक्तावतार लेता है। महाप्रभु ने अपने को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि वर्णवाला या आश्रम वाला नहीं बताया किन्तु **'गोपीभर्तुः पद कमलयोः दासदासानुदासः॥'** श्री गोपीनाथ के चरणकमल का दास दासानुदास बताया। वृत्रासुर ने भी दास दासानुदासत्व की अभिलाषा की। अतः बड़प्पन को त्याग कर लघुता दीनता को अपनाना चाहिए।

३४.—संतों की, गुरुदेव की महिमा भगवान से भी अधिक कही गई है। तदनुसार भगवान की प्रसन्नता के लिये ही संत और गुरुदेव को भगवान से अधिक मानना चाहिए। भगवत् प्रेम का विरोधी संत या गुरुदेव नहीं हो सकता है। कृष्ण सेवा करते समय यदि संत गुरुजन आ गये तो एकक्षण के लिए सेवा बंद करके भी सद्‌गुरु का, संत का आदर करना चाहिए। भगवत् सेवा में लगे रहें संत द्वार से वापस चले जायें यह ठीक नहीं। क्योंकि भगवत् सेवा फिर बाद में भी हो जायगी पर गए संत का दर्शन संभव नहीं। कभी कभी भावुकता में लोग कह देते हैं कि हम गुरुभक्त हैं। हमें भगवान से क्या काम। गुरु में अनन्य भक्ति से भगवान प्रसन्न होते है, यह ठीक है पर वहाँ भगवद् भक्ति का बाध नहीं होना चाहिए। बिना भगवद् भक्ति के गुरु जी भी प्रसन्न नहीं होंगे। राधा और कृष्ण भक्ति में भी यही बात है। राधा नाम में और राधा प्रेम में आसक्त पर भगवान रीझते हैं। कृष्ण भक्त पर राधा जी की कृपा होती है। लक्ष्य युगल की भक्ति है।

३५.—कलियुग में श्रद्धा भक्ति सुरक्षित रहे तो समझो प्रभु की बड़ी कृपा है। हितकारी उपदेश देने वाले सभी गुरु हैं। एक गुरुजन मूक उपदेश देते हैं उनके सदाचार से शिक्षा मिलती है। वे बोलते नहीं हैं। नदी, वृक्ष, संत आदि मूक उपदेष्टा हैं। दत्त भगवान ने सर्वत्र शिक्षा प्राप्त की थी।

३६.—संत और शास्त्र बार-बार यही कहते हैं कि गुरुदेव ब्रह्मा हैं विष्णु हैं शिव हैं उन्हें बार-बार प्रणाम है। हितकारी मंगलमय जो उपदेश दें, भूले भटके को सीधा सच्चा मार्ग बतावें, वही गुरु है, उसे बार-बार प्रणाम। गुरुदेव अविनाशी चैतन्य ब्रह्म हैं कहीं भी कभी भी प्रकट होकर कृपा कर सकते हैं। दर्शन दें सकते हैं उन्हें मन

वाणी शरीर से प्रणाम है। ऊपर जिनके स्वरूप का वर्णन किया गया वे ही हम लोगों पर कृपा करने के लिए भक्तमाली श्रीजगन्नाथ प्रसाद गुरु रूप में वृन्दावन धाम में प्रकट होकर विराजे। अनन्त जीवों पर उनकी अनन्त कृपा हुई। आज उनका भौतिक शरीर ब्रजरज में लीन हो गया। वे स्वयं जिस निकुंज से आए थे वहीं जाकर नित्य लीला विहार में निमग्न हो गये। उन्हें शत्-शत् वन्दन और अभिनन्दन है। हमको उनसे श्री मोहनलाल पारीक ने मिलाया। अत: मेरे लिए वे बारम्बार वंदनीय है।

परमब्रह्म हमारी स्थूल दृष्टि में नहीं आता है। लीला पुरुषोत्तम प्रभु श्रीकृष्ण का चिंतन भी सही प्रकार से नहीं कर पाते हैं तो ऐसी स्थिति में गुरुदेव श्रीभक्तमाली जी का स्मरण, प्रवचन एवं उनका सुंदर सुप्रसन्न श्रीमुख का ध्यान करें। मस्तक गोपी चंदन तिलक से सदा मण्डित है। राधा नाम अंकित भाल का, उनके स्वरूप का यथा संभव चिंतन श्रीकृष्ण चिंतन के समान है। सौलभ्यता की दृष्टि से अधिक भी है। उन्हें बार-बार प्रणाम करके हम सब कृतार्थ हो जायँ। गुरु पूर्णिमा चित्रपट में वे पूज्य हैं। जहाँ जिसका प्रेम है वहीं जगद्‌गुरु श्रीकृष्ण प्रकट है। श्रीकृष्ण: शरणं मम।

३७.–पूज्य सद्‌गुरु देव का स्मरण ही हम लोगों के श्रेय के लिए साधन है। श्री पीपाजी को जो अति भक्ति की सीमा कहा गया है वह गुरुदेव की कृपा से

'श्रीरामानंद पद पाइ भयौ अतिभक्ति की सीवाँ।'

३८.–श्रीअग्रदेवाचार्य को मन वाणी कर्म से अचल भक्ति मिली वह श्रीगुरुवर पयहारी जी की कृपा थी **'श्रीकृष्णदास कृपाकरि भक्तिदत्त मन वच क्रम करि अटल दयो।'** श्रीपद्‌मनाभ जी को परमतत्व की प्राप्ति गुरुदेव कबीर कृपा से हुई। **'कबीर कृपा ते परम तत्व पद्‌मनाभ परचौ लह्यो॥'**

३९.–कुछ लोगों का कथन है कि शंकराचार्य श्रीरामानुजाचार्य आदि को जगद्‌गुरु नहीं माना जा सकता क्योंकि वे एक वर्ग विशेष के गुरु हुए। सबों ने उन्हें गुरु स्वीकार नहीं किया। इस संबंध में विचार है कि ये सभी आचार्य जगद्‌गुरु है, कोई उल्लूक यदि सूर्य की सत्ता को स्वीकार न करे तो सूर्य की महिमा कम नहीं होती है।

'कृष्णं वन्दे जगद्‌गुरुम्।' श्रीकृष्ण जगद्‌गुरु हैं। पर कुछ लोग उन्हें भी नहीं मानते है, तो क्या श्रीकृष्ण का जगत गुरुत्व मिट जायगा? जितने गुरु हैं सब में श्रीकृष्ण

ही प्रकट होकर उपदेश देते हैं, जड़ से प्रविष्ट होकर भी श्रीकृष्ण उपदेश देते हैं तभी उनमें गुरुत्व दत्तात्रेयजी ने स्वीकार किया। दत्त ने जगत को गुरु माना अतः जगद्‌गुरु हुए।

४१.—**जे गुर चरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बश करहीं।।**
मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजें। सबु पायउँ रज पावनि पूजें।।

मानस अयो० २/७-८

जो लोग गुरु चरणों की रज को सिर पर धारण करते हैं, वे लोग सभी प्रकार के विभव अपने वश में कर लेते हैं। इस बात को मैंने जैसे अनुभव किया उस प्रकार से किसी ने अनुभव नहीं किया। रज सिर पर धारण करने से सर्वरूप भगवान की प्राप्ति हो जाती है।

४२.—गुरुदेव भगवान ईश्वर हैं। मनुष्य का मायिक शरीर ईश्वर नहीं होता है। तत्वतः एकता होती है। ईश्वर का प्रतीक होने के कारण मानव शरीर में भावुकता से भक्तजन गुरुत्व स्वीकार करते हैं तो उन्हें उसका लाभ प्राप्त होता है। कलिकाल में भगवन्नाम की तरह गुरुदेव का नाम, भक्तों का नाम जपना भी मंगलकारी है। नाम की महिमा सदा थी और आगे भी रहेगी, पर कलियुग में विशेष महत्व है।

४३.—**गुरुं शंकर रुपिणम्** के बाद वैष्णव् भक्तों में, ऋषि, देव, मनुष्य, पशु वृक्षादि तक में गुरुत्व उसी तरह व्याप्त हुआ जैसे ब्रह्म।

४४.—ब्रह्मा होकर गुरुदेव सद्‌गुणों की सृष्टि शिष्य में करते हैं। विष्णु बनकर प्रेम ज्ञान की रक्षा करते हैं। शिव बनकर मायिक विकारों का नाश शिष्यों के हृदय में करते हैं। अतः गुरु को ब्रह्मादि कहा गया है।

:- इति शुभम् -:

❋

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्री हनुमते नमः श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः

❃ श्री भगवन्नाम महिमा ❃

१.—प्रभु जहाँ-जहाँ पर लीला करते हैं वहीं धाम प्रगट हो जाता है। धाम प्रभु का ही शरीर है। जिसे नाम की प्राप्ति हो गई नाम में प्रेम हो गया वह प्रभु का भक्त है। उसकी जिह्वा पर नाम महाराज सदा बिराजते हैं। यह सत्य है।

२.—अजामिल ने पुत्र का नाम लिया उसमें भगवान के नाम का आभास मात्र था उसी से उद्धार हो गया। नाम का आश्रय परमधर्म है। बड़े से बड़े पापों का श्रेष्ठ प्रायश्चित है। एक साल हरिद्वार गंगा तट पर रहकर अजामिल ने नाम जप किया और विमान में बैठकर वैकुण्ठ गया। भक्त का विमान देवताओं के लोकों में होकर जब निकलता है तब धर्म-इन्द्र-वरुण-कुबेर-ब्रह्मा आदि देवगण भक्त का पूजन स्वागत करते हैं। परन्तु स्वागत स्वीकार करने के लिए इनका विमान नहीं रुका। बड़े वेग से निकल गया। लोग दूर से स्वागत, विमान का स्वागत कर सके। अन्य पुण्यों के कर्ता का विमान मन्दगति से वैकुण्ठ जाता है पर नामाश्रयी का बड़े वेग से जाता है।

३.—एक सज्जन की स्त्री मर गई वह उसके वियोग में पागल होकर घूमता हुआ दैववश बरसाने में पहुँच गया। अति आर्त होकर रोते-रोते बीच-बीच में हा! किशोरी हा! किशोरी कहता था। राधारानी ने कहा-इस भक्त के पास चलकर इस पर कृपा करनी चाहिए। ललिता जी ने कहा यह संसारी जीव है स्त्री के वियोग में रोता है इसकी स्त्री का नाम किशोरी था। उसी का नाम लेकर रोता है। श्री श्रीजी ने कहा-किशोरी मेरा नाम है। नाम नहीं तो नामाभास है। श्री श्रीजी ने दर्शन दिया और उस पर कृपा की। बरसाने में वास मिला, अलि किशोरी नाम से वे संत प्रसिद्ध हुए। यह कई सौ वर्ष की पुरानी बात है।

४.—भगवान दयामय हैं हम उनको भूल सकते हैं पर वे हमको कभी नहीं भूल सकते हैं। भगवान का नाम भगवान की दया से ही जिह्वा पर आता है। नाम आया तो

समझो भगवान ही आ गये। जिसने नाम को अपनाया उसने सभी वेदों का पाठ कर लिया। नाम कीर्तन करने वाला सभी तीर्थ कर चुका। नाम लेने वाले के पितरों का उद्धार हो जाता है। गोविन्द, गोपाल, रामकृष्ण, नारायण सभी नामों की महिमा अनन्त है, पुनः जिसको गुरुदेव जो नाम बता दें उसके लिए वही श्रेष्ठ है। जिसमें अपना प्रेम हो जाय अपना मन लगे वही नाम श्रेष्ठ है। भगवान कृपा करें संतों का सत्संग सदा मिलता रहे। जो जीव मात्र में भगवान को देखता है वही सच्चा भक्त है।

५.—जो शरीर कीर्तन सत्संग के योग्य है वही स्वस्थ है। अन्यथा स्वस्थ रहते हुए भी वह अस्वस्थ है। प्रभु ने भजन योग्य शरीर दिया है। इसका लाभ उठाना चाहिए। शरीर के अंत में आने वाले दूतों के साथ तत्क्षण चल देना पड़ता है। अभी नहीं चलूँगा यह नहीं कहा जा सकता है। गवर्नमेंट का वारन्ट आवे तो घूस-रिश्वत देकर उससे बचा जा सकता है पर इससे नहीं। अतः सतत् सावधान रहना चाहिए। प्रभु ऐसी कृपा करें कि हम उनके नाम स्मरण में प्रमाद न करें। आपके पत्र में ऐसी ही घटनाओं का वर्णन है। जिन घटनाओं से लौकिक दुःख होता है, परमार्थ दृष्टि से देखे तो उपदेश मिलता है। भगवान के नामों की महिमा अनन्त है।

६—श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने पर माता यशोदा जी दुःखित रहा करती थीं। जहाँ प्रेम होता है वहीं सच्चा ज्ञान प्रकट होता है। माता जी ने किशोरी जी से कहा कि मुझे भक्तिमय ज्ञान का उपदेश दो। श्री जी ने कहा कि आप अपने पुत्र का भक्ति-पूर्वक स्मरण करें। उनके नामों का स्मरण करें। उनमें मुख्य नाम ये हैं। राम, नारायण, अनन्त, मुकुंद, मधुसूदन, कृष्ण, कंसारि, हरि, वैकुण्ठ और वामन इन ग्यारह नामों का उच्चारण करने से अनेक जन्मों के पाप, महापाप नष्ट हो जाते हैं। ऐसा कहकर श्री किशोरी जी ने सभी नामों की व्याख्या की। उनकी महिमा कही। जो बड़े विस्तार के साथ ब्रह्मवैवर्त पुराण में वर्णित है। सर्व प्रथम राम नाम लिया गया है। उसी की महिमा पहले कही गई है। रा शब्द विश्व वाचक है, म शब्द ईश्वर वाचक है।

७.—जो सब लोकों का ईश्वर है वही राम है। वे रमा के साथ रमण करते हैं वे राम है। रमा का रमण स्थान होने से उन्हें राम कहा जाता है। **'रा'** लक्ष्मी वाचक है, **'म'** ईश्वर वाचक है। इसलिए विद्वान उन्हें राम कहते हैं। हजारों दिव्य नामों का स्मरण करने से जो लाभ होता है वह राम शब्द के उच्चारण करने से मिलता है। इस

वाक्य पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि राम परब्रह्म परमात्मा हैं। वे ही सगुण रूप से ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूप से प्रकट होते हैं। तीनों गुणों से तीन कार्यों के वास्ते तीन रूप धारण करते हैं। ब्रह्मा रजोगुण, विष्णु सतोगुण और शिव तमोगुण से प्रकट होकर सृजन, पालन, संहार करते हैं। रावणादि दैत्यों के अत्याचारों से जब पृथ्वी, ऋषि, गो व्याकुल हो गए तब देवताओं की प्रार्थना सुनकर अयोध्या के राजा दशरथ के घर कौशल्या आदि माताओं के गर्भ से श्रीराम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न इन चार रूपों में प्रकट हुए। इनकी कथा श्रवण कुमार के अन्धे पिता-माता के शाप से आरंभ होती है। राम जन्म के हेतु अनेक हैं लीलाएँ अनन्त हैं।

८.–'राम' इस नाम की महिमा अपार है। मरा-मरा कहकर भी ऋषि ब्रह्म स्वरूप हो गए। भगवान का नाम जब तन्मय होकर लिया जाता है तब हृदय में नामी तथा उसकी लीलाएँ प्रकट हो जाती हैं। अन्तःस्थल में दैवीगुण प्रकट हो जाते हैं। श्रीराधा सर्वेश्वरी ने नामों की महिमा, उनका अर्थ कहकर श्रीयशोदा माता के कष्ट को दूर किया। उनके हृदय में भक्ति का उल्लास प्रकट होकर अनन्त सुख देने लगा। समस्त अयोध्यावासी राम का, राम नाम का आश्रय पाकर कृतार्थ बन गए।

९.–देवता, मनुष्य, राक्षस कोई भी भगवान के नाम का आश्रय लेकर भगवान को प्राप्त कर सकता है। मृत्यु लोक में मरण निश्चित है। अन्त में भगवान का नाम मुख पर आवे इसलिए पहले से ही नाम का अभ्यास करना चाहिए। घर के कामों को करते समय मन में और स्पष्ट उच्चारण करते-करते जब अभ्यास बढ़ जाता है तब अन्त में भगवान का नाम आता है उससे इस लोक में परम कल्याण होता है, परलोक में भगवद्धाम का वास मिलता है। भगवान का नाम सबको आनंद प्रदान करे, सभी रोग रहित हों। सभी निर्भय हों। जय जय श्री राधे राधे।

१०.–एक संत टट्टी पेशाब के समय जिह्वा को दाँतों से दबाकर रखते थे। शिष्य ने पूछा तो कहा कि अभ्यास ऐसा बन गया है कि जिह्वा रोकने से नहीं रुकती है नाम का उच्चारण होता है। नाम-नामी में अभेद होने के कारण नाम लेने पर नामी प्रकट हो जाता है। मलत्याग स्थान पर प्रभु का आना ठीक नहीं अतः जिह्वा को दाँत से दबाकर रखा है। शिष्य ने कहा यदि उस समय शरीर छूट गया तो क्या होगा? गुरुदेव ने जिह्वा को स्वंतत्र कर दिया। शिष्य को धन्यवाद दिया।

११.—एक सेठ अपने घर की दुकान के कार्यों में इतने व्यस्त रहते थे कि उन्हें नाम लेने की फुरसत नहीं मिलती थी। जब टट्टी में जाते तो उस समय उन्हें अवकाश मिलता और वे राम राम रटते। श्रीहनुमान जी को क्रोध आया कि कामों को छोड़ नहीं सकता है। टट्टी में राम राम करता है। हनुमानजी ने पीठ पर एक लात मारी। रात्रि के समय श्रीहनुमान जी श्रीराम जी की सेवा करने लगे तो, जब श्रीराम जी की पीठ पर हाथ लगाया तो श्रीराम जी कराहने लगे, पीठ में बड़ी पीड़ा है। बहुत पूछने पर कहा–तुमने ही मारा है। हनुमानजी की समझ में नहीं आया। अत्यंत प्रार्थना करने पर श्रीराम जी ने बताया। तुमने प्रेमी भक्त को कीर्तन करते वक्त मारा। उस चरण प्रहार को यदि मैं अपनी पीठ पर न लेता तो वह कोमल शरीर वाला सेठ मर ही गया होता। अतः मैंने उसकी रक्षा की। हनुमानजी ने भूल स्वीकार करके क्षमा याचना की। सेठ को राम नाम का उपासक माना, आदर किया। तात्पर्य यह है कि राम नाम जप पवित्र अपवित्र सभी अवस्थाओं में किया जा सकता है। दुःख यही है कि हम नाम का आश्रय लेकर उसका जप नहीं करते।

१२.—संसार के अनेक रोग हैं और उनकी अलग-अलग औषधियाँ हैं परन्तु राम नाम तो सभी रोगों की रामबाण औषध है। शोक मोह लोभ आदि सभी रोगों के लिए एक राम नाम ही महान औषध है। प्रह्लादजी ने होलिका के जल जाने पर कहा कि देखो, जिसे न जलने का वरदान था वह भी जल गई, मेरे चारों ओर शीतलता है। मेरा एक रोम भी नहीं जला। राम नाम के जापक निर्भय रहते हैं।

१३.—कलियुग में नाम स्मरण करके कलियुग के दोषों से बचा जा सकता है। अन्यथा समय के प्रभाव से बचना कठिन है।

१४.—भगवान के नाम, रूप, लीला और धाम ये चारों सच्चिदानन्दमय हैं। एक को पकड़ने से चारों पकड़ में आ जाते हैं। सुलभ एवं शक्तिमान होने से नाम ही चारों में श्रेष्ठ है। नाम में लीला भरी है। राम में रामायण, कृष्ण नाम में भागवत पुराण स्थित है। नाम पुकारने से रूप का आकर्षण होता है। नाम में धाम=तेज और धाम= लीला भूमि ये व्याप्त हैं। बट बीज में जैसे विशाल वृक्ष व्याप्त है उसी प्रकार नाम में सब कुछ है। नाम का आश्रय लेने से रूप, लीला और धाम का आश्रय हो जाता है।

१५.–जन्म जन्मान्तर के अशुभ संस्कारों को मिटाने के लिए निरंतर नाम जप आदि साधन आवश्यक हैं। श्रेष्ठ नाम स्मरण ही है। दूसरे साधनों के योग्य हम नहीं हैं। आवश्यक काम काज करने के बाद या करते–करते भी नाम जप का अभ्यास बढ़ाना चाहिए। नाम में प्रेम होना और भगवान में प्रेम होना एक ही बात है। नाम जप के साथ ही यह नहीं सोचना चाहिए कि हमें सिद्धि नहीं मिली, कोई अनुभव नहीं हो रहे हैं। नाम जप में एकाग्रता के बढ़ जाने पर विषयों से वैराग्य हो जायगा। अन्तःकरण यानी मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार की शुद्धि हो जायगी। तब स्वयं दिव्य अनुभव होने लग जावेंगे। नाम जप को ध्यानपूर्वक करना चाहिए या बिना ध्यान के? ऐसा कोई प्रश्न करे तो उसका उत्तर यह है कि ध्यान सहित नाम का जप अति श्रेष्ठ है। परन्तु आरंभ में यदि ध्यान सहित नाम जप नहीं बने तो बिना ध्यान के ही जप करना चाहिए। पर जप करते समय मन को इधर–उधर अनिष्ट विषयों में नहीं जाना चाहिए। जाये तो रोकना चाहिए। लीला चिंतन या रूप चिंतन, शोभा चिंतन, धाम चिंतन जो भी संभव हो उसे नाम जप के साथ करना चाहिए। कीर्तन करते समय गाने में मन को एकाग्र करना चाहिए। नाम के अर्थ अथवा लिखे हुए नाम में ही मन लगाना चाहिए। कृपा करके जिह्वा के ऊपर भगवान ही नाम के रूप में प्रगट होते हैं। अपने नाम जप का प्रचार न करके उसे गुप्त रखना चाहिए। किसी साधक को नाम जप में लगाने के लिए अपना नाम जप भजन कहा–बताया जा सकता है। अहंकार न हो। बड़प्पन न आवे।

१६.–राम नाम का आश्रय लेने वाले ही कलियुग के दोषों से बचते है अन्यथा बड़े से बड़ा भी कोई बच नहीं सकता है। एक संत सुदामा कुटी में रहते हैं उन्होंने बताया कि मेरे सामने कलियुग आया और उसने यह बात कही उसी दिन से अब मैं समय से राम मंत्र जपता हूँ। भगवान का नाम, रूप, लीला, धाम ये चारों समान हैं। इनमें एकता रहती है। इनमें से एक का भी आश्रय यदि कोई लेता है तो उसका कल्याण हो जाता है। इन चारों में नाम सबसे ज्यादा सुलभ है। नाम लेने में कोई विधि विधान नहीं, अपवित्रता, पवित्रता की भी आवश्यकता नहीं है। यदि छल कपट ईर्ष्या द्वेष आदि को छोड़कर नाम लेता है तो उसका अवश्य कल्याण हो जाता है।

१७.–प्रभु के नाम में विश्वास रखकर उसके अभ्यास को बढ़ाना चाहिए। उसके बदले में दूसरी कामना नहीं करनी चाहिए। हमारे भीतर बाहर की सारी बातों को परमात्मा जानता है। हमारे ऊपर प्रभु कृपा है स्वयं अनुभव करना चाहिए।

१८.—कलिकाल में भगवन्नाम की तरह गुरुदेव का नाम, भक्तों का नाम जपना भी मंगलकारी है। नाम की महिमा सदा थी और आगे भी रहेगी पर कलियुग में विशेष महत्व है। भगवन्नाम, भगवान आप सबों का मंगल करें। गुरुतत्व का बोध हो।

१९.—कलियुग के गुणों की प्रशंसा की जाय और उसका लाभ यानी भगवन्नाम का आश्रय लिया जाय तो कलि के कोप से बचा जा सकता है। जो लोग कलियुग की निंदा ही करते हैं और उन दोषों को अपने में रखकर दोष कलियुग को देते हैं, ऐसे लोग कलि के दोषों से नहीं बच सकते हैं।

२०.—**'रामो विग्रहवान धर्मः।'** श्रीराम धर्म की मूर्ति हैं। 'श्रीराम जय राम जय जय राम' यह भगवन्नाम है और वैदिक मंत्र भी है। कम से कम बाईस बार जप करने वाला धन्य है। राम नाम से बढ़कर दूसरा कोई नाम नहीं है। इसका जापक भक्ति-मुक्ति आदि अभीष्ट पदार्थ पाता है। भगवत् प्राप्ति का उपाय क्या है इसे जीव नहीं जानता स्वयं ही भगवान आकर बताते हैं। सदा जप, तप, अनुष्ठान में निमग्न रहकर विश्व कल्याण की माँग करनी चाहिए।

२१.—भगवान के नाम, रूप, धाम एवं सभी लीलायें मंगलमय हैं। जहाँ-जहाँ जो-जो लोग भगवान का आश्रय लेते हैं वहाँ उनको मंगल कल्याण की प्राप्ति होती है।

कार्य आरंभ करने के पहले भगवान का स्मरण करना चाहिए, कार्य की समाप्ति पर प्रभु का स्मरण करना चाहिए। प्रभु का नाम लेने से उसमें रूप, लीला, धाम सब कुछ आ जाता है।

२२.—मन में नाम लेने से मुक्ति प्राप्त होती है और वाणी द्वारा उच्चस्वर से कीर्तन करने वाले को भक्ति प्राप्त होती है। उच्चस्वर से किया गया कीर्तन अपनी वाणी के साथ अपने तथा दूसरों के भी कर्णों को पवित्र कर देता है अतः भक्तजन गौरांग प्रभु आदि ने **'उच्चैर्भाषा तु कीर्तनम्'** को श्रेष्ठ बताया।

२३.—राम नाम महिमा। **'रा=राक्षसानां मरणं यस्मात्।'** **'र'** का अर्थ है राक्षसगण **'म'** का अर्थ मकार का मरण। काम, क्रोध, मान, मद आदि राक्षस जिससे मरते हैं, वह है राम नाम। श्रीकबीर के शिष्य श्रीपद्मनाभ ने श्रीराम नाम से कुष्ठी को निरोग किया। कबीर ने कहा कि गुरुदेव कृपा से नाम का इतना ही माहात्म्य नहीं है। यह संसार बंधन तो नामाभास से कट जाता है।

२४.—एक व्यक्ति वृन्दावन जा रहा था दूसरे ने कुछ पैसे देकर कहा कि मेरे लिए एक तुलसी की माला लेते आना। अभी माला आई नहीं, नाम जप हुआ नहीं, केवल नाम जप करने का विचार मात्र किया था इतने से ही यमराज ने कहा कि अरे चित्रगुप्त! उस माला मँगाने वाले के खाते को खत्म कर दो। महाराज उसे तो बहुत कर्मों के फल भोगने हैं, नहीं! नहीं! अब वह नाम जप के लिए उत्सुक है, उसके ऊपर कृपा हो गई है। उस जीव के कर्म बन्धन समाप्त हो गए। यही नामाभास है।

२५.—दुष्ट चित्त से स्मरण किया गया भी भगवन्नाम पापों का नाश करता है। जैसे अनजान में स्पर्श किया गया अग्नि भी जला देता है। अत: 'हरि' यह नाम है। सभी के पाप तापों को हरते हैं। अपने श्रवण कीर्तन द्वारा भक्तों के मन को हरते हैं अत: 'हरि' यह नाम है। जो कृष्ण के मन को भी हरता है अत: उसका नाम हरा है उसके संबोधन में हरे ऐसा रूप होता है। इसलिए **'हरे राम हरे राम'** मंत्र प्रयुक्त हरे का अर्थ हे राधे। **'कृष्'** आकर्षण करने वाला **'ण'** आनन्ददायक है। सबको आकृष्ट करके आनन्द देने वाले का नाम कृष्ण है।

'रा' का उच्चारण करने से पाप बाहर निकल जाते हैं फिर **'म'** का उच्चारण करने पर कपाट बंद हो जाता है फिर मुख के बंद होने पर पाप प्रवेश नहीं कर पाते हैं। अत: हरे राम यह महामंत्र विधि, अविधि जैसे भी जपा जाय कलियुग में विशेष फलप्रद है।

२६.—संसार अशाश्वत दु:खद है। पर इसमें नाम संकीर्तन आदि कार्यक्रम इस संसार को मंगलमय बना देते हैं। संसार समुद्र में भक्त, सन्त रत्नों के समान हैं। जिसे मिल जाएं वे कृतार्थ हो जाते हैं। **'परं विजयते श्रीकृष्ण संकीर्तनम्।।'** परं=परात् परं, श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ श्रीकृष्ण नाम संकीर्तन की विजय हो, सर्वदा विजय हो।

२७.—**'धन्यास्ते कृतिन: पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम्।'** पीने पिलाने वाले सभी धन्य हैं, भूरिदा हैं। नाम में, रूप में अभेद है तो नाम दान, कृष्ण स्वरूप का दान है। इससे बड़ी बात और कोई नहीं हो सकती है। ऐसे लोग भक्तमाल के अनुसार ब्रह्मा की प्रपंच सृष्टि से भिन्न हैं। ये सब कृपा सृष्टि के जीव हैं जैसे **'तिलक दाम परकाम को हरिदास हरि निर्मयो।'** हरि निर्मयो का तात्पर्य यह कि प्रारब्धवश भव सागर में

पड़े, ब्रह्मा निर्मित नहीं हैं। भक्ति प्रचारार्थ प्रभु ने इन्हें प्रकट किया है। ऐसे सन्तों से ही धर्म-धरती टिकी है। कथा, कीर्तन के लिए प्रभु ने प्रकट किया है। अतः इस कार्य को करके स्वयं प्रेमानन्द में मग्न रहते हैं। दूसरों को भी उसमें सराबोर कर देते हैं। नाम संकीर्तन एवं अर्द्धकुम्भ के आयोजक-संरक्षक धन्य हैं। **'कबीर कृपा ते परमतत्व पद्मनाभ परचौ लह्यौ।'** यह परमतत्व भगवन्नाम ही है। नामाराधन ही परम धर्म है और इष्ट को प्रसन्न करने का उपाय भी यही है। अपने इष्टदेव जिससे प्रसन्न रहें वही पुण्य है। नाम संकीर्तन के प्रति हृदय में जैसी भक्ति होनी चाहिए वैसी अभी नहीं हुई। नाम में जब होगी तब नामी में भी भक्ति होगी।

२८.—भगवान कृपा के लिए सदा तत्पर रहते हैं। यदि उनकी कृपा न होती तो हम जिस प्रकार रह रहे हैं ऐसे नहीं रह पाते। अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों की परवाह न करके प्रभु स्मरण भजन करना है। इस संसार में सारी अनुकूलता मिलना कठिन है। चंचल मन से भी प्रभु नाम स्मरण लाभकारक है। नाम स्मरण से सब काम बनेंगे। हम सुख चाहते हैं। शरणागति में सुख है। शरण में हैं, दास हैं, ऐसा ध्यान रहे।

२९.—सत्संग और भगवन्नाम से सब दोष दूर हो जाते हैं। सर्वश्रेष्ठ सुगम और सर्वोत्तम हैं नाम जप, सत्संग। इसमें सभी प्रणियों का अधिकार है। जिह्वा से उच्चारण करते समय यदि कान से उसे सुनें तो ध्यान सहित उत्तम जप हो जाता है। ऐसे भक्त को कुण्डलिनी जागृत करने की चिंता नहीं करनी पड़ती है। अपने पुरुषार्थ के बल पर साधना करने वाले योगी आगे बढ़कर फिर अटक जाते हैं। तब यदि वे शरणागत होकर नाम लेते हैं और प्रभु कृपा की प्रतीक्षा करते हैं तो प्रभु उनका हाथ पकड़कर उन्हें उठा लेते हैं। अपने को असहाय मानकर जो भगवान का सहारा लेते हैं उन्हें प्रभु अवश्य अपनाते हैं। हरिः शरणं मम।

३०.—अपने दोषों को देखना साधना में आगे को बढ़ना है। जिस समय दोषों का अभाव हो जाएगा उस समय श्रीकृष्ण के सर्वत्र दर्शन होंगे। भगवन्नाम एवं सत्संग सर्व- दोषहारी है। हमको भगवान के नाम में आनन्द नहीं आता है, इसका यह कारण है कि भगवान में प्रियतम बुद्धि नहीं हुई है। अपने प्रियतम का सब कुछ आनन्ददायक है। प्रियतम की टूटी फूटी जूती भी प्रिय लगती है, तब प्रियतम के नाम रूप क्यों न प्रिय लगेंगे? हमको श्रीकृष्ण प्यारे लगें तो यह भयानक जगत भी प्रेममय हो जायेगा।

नाम सुनाने वाले में प्रेम हो जायगा। उनकी याद दिलाने वाले के चरणों में चित्त न्यौछावर हो जायेगा। निर्धन के धन, निर्बल के बल, असहाय के सहायक श्रीकृष्ण हैं। उनकी कृपा दृष्टि सब पर सर्वदा रहे। जय श्रीकृष्ण।

३१.–**'राम नाम मणि दीप धरु जीह देहरी द्वार।'**

जीभ देहली पर नामरूपी मणि का दीपक रक्खो तो भीतर और बाहर उजाला रहेगा। मणि दीप में तेल बत्ती नहीं चाहिए। पवन उसे बुझा नहीं सकेगा। नाम दीप का हृदय में भी प्रकाश हो। हृदय का अंधकार दूर हो जाएगा।

इति शुभम्

❋

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्री हनुमते नमः | श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः

❃ भगवद्भक्ति ❃

१.—केवल इच्छा करने मात्र से संसार का कोई काम नहीं बनेगा उस के लिए तन, मन, धन से श्रम करना पड़ेगा। परन्तु श्रीहरि की भक्ति उत्कट इच्छा मात्र से प्राप्त हो जायगी। प्रभु हर जीव को सदा देखा करते हैं। मन की कामना को पूर्ण करने के लिए वाणी और शरीर से कर्म बनने लग जावेंगे। मन की कामना को पूर्ण करने के लिए प्राणी परिश्रम करता है। मानसिक परिश्रम श्रेष्ठ है। उसी से प्रभु प्रसन्न होते हैं। शारीरिक परिश्रम से संसारी संतुष्ट होते हैं। संसार प्रभु का स्वरूप है ऐसा मानकर उपकार करना भक्ति ही है। अपना स्वार्थ त्यागकर जो कुछ जीवों के भले के लिए किया जायगा उससे भगवान संतुष्ट होंगे। भगवान के संतुष्ट होने पर सभी देवी-देवता प्रसन्न हो जाते हैं। अतः भगवान को प्रसन्न करने के लिए ही सब कुछ करना चाहिए यही शास्त्र का रहस्य है।

२.—कोई चारों वेदो को पढ़ ले पर बिना भक्ति के सुख नहीं मिलेगा। भव सागर से पार नहीं जा सकेगा। सारी पृथ्वी का राज्य, स्वर्ग की संपति पाकर भी जीव भक्ति के बिना अति दुःखित रहेगा।

३.—जो भक्तों के भक्त हैं वही मेरे सर्वस्व हैं।

४.—भक्ति का तात्पर्य है कि अपने इष्ट देव में लग जाना। जब हम संसारी विषयों को प्राप्त करने के लिए भगवान की पूजा-प्रार्थना आदि करते हैं तो वह विषयों की भक्ति होती है। उसे ईश्वर की भक्ति नहीं कहा जा सकता है। भगवान के लिए जो भक्ति की जाती है वह भगवान की भक्ति होती है। अहंकार को रखकर चाहे जितनी सेवा की जाय वह उत्तम सेवा नहीं होगी। दीनतापूर्वक प्रेम से की गई थोड़ी सेवा से भी दयालु परमात्मा प्रसन्न हो जाता है।

५.—भक्ति की महिमा का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा—जो साधक भक्त हैं, अभी सिद्ध नहीं हुए हैं, अपनी इन्द्रियों को जीतकर अपने वश में नहीं कर सके हैं, उसे संसार के विषय काम क्रोध आदि बार-बार बाधा पहुँचाते हैं। विषय अपनी ओर खीचते हैं। वह साधक बार-बार अपने मन को विषयों से अलग करता है, क्षण-क्षण नाम संकीर्तन आदि का अभ्यास करता है। भक्ति के प्रताप से वह भक्त प्राय: विषयों के वश में नहीं होता है, विषयों से कभी हारता नहीं है। जैसे ईंधन के ढ़ेर को अग्नि जला डालती है उसी प्रकार भगवान की भक्ति पाप राशि को जला डालती है। भगवत् का आश्रय लेने पर पापों का होना संभव नहीं रहता है, फिर भी कदाचित कोई दोष बन जाता है तो उसे भगवान ही नष्ट कर देते हैं। भक्ति को त्यागकर अन्य यज्ञ, तप, दानादि से उस प्रकार की सुख, शांति, भक्ति की प्राप्ति नहीं होती है जैसी कि शुद्ध प्रेम से होती है। दान, तप, यज्ञ आदि को करते समय भक्ति का ही मुख्य लक्ष्य रहना चाहिए।

६.—भगवान कहते है कि मैं संतों की आत्मा हूँ उनका प्रियतम हूँ। मेरी अनन्य भक्ति जाति आदि के दोषों को मिटाकर श्वपच चाण्डाल को भी पवित्र कर देती है। जो भक्ति से वंचित हैं, विष्णु विमुख हैं, तपस्या, विद्या आदि उन्हें पवित्र नहीं कर पाती हैं।

७.—भक्तिमय आचरण से जब तक शरीर पुलकित न हो, अश्रुपात न हो, कण्ठ गद्‌गद् न हो तब तक हृदय के शुद्ध होने की संभावना नहीं रहती है। हृदय में भगवत् प्रेम प्राप्त करने की इच्छा रखनी चाहिए धीरे-धीरे बलवती इच्छा वैष्णव धर्म का आचरण करा लेगी। उससे भगवान की कृपा अति सुखद और सुलभ हो जायगी। अपने समीपवर्ती मित्रों को प्रभु के नाम कीर्तन सत्संग की ओर आकृष्ट करके उनके सहयोग से अपनी भक्ति को बढ़ाना चाहिए। भक्ति का दान करने से भक्ति बढ़ती है।

८.—जीव का कल्याण केवल भक्ति से होता है। भगवान को भक्ति प्रिय है। व्याध का आचरण पवित्र न था पर हृदय के प्रेम को देखकर भगवान ने उसे अपने धाम को भेज दिया। विद्वानों को भगवान मिलते होते तो गजेन्द्र कैसे प्राप्त करता उसमें कोई विद्या नहीं थी। अधिक आयु वाले पर प्रभु प्रसन्न हों, प्रसन्नता का कारण दीर्घायु नहीं है ध्रुव पाँच ही वर्ष के थे भगवान उन्हें देखने के लिए आए। पवित्र ब्राह्मण वंश होने मात्र से भगवान नहीं मिलते। विदुर दासी पुत्र थे उनमें भक्ति थी अत: उनके घर गए। साग खाए। कुब्जा कुटिला कूबड़ी थी उसका रूप ऐसा नही था कि जो दर्शनीय हो कुरूपा

को प्रभु ने अपनाया। धनी का धन भी प्रभु प्राप्ति का कारण नहीं बन सकता, निर्धन सुदामा को प्रभु ने गले से लगाया। पराक्रम से कोई ईश्वर को नहीं पा सकता है पराक्रम के द्वारा प्रभु मिलते हो तो कंस को मिलते पर कंस को मारकर उग्रसेन को राजसिंहासन पर बैठाकर उनके अधीन हुए।

९.–भगवान एक भक्ति के संबंध को मानते हैं। अपनी अपेक्षा अपने भक्त की महिमा बढ़ाते हैं अतः अपने चरणरज से सरोवर के जल को शुद्ध न करके शबरी के पद रज से शुद्ध कराया। जाति, विद्या, महत्व, रूप, यौवन ये भक्ति के पाँच काँटे प्रसिद्ध हैं। जाति विद्या आदि का होना अच्छा है पर अहंकार अच्छा नहीं है। जाति से नीच, एक अक्षर पढ़ी नहीं थी, किसी भी दृष्टि से उसका महत्व नहीं था। अति कुरूपा एवं वृद्धा थी उसमें भक्ति थी और भगवान ने भी नवधा भक्ति का उपदेश उसे दिया। किसी ऋषि के सामने आपने नवधा का उपदेश नहीं दिया। सभी प्रकार के दोष नष्ट हो जाते हैं जब भक्ति होती है। यदि भक्ति नहीं है तो विद्या, तपस्या, ज्ञान आदि का कोई महत्व नहीं है।

१०.–भगवान के स्वरूप पिता–माता, ब्राह्मण, संत, गुरुदेव, तुलसी, पीपल, मंदिरस्थ देवों को प्रणाम करना चाहिए। शरीर से साष्टांग अथवा वाणी से प्रणाम यह भी संभव न हो तो मन ही मन से नमस्कार कर लेना चाहिए। इस प्रकार भक्ति से युक्त जिसका जीवन है वह मुक्ति दाता श्रीकृष्ण के चरणों को, प्रेम को पाने का अधिकारी है। उसे भक्ति अवश्य प्राप्त होती है। राजा बलि ने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। अंत में भगवान ने और देव ऋषियों ने बड़ाई की। तब उन्होंने कहा कि हमने तो प्रभु चरणों में पूरा एक प्रणाम भी नहीं कर पाया। आप ऐसे करुणामय हैं कि कोई थोड़ा भी पूजन करे, थोड़ी सी भक्ति करे तो आप उसे बहुत करके मानते हो।

११.–ज्ञान या भक्ति के द्वारा तीनों प्रकार के संचित, क्रियमान, प्रारब्ध कर्म नष्ट हो जाते हैं। जीवन मुक्त कर्मों के फल से लिप्त नहीं होता हैं अतः वह मुक्त हो जाता है। भगवान जब नेत्रों के सामने आते हैं तब श्रीकृष्ण अपने भक्त के नासिका आदि के सामने अपने सौन्दर्य, सुगंध, सुकुमारता, उदारता, करुणा आदि गुणों को प्रकट कर देते हैं। भक्त जितना–जितना आस्वादन करता है, उतनी ही आस्वादन की उत्कण्ठा बढ़ती जाती है। उनके हृदय में परमानन्द का सागर लहराने लगता है, वह स्वयं कृतार्थ हो जाता है उसके दर्शन–स्पर्श से अन्य जीव भी कृतार्थ हो जाते हैं।

१२.–भगवान ऐसी कृपा करें कि हम सत्य क्षमा का आश्रय लेकर साधन भजन परायण हो जावें। विश्वनाथ चक्रवर्ती ने श्रीकृष्ण के माधुर्य के अनुभव का क्रम बताया है–

१. संतों की कृपा, २. संतों की सेवा, ३. गुरु चरणों का आश्रय, ४. भक्ति के (अंगो के) आचरण की लालसा, ५. भागवत धर्म में श्रद्धा, ६. साधन भक्ति का आचरण, ७. अनर्थों की निवृति, ८. भजन में निष्ठा, ९. भजन में रुचि, १०. इष्ट में आसक्ति, ११. इष्ट में रति या भाव, १२. इष्ट में प्रेम, १३. इष्ट के दर्शन, १४. इष्ट श्रीकृष्ण की माधुरी का अनुभव।

१३.–श्रद्धा के विकास का क्रम–आत्म कल्याण के साथ विश्व कल्याण की भावना से प्रभु प्रसन्न होते हैं। क्योंकि विश्व भगवान का ही स्वरूप है। सबसे पहले ईश्वर में, फिर गुरुदेव में, फिर संतों में, फिर पिता-माता में, फिर सभी मनुष्यों में, फिर सभी प्रणियों में, फिर चराचर में श्रद्धा करनी चाहिए। सबमें ईश्वर व्याप्त है विराजमान है। यह भाव दृढ़ करना है। अन्त में अपना इष्ट ही सब रूपों में है यह ज्ञान हो जाय लक्ष्य यही रखना चाहिए। यह ज्ञान, ऐसी भावना कठिन है परन्तु बात सच्ची है, इसलिए स्वीकार करना चाहिए। जैसे-जैसे मन, बुद्धि शुद्ध होंगे वैसे-वैसे ज्ञान भक्ति सुदृढ़ होगी। जन्म जन्मान्तरों के साधनों से भक्ति रूपी सिद्धि प्राप्त होती है। सद्गुरुदेव, संत, भगवन्त की कृपा हो तो तत्क्षण ज्ञान और ज्ञान के बाद भक्ति की प्राप्ति हो जाती है। तारा को भगवान ने व्याकुल देखा तो दया आ गई। श्रीराम जी ने ज्ञान दिया और माया को दूर कर दिया तब तारा श्रीराम जी के चरणों में गिर पड़ी और उसने भक्ति का वरदान माँग लिया।

तारा बिकल देखि रघुराया। दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया।। मानस कि० १०/३
उपजा ग्यान चरन तब लागी। लीन्हेसि परम भगति बर माँगी।। मानस कि० १०/६

तारा को श्रीराम जी की कृपा से तत्क्षण ज्ञान हो गया फिर भक्ति मिली। ज्ञान का लाभ यही है कि भक्ति की प्राप्ति हो। भक्ति-प्रेम के बिना ज्ञान नीरस है।

१४.–हम प्राणियों के मन संसार में आसक्त रहते हैं। मन को संसार से हटाकर भगवान में जोड़ा जाय इसे ही योग कहते हैं। योग का अर्थ जोड़ होता है। जिसके द्वारा मन भगवान में जुड़े उसे ही योग कहते हैं। ऋषियों ने अनेक उपायों को बताया है अत: अनेक प्रकार के योग हैं। हम इस योग्य नहीं हैं कि योग की साधना करें। कर्मयोग,

ज्ञानयोग, सांख्ययोग, हठयोग, राजयोग आदि अनेक योग हैं। जो जिस योग का अधिकारी है गुरुदेव उसी योग का उपदेश देते हैं। पर श्रीमद्‌भागवत में एक ऐसे योग का भी वर्णन है जिसके सभी अधिकारी हैं। इसके लिए किसी प्रकार की योग्यता की जरुरत नहीं है वह है भक्तियोग। इस योग का वह अधिकारी है जिसके मन में भगवान को पाने की प्रबल इच्छा हो, हृदय कोमल, भगवद्‌गुणों के श्रवण में अश्रुपात, रोमांच हो ऐसे जीव भक्ति योग के अधिकारी है। भगवान को छल कपट अच्छा नहीं लगता है। जगत के प्रणियों से छल कपट करना ईश्वर के साथ ही छल कपट करना है। छल कपट किसी को भी अच्छा नहीं लगता है तो भगवान को कैसे अच्छा लगेगा।

निर्मल मन जन सो मोहिं पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।। मानस सुं० ४३/५

१५.–छल कपट जीवन में कैसे दूर हो? श्रद्धापूर्वक सत्संग, कृष्ण कथा श्रवण, संकीर्तन, जप इनके द्वारा मनुष्य परमपद एवं प्रेमाभक्ति प्राप्त कर सकता है। भक्ति से ही प्रभु में सरलता से मन जुड़ता है इसलिए भक्तियोग ही सर्वश्रेष्ठ है। अत: भक्तियोग बड़ा है। नवधाभक्ति के अतिरिक्त केवल चार अंगों का यदि कोई सेवन करे तो वह धन्य-धन्य, कृतकृत्य हो जाता है। इसी से इसे ऋजुयोग अर्थात् सरल या सुगम योग कहते हैं। इससे छल कपट दूर हो जाता है।

१६.–१. सत्संग, २. कथा श्रवण, ३. संकीर्तन तथा ४. जप। बस मात्र इतने से ही भक्तियोग सिद्ध हो जाता है। इन चार में सत्संग प्रमुख है। निरंतर सत्संग से भक्ति करने की योग्यता प्राप्त हो जाती है पूर्व जन्म के संस्कार से स्वाभाविकी भक्ति होती है। जैसे भूख, प्यास स्वाभाविक है, कोई यत्न नहीं करना पड़ता है उसी प्रकार भक्ति किए बिना रहा न जाय तो स्वाभाविकी भक्ति है। दूसरी भक्ति को वैधी कहेंगे। सत्संग और कथा श्रवण से भक्ति का माहात्म्य जानकर भक्ति करना, मन न लगने पर भी हठपूर्वक भक्ति के आचरण करना वैधी भक्ति है। भक्ति का आचरण आरंभ कर देने पर फिर उसमें रसाभास-स्वाद आता है और धीरे-धीरे भक्ति योग सिद्ध हो जाता है।

१७.–ज्ञान को और दान को तौला जा सकता है परन्तु कृष्ण नाम को और कृष्ण प्रेम को तौला नहीं जा सकता है अर्थात् उसका महत्व अपार है। ज्ञानी को विषयों का त्याग करना पड़ता है। हठपूर्वक वे त्याग कर देते हैं, परन्तु प्रेमी प्रेम में जब निमग्न होता है तब संसारी विषय अपने आप दूर हो जाते हैं। प्रेमी का निर्मल मन विषयों का

चिंतन नहीं करता है। प्रेमी का मन कुतर्क नहीं करता है। प्रभु संबंधी महिमा को सत्य मान लेता है। ज्ञानी इस बात के विवाद में पड़ा रहता है कि संसार सत्य है या असत्य। प्रेमी नाम-गुण-रूप और लीला के निरंतर चिंतन में रहता है। उसके आनंद में विभोर रहता है। संसार चाहे सत्य है चाहे असत्य पर प्रेम सत्य है। इस बात में कोई विवाद नहीं है। इसलिए सब कुछ करते हुए मन-वाणी को प्रभु नाम में लगाते रहना चाहिए। सब कुछ करने का उद्देश्य कृष्ण प्रेम प्राप्ति है। इस प्रकार जीवन को व्यतीत करना चाहिए।

१८.—आनंदकर श्रीकृष्ण के स्वरूप का चिंतन, सब कुछ एवं सब के स्वामी श्रीकृष्ण ही हैं ऐसा निश्चय, श्वास-श्वास पर नामोच्चारण, कानों से भगवान और भक्तचरित्र का श्रवण, नेत्रों से श्रीकृष्ण की प्रतिमाओं के, भक्तों के दर्शन, वाणी से भगवान के गुण प्रभाव का वर्णन, शरीर से भक्त भगवान की सेवा आदि वैष्णव धर्मों का आचरण श्रीकृष्ण की शरणागति के अंदर ही आ जाते हैं। कोई भी कर्म तब पवित्र होता है जब उसे श्रीकृष्ण के लिए करके कृष्णार्पण कर दिया जाय। यही कर्म रहस्य है।

१९.—भगवान के अर्चा विग्रह अति सुलभ हैं। वे भक्तों के अधीन रहते हैं। भक्त पुजारीजन उन्हें जगाते हैं, स्नान कराते हैं, खिलाते-पिलाते तथा शयन कराते हैं। पूर्णरूप से भगवान के अधीन सारा संसार है पर भगवान अर्चा विग्रह को स्वीकार करके भक्तों के अधीन हो जाते हैं। मैं भक्त के अधीन हूँ। दुर्वासा के प्रति कहे गए इस वाक्य को सत्य करते हैं। अर्चा विग्रहों का, गो, ब्राह्मणों, संतों, गुरुजनों का पूजन-दर्शन करने वाले को प्रभु प्रेम की, प्रसन्नता की प्राप्ति होती है। भक्त-भगवंत का गुणगान करके प्राणी कृतार्थ हो जाता है। जिसके संकल्प विचार दुष्ट हैं वे भक्तों की निंदा करते हैं, उनसे द्वेष करते हैं, फलस्वरूप आवागमन एवं नरकों में पड़ते हैं। अपने घमण्ड में चूर मनुष्य भक्त महिमा को नहीं जान सकते हैं। भोगों को भोगकर, पुण्यों को निष्काम कर्म करके भक्तजन मुक्त हो जाते हैं। प्रारब्ध के सुख दुखों से भी अलग हो जाते हैं। भगवान की भक्तों के साथ हुई एक-एक लीला का चिंतन करने से उसमें मन डूब जाता है।

२०.—जो भक्तजन निरंतर भक्ति सरिता में गोते लगाते रहते हैं अर्थात् मन, वाणी, शरीर से भक्तिमय कार्य करते हैं उनके सामने अपने आप आई कैवल्य मुक्ति का भी आदर नहीं होता है। क्योंकि भक्ति यह सबसे श्रेष्ठ पदार्थ है। पाँचवां पुरुषार्थ है। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ये चार पदार्थ हैं। भक्ति सर्वश्रेष्ठ पदार्थ एवं पुरुषार्थ है। इसे पाने के

लिए मन में इच्छा रखनी चाहिए और मन वाणी से तथा शरीर से साधन करना चाहिए। जिस प्रकार भगवान अनन्त अनादि एवं दयामय है उसी तरह भगवत् शरणागत भक्त भी दयामय होते हैं। यद्यपि प्रभु अन्तर्यामी रूप से दुष्टों के हृदय में भी स्थित रहते हैं परन्तु वे बिना भक्ति के उनकी आँखों से ओझल रहते हैं। प्रभु कहते है कि मेरी कथा सुधा में गोता लगाने से अर्थात् प्रेमपूर्वक कथा श्रवण से सारा जगत पवित्र हो जाता है इसलिए मेरा नाम विकुण्ठ है। यह कीर्ति हमको भक्तों के द्वारा ही प्राप्त हुई है।

२१.—श्रीप्रह्लाद जी स्मरण भक्ति के आचार्य है। सच्चा स्मरण उसे कहते हैं कि जब अपने नेत्र, श्रोत्र, त्वचा, मन, बुद्धि आदि के विषय केवल अपने इष्टदेव ही हों। नेत्र से यदि श्वान दिखाई पड़ा हमने उसे नीच समझकर उसको मारा-तिरस्कृत कर दिया तो हमारा स्मरण खण्डित हो गया। प्रभु ही सब रूपों में हैं फिर चाहे वह स्थावर हो या जंगम। जब तलवार, विष, अग्नि, सिंह, हाथी आदि को प्रह्लाद जी ने अपना इष्ट ही माना और पूर्ण विश्वास के साथ माना तब तलवार कैसे काटे? विष कैसे मारे? अग्नि कैसे जलावे? सिंह कैसे खाय? हाथी कैसे कुचले? भक्तों की वाणी को सत्य तो किया ही ब्रह्मा के वरदान मिथ्या नहीं होने दिए। खंभ में भी हैं अत: खंभ से ही प्रगट हुए। प्रभु ने अपनी वाणी को भी सत्य किया। **'यदा यदा हि धर्मस्य०'**—जब अधर्म का अभ्युत्थान धर्म की ग्लानि होगी तो उस समय धर्म संस्थापनार्थ, दुष्ट विनाशनार्थ, भक्त रक्षार्थ मैं प्रकट होता हूँ, अवतार लेता हूँ। प्रभु की यह वाणी भी सत्य हुई। महाभागवत प्रह्लाद के उपदेशों का सार यह है कि जब से सुधि बुधि हो तभी से वैष्णव धर्म का आचरण करना। वृद्धावस्था में भजन करुँगा ऐसा नहीं सोचना। देह नाशवान है इससे अविनाशी प्रभु प्रेम प्राप्त करना ही बुद्धिमानी है, उत्तमोत्तम व्यापार है। भगवद् को प्रसन्न करने के लिए देवत्व, ऋषित्व, ब्राह्मणत्व आदि की अपेक्षा नहीं है। दैत्य, दानव, शूद्र, चाण्डाल, स्त्री आदि सभी को भगवान की शरण में जाने का, भक्ति करने का अधिकार है।

नृसिंह की स्तुति करते हुए प्रह्लाद जी ने कहा-ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण, सिद्ध, ऋषि, मुनि, देवों ने वेद वाणी से आपके विशिष्ट गुणों को लगातार विस्तारपूर्वक वर्णन किया पर आप प्रसन्न नहीं हुए। वही प्रभु मेरी स्तुति से कैसे संतुष्ट होंगे, क्योंकि मैं एक तो बालक अर्थात् अज्ञानी दूसरे दैत्य अर्थात् तामसी। (यह श्रीप्रह्लाद का महान दैन्य है।)

विद्या, तप, तेज, रूप, बल, ऐश्वर्य, धन, परिवार, उच्चकुल में जन्म, बुद्धि आदि विशिष्ट बारह गुण आपको प्रसन्न करने के लिए पर्याप्त नही हैं परन्तु भक्ति मात्र से आप सर्वगुणहीन तामसी पशु गजेन्द्र के ऊपर भी प्रसन्न हो गये। (यह मैं मानता और जानता हूँ) उक्त बारह उत्तम गुणों से युक्त कोई ब्राह्मण हो और भक्ति से यदि विमुख है, तो उस ब्राह्मण से वह चाण्डाल श्रेष्ठ है जिसने अपने मन, वाणी, कर्म, लोक, परलोक, प्राण आदि को भगवदर्पण कर दिया है क्योंकि वह भक्त (चाण्डाल) अपने को तथा अपने कुल को पवित्र करता है। अभक्त ब्राह्मण अहंकारयुक्त होने के कारण केवल अपने को भी पवित्र नहीं कर पाता है। प्रभो! आप करुणामय हैं। अज्ञानी पुरुषों के द्वारा अपनी पूजा कराना नहीं चाहते हैं। स्वयं अपने लाभ से पूर्ण आप आत्माराम हैं। इतने पर भी जो आपका पूजन या सम्मान करते हैं उसका लाभ उन्हें पूजन करने वालों को अवश्य मिलता है। जैसे मुख का (बिम्ब का) शृंगार करने पर दर्पण के प्रतिबिम्ब का शृंगार अपने आप हो जाता है।

२२.–हरि वर्ष में श्रीनृसिंह भगवान विराजते हैं और श्रीप्रह्लाद जी उनके मंत्र का जप करके उनकी स्तुति करते हुए कहते है कि–**'स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां।'** हे प्रभो! आपकी कृपा से विश्व का कल्याण हो, दुष्टों का मन प्रसन्न हो उनकी व्याकुलता मिट जाय। **'ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथोधिया'** प्राणी परस्पर एक दूसरे के कल्याण की भावना करें। मेरा मन शिव संकल्प वाला हो और हमारी निष्काम बुद्धि भगवान में लगे। पुनः **यस्यास्ति भक्ति०**–जिसमें भगवान की अकिंचना अनन्या भक्ति है उसमें सभी देवों के साथ उत्तमगुण निवास करते हैं और जो अभक्त हैं उनमें उत्तम गुण कहाँ से आवेंगे। वे लोग तो मिथ्या मनोरथों के चक्कर में पड़कर इन्द्रियों के तुच्छ भोगों के भोगने में आसक्त हैं।

श्रीप्रह्लाद जी के संबंध में लिखे गये ये वाक्य भागवत जी के अनुसार हैं। इनका अति विशाल भक्ति भाव है।

२३.–मीन भगवान बड़े से बड़े हो गए पर भाषा उनकी नहीं बदली। अपने रहने के लिए विस्तृत स्थान और रक्षा की माँग करते रहे। इसी प्रकार यदि कदाचित् भक्त बड़ा हो जाय सिद्ध हो जाय तो भी उसे दैन्य का त्याग नहीं करना चाहिए। बड़े से बड़े स्थान की याचना करनी चाहिए। बड़े से बड़ा स्थान भक्त के लिए भगवत् चरण हैं और भगवान के लिए भक्त हृदय है। यही स्थान निर्भयता देते हैं अन्यत्र तो भय है।

२४.—भक्ति का आचरण करते हुए भक्ति को बढ़ाना चाहिए। दूसरों पर कृपा करना उत्तम है पर पहले अपने ऊपर कृपा करनी चाहिए। अपने को कुमार्ग से बचाना, सन्मार्ग में ले जाना ही अपने ऊपर कृपा करना है। अपने को कुमार्ग में ले जाने वाले ही आत्मघाती हैं। ऐसों को सत्संग या भगवत् कथा प्रिय नहीं होती है। इस प्रकार स्वयं को जानकर अपने ही द्वारा अपना उद्धार करना चाहिए।

२५.—नित्य भगवान की कथा, सत्संग चर्चा जहाँ होती है वहाँ कलियुग का प्रभाव नहीं होता है क्योंकि वहाँ प्रह्लाद आदि भक्त वैष्णव रहते हैं। श्रद्धापूर्वक भगवान की पूजा करने वाले इस लोक में भी भगवद्धाम में है। शरीर का त्यागकर अन्त में भी हरि धाम में वास करेंगे। जो काम, क्रोध, मोह आदि के वश में होकर मर्यादा का उल्लंघन करते हैं, दूसरों को पीड़ा पहुँचाते हैं, ऐसे विमुख लोग यहाँ नरक में हैं और मरने के बाद भी वे लोग नरक में कष्ट भोगेंगे।

२६.—शास्त्रों में प्रभु प्राप्ति के भिन्न-भिन्न उपाय बताए गए हैं, उनमें चार मुख्य है। यथा-१. कर्म, २. योग, ३. ज्ञान, ४. भक्ति। इन चार में कौन मार्ग सर्वश्रेष्ठ है जिस पर सभी चल सकें। इस संबंध में बहुत ही विचार विमर्श के बाद गुरुजनों ने भागवत पुराण आदि के आधार पर यह निर्णय किया कि उक्त चार वर्णित मार्गों में भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है। श्रीकृष्ण भक्ति को प्राप्त कर लेने के बाद फिर कुछ पाना शेष नहीं रह जाता है। भक्ति के रहस्य को जान लेने के बाद फिर कुछ जानना बाकी नहीं रह जाता है। श्रीनारद, वेदव्यास, कपिल आदि सभी के मत से भक्ति श्रेष्ठ है। माया के बंधन से छूटकर कृष्ण प्राप्ति या कृष्ण सेवा प्राप्ति का एक मात्र प्रमुख उपाय भक्ति है। भक्ति श्रीकृष्ण के पास पहुँचाती है। भक्ति श्रीकृष्ण का दर्शन एवं अनुभव कराती है। भक्ति के वश में श्रीकृष्ण रहते हैं इसलिए भक्ति ही श्रेष्ठ है।

२७.—भगवान श्रीकपिलदेव जी ने अपनी माता देवहूति जी को बताया कि मेरे गुण और चरित्रों के श्रवण करने से, मेरे नामों का कीर्तन करने से, मेरे रूप का ध्यान करने से, मेरे भक्तों के साथ सत्संग करने से, मेरे भक्तों की सेवा करने से, शास्त्र मर्यादा का पालन करने से, पिता-माता आदि की सेवा करने से, सत्य, ब्रह्मचर्य, अहिंसाव्रत का पालन करने से, अहंता ममता को त्यागने से भक्ति प्राप्त होती है। भक्ति होने पर मन में यह शुद्ध भाव दृढ़ हो जाता है कि भगवान हमारे स्वामी हैं, हम भगवान के

दास हैं। हमारा शरीर, हमारा परिवार, हमारा सब कुछ भगवान का है। सब कुछ के रक्षक भगवान हैं। जो कुछ सुख-दुख मिलता है उसमें भगवान की कृपा ही मुख्य है।

२८.-भक्ति प्राप्त कर लेने के बाद संसारी सुखों को भोगने की लोलुपता नहीं रहती है। जो कुछ सुख प्रभु कृपा से मिलते हैं उन्हें प्रभु का प्रसाद समझकर भोगना है। जब भी अपने मन में संसारी इच्छाओं की चाह होती है तब उसके पवित्र मन की इच्छाओं को प्रभु पूर्ण करते हैं। भगवान भक्त को प्रसन्न देखना चाहते हैं। भगवान भक्त को प्रसन्न रखने के लिए सब कुछ करते कराते रहते हैं।

२९.-भक्त भक्ति प्राप्त करके श्रीकृष्ण से कुछ माँगता नहीं है। क्योंकि भक्त की सब जरुरतों को भगवान जानते हैं। बिना माँगे ही भगवान जो आवश्यक है उसे देते हैं। भक्ति के इस जन्म के संस्कार अगले जन्म तक नष्ट नहीं होते हैं। वैष्णव वेषभूषा को धारण करने वाले के पास भूत प्रेत आदि बाधायें नहीं आती हैं। प्रातः शीघ्र उठकर स्नान करके कुछ भजन पूजन नमस्कार करके अन्य व्यवहार, व्यापार करना चाहिए। सायं प्रातः एवं सोने से पहले और जागने के बाद प्रभु का स्मरण अवश्य करना चाहिए। इसके बाद जब यह अभ्यास बढ़ जाता है तब हर समय प्रभु की याद आती है उनका नाम जिह्वा पर आता है।

३०.सत्य, दया, क्षमा, अहिंसा, सदाचार यह भक्ति की नींव है, बिना इनके भजन पूरा फल नहीं देता है। हम भगवान के सर्वथा अधीन हैं अतः प्रभु हमको पाप से बचावें। भक्ति के पथ पर चलने की प्रेरणा दें।

३१.-मन के द्वारा ही दुष्ट कर्म होते हैं और उसी मन से उनकी शांति भी होती है। मन में तामस प्रधान रहने पर दुष्ट कर्म शरीर से बनते हैं उनसे बंधन होता है। वही मन जब सात्विकता में आ जाता है तो उससे सात्विक कर्म बनते हैं। वे मोक्षदाता अर्थात् बंधन से छुड़ाने वाले होते हैं। कुसंग से मन, बुद्धि में तामस और सत्संग से मन, बुद्धि में सात्विकता आती है। अतः कुसंग त्याज्य है और सत्संग ग्राह्य है।

३२.-सत्संग में सबसे पहले प्रार्थना करनी चाहिए। प्रार्थना का तात्पर्य है-प्र=प्रकृष्ट अर्थात् श्रेष्ठ, अर्थना=अर्चना। प्रार्थना श्रेष्ठ पूजन है। अपनी जानकारी में जो सबसे श्रेष्ठ और श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ जो वस्तु हो उसे पाने के लिए तीव्र अभिलाषा को, उसके न मिलने पर जो व्याकुलता हो उसके प्रकट करने का, इष्ट सिद्धि का जो प्रयास है उसे

ही प्रार्थना कहते हैं। जिसे सबसे अधिक प्रिय मानते हो, जिसे सर्वोत्तम सत्य मानते हो, जिसमें सर्वोत्तम आनंद मानते हो, उसे अपने जीवन में, हृदय में, अपने समक्ष प्रकट करने की इच्छा को पूर्ण करने के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

३३.—प्रार्थना में चार बातें होती हैं, होनी चाहिए :—

१. यह भाव मन में रहे कि हम अपनी बुद्धि से, अपने साधनों से, आपको, आपके प्रेम को प्राप्त नहीं कर सकते ऐसा दैन्य अपने में चाहिए।

२. हम जिससे प्रार्थना कर रहे हैं वह हमारा इष्टदेव दयालु, कोमल हृदय, सर्वत्र हैं, उदार है अपने दास की सात्विक इच्छा को पूर्ण करने वाला है, हमारा हितकारी हैं, उससे ज्येष्ठ-श्रेष्ठ कोई नहीं है। उसकी भक्ति आवागमन से, मायाचक्र से छुड़ाने वाली है। उसमें पूर्ण विश्वास हमारा हो।

३. तीसरी बात यह है—प्रार्थना करते समय मन से एकाग्र होकर तन्मय हो जाना चाहिए।

४. तन्मय होने पर वासना आदि विकार नहीं रह जाते हैं। जैसे प्रभु रक्खें उसी प्रकार मैं रहूँगा, यह भाव चाहिए।

३४.—प्रार्थना से वेद, रामायण, महाभारत, भागवत आदि पुराण भरे पड़े हैं। सभी भाषाओं के सभी संतों ने प्रार्थनाएँ की हैं। उनकी वाणी द्वारा प्रार्थना करनी चाहिए। प्रार्थना में प्रभु के स्वरूप का, अपने स्वरूप का वर्णन होना चाहिए। सूर, तुलसी, मीरा, हरिदास आदि के पदों द्वारा प्रार्थना कर्त्तव्य है।

३५.—पूजा के जितने उपचार जल, चन्दन, तुलसी, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि हैं उनके अर्पण के समय प्रार्थना रहनी चाहिए। मंत्रों का प्रयोग करते हुए सभी उपचार अर्पण करना चाहिए। हृदय का भाव अर्पण करने पर हृदय के भाव को देखकर प्रभु शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं, उपचार के साथ प्रार्थना होनी चाहिए। केवल प्रार्थना की जाय कोई उपचार न हो तो भी प्रभु प्रसन्न होकर अपने तक को दे देते हैं।

३६.—भगवन्नाम, भगवद् भक्ति को छोड़कर संसारी पदार्थो में मिलावट आ गई है। शुद्ध घृत, दुग्ध, जल, फल, अन्न आदि दुर्लभ हैं। प्रभु का शुद्ध प्रेम व नाम सुलभ है।

३७.—नवरात्र में नौ दिन का भक्तिमय वातावरण विशेष रूप से हो जाता है। नव दुर्गा का समय रहता है। इसी उत्सव में अपना उत्सव भी हो जाता है। देवी की

उत्तमोत्तम झांकियों के दर्शन होते हैं। श्रीशक्ति महोत्सव के बीच में श्रीभक्ति महोत्सव की शोभा विशेष हो जाती है। शक्ति की शक्ति, भक्ति देवी हैं। अंत:करण की शुद्धि जब तक नहीं होती तब तक सब अपूर्ण है। मन-बुद्धि की और अहंकार की शुद्धि होना आवश्यक है। **'आहार शुद्धौ सत्व शुद्धि:।'** आहार की शुद्धि से अंत:करण की शुद्धि होती है। आहार का तात्पर्य केवल भोजन से नहीं है। सभी इन्द्रियों से जो विषयों का ग्रहण होता है वह आहार है। नेत्र का आहार रूप दर्शन है। कर्ण का आहार श्रवण है। त्वचा का आहार स्पर्श है। नासिका का आहार गंध है। जिह्वा का आहार रस है। इनकी शुद्धि भक्ति से होती है।

३८.-**'हृषीकेण हृषीकेश सेवनं भक्तिरुच्यते।'** इन्द्रियों के समूह से इन्द्रियों के स्वामी की सेवा करना ही भक्ति है। जैसे श्रीअम्बरीष सभी इन्द्रियों से भक्ति करते थे। इसलिए उनकी इन्द्रियाँ शुद्ध आहार का ग्रहण करती थीं, अत: श्रीअम्बरीष का अंत:करण शुद्ध था। मल मूत्रेन्द्रियां प्रत्यक्ष सेवा में प्रयुक्त नहीं होती हैं किन्तु इनके द्वारा मल मूत्र का त्याग हुए बिना सेवा में उपस्थित होने की योग्यता नहीं होती है, अत: इनका भी उपयोग भक्ति में समझना चाहिए। उक्त विधि से भक्तजन सत्व की शुद्धि करते हैं।

३९.-ज्ञानी जन सभी इन्द्रियों के विषयों का सर्वथा त्याग कर सत्व शुद्धि का प्रयास करते हैं। इसमें कठिनाई है और सामान्य के लिए तो असंभव ही है। पर भक्त बिना कठिनाई के इन्द्रियों से भगवद् विषयों का मधुर आस्वादन करते हैं और प्रभु की कृपा से सहज ही सत्व शुद्धि कर लेते हैं। ज्ञानी भूखा प्यासा रहकर सभी विषयों का त्याग करता है। दु:ख का अनुभव करता है।

४०.-भक्ति के आचरण में साधन और साध्य दोनों ही परमानन्दमय हैं। यही भक्ति का श्रैष्ठ्य है।

४१.-जब चारों ओर से जल प्राप्त होता है तब कुयें की जरुरत नहीं रह जाती। इस तरह प्रेमाभक्ति के सुख को प्राप्त कर लेने पर संसार के, धन के, इन्द्रियों के सुखों को प्राप्त करने की इच्छा नहीं रह जाती है। कष्ट से वह दूर हो जाता है उसे शारीरिक या मानसिक कष्टों का अनुभव नहीं होता है जैसे श्रीजयदेव कवि। नारदजी के अनुसार प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है अर्थात् उसके संबंध में कुछ ठीक-ठीक कहते नहीं

बनता है। अनुमान से, अनुभव से संतों ने जैसा कहा है वह ही कहा सुना जाता है। लोभी को उपदेश नहीं देना पड़ता है कि तुम धन से प्रेम करो। उसका धन से सहज ही मोह होता है। धन के मोह को प्रेम नहीं कहना चाहिए। प्रेम चैतन्य प्रभु में और सच्चे संतों में हो सकता है। जड़ और नाशवान में प्रेम नहीं हो सकता है। उसमें जो आसक्ति है उसे मोह कहना चाहिए। धन से हमारी आसक्ति है पर वह धन जड़ होने से हममें आसक्ति नही करेगा। प्रेम विशुद्ध है मोह कामना से युक्त है। प्रेम स्वार्थ रहित है मोह में स्वार्थ है।

४२.—माता का पुत्र में वात्सल्य प्रेम होता है। पुत्र भी माता के पास रहना चाहता है इससे स्वयं अपने को सुखी बनाना चाहता है पर आगे चलकर वह पुत्र माता की आज्ञानुसार चलना नहीं चाहता है। प्रेम में ऐसा नहीं होता है। वह अपने प्रेमास्पद को हर प्रकार सुखी रखना चाहता है इस बात को सोचा करता है कि कौन सा कार्य करूँ जिससे मेरा प्रेमी सुखी हो जाय। ऐसा प्रेम भगवान और भक्तों में पाया जाता है। गुरुजन अपने शिष्य भक्तों का कल्याण करने की इच्छा रखते हैं। शिष्यगण गुरुजनों को संतुष्ट करने के सारे प्रयत्न करते हैं।

४३.—पतिव्रता अपने सुख के लिए पति से प्रेम नहीं करती है वह पति को प्रसन्न करने के लिए पति से प्रेम करती है। साधारण स्त्रियाँ अपने सुख के लिए पति से प्रेम करती हैं, पति के सुख के लिए नहीं। यहाँ प्रेम नहीं है, विशुद्ध प्रेम नहीं है यहाँ मोह ही है। परन्तु परमात्मा में इस प्रकार का मोह यानी सकाम भाव भी उत्तम है जैसे कुब्जा का प्रेम भी प्रशंसनीय है। अन्त में मथुरा के उजड़ने पर कुब्जा वृन्दावन में आ गई और ब्रज गोपियों के सत्संग से उसे भी निष्काम प्रेम की प्राप्ति हो गई। भगवान से प्रेम करके कोई भगवान की ओर एक कदम चलता है तो भगवान उस भक्त की ओर अनेक कदम आते हैं। धन धरती के मोह में कष्ट सहें तो वह मेरी ओर आने वाला नहीं है। पुत्र प्रपौत्र में मोह है इसके भले के लिए सब कुछ किया जाता है उससे सुख की आशा है, निष्कामता नहीं है।

४४.—पुत्र दुष्ट दुराचारी हो गया जेल गया तो माता छुड़ाने का यत्न करती है। यह मोह कष्टप्रद हुआ। तात्पर्य पुत्रादि में विशुद्ध प्रेम नहीं बन सकता वह मोह है। यदि

प्रेम है तो उसके द्वारा तो परमानन्द की प्राप्ति ही होनी चाहिए। प्रेम में अनन्यता आती है तब उससे भगवत् प्राप्ति हो जाती है। मुक्ति के लिए प्रेम करना अच्छा है पर सर्वोच्च प्रेम वह है जो प्रेम के लिए किया जाय। मुक्ति प्राप्ति में जीव का स्वार्थ है कि मैं आवागमन के चक्र से छूट जाऊँ, संसार के कष्टों से छुटकारा मिल जाये पर प्रेम में यह स्वार्थ नहीं है। अतः मोक्ष से भी प्रेम श्रेष्ठ है। किसी भी विपत्ति से प्रेमी घबड़ाता नहीं है उसमें प्रभु की कृपा का अनुभव करता है ऐसा विशुद्ध प्रेम भाग्यवती गोपियों में था। कृष्ण कृपा से उद्धवजी पर गोपियों की कृपा हुई, प्रेम के सच्चे स्वरूप को वे जान सके।

४५.–भौतिक नाशवान सौंदर्य जिसमें है ऐसी सुन्दरी के कटाक्षों से प्राणी घायल होकर पागल हो जाता है। उसी में आनंद मानता है यह एक अति तुच्छ बात है। तो फिर परमानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण के करुणकटाक्ष का जिसे दर्शन हो जाय तो उसकी क्या दशा होगी? किस आनंद में वह मग्न होगा उसे जगत कैसा दीखता होगा? हम लोग उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते।

भगवत् प्रेमी भी मूक बनकर आस्वादन करता है उसे कह नहीं सकता है। ऐसे प्रेम के बदले भगवान बिक जाते हैं चित्रकूट में पहुँचने पर ऐसा प्रेम श्रीभरत जी में प्रकट हो गया तो जड़ चेतन हो गए, चेतन जड़ हो गए। तब श्रीभरत जी की क्या और कैसी दशा होगी इसे कौन कह सकता है। प्रेमी लोग कुछ अनुभव और अनुमान कर सकते हैं। इसे विशुद्ध, उज्ज्वल और अलौकिक प्रेम कहते हैं। जय श्री हरिः।

४६.–ज्ञान और भक्ति प्रारब्ध के बल से नहीं मिलते हैं। इन्हें पाने के लिए अथक परिश्रम की अति आवश्यकता है। संसार के सुख तथा दुःख ये जैसे प्रारब्ध में होंगे बिना प्रयास के भी मिलेंगे। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उद्योग नहीं करना चाहिए। ज्ञानी मनुष्य जब परमहंस भाव को प्राप्त कर लेता है तब वह अजगर की तरह पड़ा रहता है अपने खाने पीने की चिंता न करके आत्मचिंतन, ईश्वर चिंतन करता है उसके संबंध की चिंता ईश्वर करता है। परन्तु विद्या-भक्ति को, ज्ञान को प्राप्त करने के लिए भाग्य के भरोसे नहीं रहना चाहिए उसे पाने के लिए मन, वाणी, शरीर से भगवान का भजन-पूजन, शास्त्रों का अध्ययन, सत्संग अवश्य करना चाहिए।

४७.–**'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरे शयनम्।'**

(श्री शंकराचार्य)

जड़ माया से मोहित जीव बार-बार पैदा होता है और बार-बार मरता है। बार-बार जननी के उदर में शयन करता है पर वैष्णव दीक्षा से दीक्षित होकर आवागमन के चक्र से छूटना नहीं चाहता है। प्रभु सद्बुद्धि दें। अपना दास बना लें।

४८.—प्रभु की शरण में जाकर, उनका बनकर, उन्हें अपना मानकर शरणागत के समान आचरण करता हुआ जब कीर्तन, श्रवण, सत्संग करता है, तो प्रेम का हृदय में प्राकट्य होता है। प्रेम पुष्ट होता है। बिना शरणगति के, श्रवण-कीर्तन आदि से सात्विकता से समय बीतता है पर प्रेम का हृदय में अविर्भाव नहीं होता है। माधुर्य प्रेम के दृढ़ होने पर फिर ऐश्वर्य का बोध नहीं रहता है। जैसे सम्राट और महारानी के सामने शिशु उसे राजा-रानी का सा आदर नहीं देता है। उसी प्रकार गोपियों के माधुर्य प्रेम में ऐश्वर्य का स्थान नहीं रहता है। जैसे युद्ध काल में विभीषणजी में अति प्रेम अर्थात् माधुर्य का उदय हुआ तो उसी से यह भ्रम हो गया कि इनके पास रथ, कवच, पादत्राण नहीं हैं फिर ये रावण को कैसे जीतेंगे? ईश्वर का पराक्रम अपार है बिना रथ, कवच, पादत्राण के भी वह विश्व विजय कर सकता है। माधुर्य प्रेम से प्रभु अपने भक्त के अति निकट आ जाते हैं। ऐश्वर्य प्रधान प्रेम से प्रभु उतना प्रसन्न नहीं होते हैं जितना कि माधुर्य प्रधान प्रेम से। ईश्वर को ऐश्वर्य छोड़ नहीं सकता। माधुर्य ऐश्वर्य दोनों प्रभु में नित्य रहते हैं जैसा भी प्रेम प्रभु देते हैं वहीं मिलता है। स्वयं जैसे प्रेम का आस्वादन प्रभु करना चाहते हैं वैसा प्रेम भक्त में प्रकट करके स्वयं आनन्दित होते हैं। भक्त को आनंद देते हैं।

४९.—अपने मन में प्रेम जागृत हो इसके लिए भगवत् कृपा ही कारण है। प्रेम को बढ़ाने के लिए विरह और मिलन जरुरी है। ये भी प्रभु कृपा से ही प्राप्त होते हैं। कृपा प्राप्ति के लिए प्रभु की शरणागति ही मुख्य है।

शरणागति के लिए मन से संसार का, संसार के सुखों का त्याग जरुरी है। शरीर में ममता न रखकर परिवार पालन, वर्णाश्रम धर्म का पालन आदि कर्म करना चाहिये। यह भी प्रभु की प्रसन्नता के लिए। संसार कैसा है? इसका ज्ञान संसार से अलग होने पर होता है। संसार से मन हटाये बिना संसार का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता है, उसकी असारता समझ में नहीं आती है। भगवान कैसे हैं? इसका ज्ञान भगवान में मन लगाने से होता है। भगवान से एकता होने पर ही पता चलेगा कि भगवान कैसे हैं। जीवात्मा

की एकात्मकता परमात्मा से है। संसार से जीवात्मा की एकता नहीं है। अगर संसार से जीवात्मा की एकता होती तो उसमें मन लगने लगाने के बाद वहाँ से मन को हटना नहीं चाहिए।

५०.–अपना शरीर और संसार इसमें जो आसक्ति है उसका कारण यह है कि हम उसकी नश्वरता, दु:खरूपता को नहीं जानते हैं। संसार में अति आसक्ति के बाद एक न एक दिन ऐसा आवेगा कि वहाँ से मन हट जायेगा। ईश्वर से जीव की एकता का प्रमाण यही है कि एक बार यदि मन लग जाय तो सदा सर्वदा के लिए तल्लीनता हो जायगी, लाख और रंग की तरह। पिघली लाख में रंग के मिलने के बाद उसे अलग–अलग नहीं किया जा सकता है वे स्वयं चाहे कि हम अलग हो जाये तो भी नही हो सकते। भावुक भक्त संसार को ईश्वर मान कर उसके साथ बुरा व्यवहार नहीं करता है मन ही मन उसे नमस्कार करता है पर तमोगुणी, रजोगुणी संसार में लीन नहीं होता है। ईश्वर मानकर संसार को प्रणाम करना चाहिए। माया और उसके कार्य से अपने को बचाना चाहिए।

५१.–केवल श्रीकृष्ण का सौंदर्य माधुर्य है, जीवों के सौंदर्य माधुर्य क्षणिक हैं। ईश्वर के नित्य हैं। अत: श्रीराधाकृष्ण के सौंदर्य माधुर्य का चिंतन करना चाहिए उसी से मन–बुद्धि में शान्ति आती है। श्रीकृष्ण के नाम रूप की झलक आते ही हृदय शुद्ध परमानन्द से भर जाता है किसी वस्तु की कामना नहीं रहती है। कृष्ण प्रेम से हृदय में सभी सद्गुण अपने आप आ जाते हैं। सभी इन्द्रियों की चंचलता दूर हो जाती है।

श्रीकृष्ण आपके हृदय में विश्राम करें सतत विश्राम करें। जय राधे।

५२.–इस संसार में अपने ही प्रारब्ध के अनुसार सुख–दु:ख प्राप्त होते हैं परन्तु भगवान का अनन्य भक्त सुख–दु:ख में अपने इष्टदेव की कृपा का अनुभव करता है। हानि–लाभ में दूसरों को कारण मानकर उनसे राग–द्वेष नहीं करता है जिसने आत्मसमर्पण किया है उसे निश्चिंत रहना चाहिए। प्रभु जैसे रखे उसी प्रकार रहकर सर्वेश्वर को धन्यवाद देना चाहिए।

५३.–हरि भक्ति क्लेशघ्नी है। अविद्या माया से काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर प्रकट हो जाते हैं उनकी मात्रा कुसंग से बढ़ती है सत्संग से घटती है। सत्संग से अथवा सन्त–भगवन्त के विशेष अनुग्रह से भगवद् भक्ति में बाधक क्लेशों का नाश हो जाता है। जैसे–जैसे उक्त विकार घटेंगे वैसे–वैसे हरि भक्ति बढ़ेगी। पूर्णरूप से विकारों के नष्ट होने

पर भक्ति की पूर्णता होगी। भक्त और भगवान उक्त विकारों के अधीन नहीं होते हैं। विमुख जीव कामादि के अधीन हो जाता है। भगवान काम-क्रोध को अपने में प्रकट करते हैं, युद्ध आदि के समय दुष्ट विनाशन के लिए प्रभु में क्रोध दीखता है उस समय भी क्रोध प्रभु के अधीन रहता है। प्रभु क्रोध के अधीन नहीं होते हैं।

काम आदि मद दंभ न जाके। तात निरंतर बस मैं ताके॥

हनुमानादि भक्त भी भगवान की तरह क्रोध के अधीन नहीं होते। भगवत् लीला में सहायक भक्त भी भगवान की तरह दुष्ट दमनादि करता है पर वह पापों से लिप्त नहीं होता। अन्यथा 'क्रोध पाप कर मूल।'

५४.–दूसरा भक्ति का विशेषण है **शुभदा**-सब प्रकार के लौकिक पारलौकिक मंगल कल्याण सुख शांति की प्राप्ति भक्ति से होती है। स्वयं कल्याणमय बनकर भक्त दूसरों का कल्याण करता है। मोक्ष पर्यन्त सुख की कामना भक्त नहीं करता है। प्रभु जैसे रखना चाहें वैसे रहने के लिए तैयार रहता है। प्रभु की इच्छा और प्रसन्नता में भक्त प्रसन्न रहता है, उसी में अपना कल्याण मानता है। उसकी इच्छा वही रहती है कि हमको निरंतर भगवत् सेवा स्मृति सुख मिले।

५५.–भक्ति का तीसरा विशेषण है-**'सान्द्रानन्द विशेषात्मा।'** एक विरल आनन्द होता है और एक घना आनंद होता है। वृक्ष की विरल छाया में धूप भी रहती है उससे कष्ट भी रहता है, सघन छाया में धूप का प्रवेश नहीं होता है, पूर्ण छाया का सुख रहता है। दूसरा दृष्टांत जैसे दूध है उसमें जल और मिल गया तो उसका स्वाद फीका हो जाता है पौष्टिक तत्व की कमी हो जाती है। दूध को आग में गर्म करके गाढ़ा कर दिया जाता है तो घना स्वाद और पौष्टिकता आ जाती है। वैसे ही अन्य यज्ञ, धर्म, दान आदि के द्वारा प्राप्त आनंद विरल रहता है और भक्ति का आनन्द सघन है अविनाशी है।

५६.–भक्ति का चौथा विशेषण-**मोक्ष लघुताकृत**-कैवल्य मोक्ष की प्राप्ति में ज्ञानीजन परमानन्द मानते है। सबसे बड़ा सुख जीव का ईश्वर में लय होना है पर भक्त अपनी सत्ता खोकर सुख नहीं चाहता है। इसमें सेवा नहीं है। दर्शन, स्पर्श, श्रवण सुख नहीं है। भक्ति देवी मोक्ष के सुख को तुच्छ कर देती हैं, तब उसके सामने स्वर्ग आदि के सुखों की क्या गिनती है। अद्वैतवादी ज्ञानी का अंतिम सुख कैवल्य मोक्ष है इस सुख का जो त्याग करते है उन्हें भक्ति प्राप्त होती है।

५७.—भक्ति का पाँचवा विशेषण है—**सुदुर्लभा**—यह भक्ति अति दुर्लभ है। भगवान मोक्ष तो बहुत शीघ्र देते हैं पर भक्ति बहुत देर से देते हैं। उसके अधीन होना पड़ता है। जब तक भक्ति नहीं है तब तक कोई ईश्वर के रहस्य, दर्शन, प्रेम को पाना चाहे तो नहीं पा सकता। पुण्यों के प्रताप से भी ईश्वर वश में नहीं होता पर भक्ति करने वाला स्वयं ईश्वर के वश हो जाता है तब भगवान उसके अधीन होकर परमानन्द का अनुभव करते हैं। **'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं॥'** परन्तु प्रेमी के अधीन होने में ही सच्चा सुख है अत: भक्त-भगवन्त एक दूसरे के अधीन रहते हैं। स्व सुख की कामना जब तक मन में बनी है तब तक भक्ति नहीं है। जो है वह अधूरी है। इष्ट को सुखी बनाने की इच्छा दृढ़ होने से विशुद्ध भक्ति होती है। ईश्वर स्व सुख की कामना नहीं करता है वह शरणागत के सुख की इच्छा से ही सारे संसार के कार्य करता है।

५८.—भक्ति का छठा विशेषण है—**'श्रीकृष्णाकर्षिणी'**— भक्ति श्रीकृष्ण को अपनी ओर आकृष्ट करने वाली है। नीच से नीच मनुष्य में यदि भक्ति आ जाय तो भक्ति के सूत्र में बँधे भगवान उसके घर में भी पहुँच जाते हैं। भक्ति से खिंचने के कारण ही पीछे-पीछे डोलते हैं। सदन का जन्म कसाई के घर में हुआ। मांस का व्यापार करता था। शालग्राम रूप से स्वयं आकृष्ट होकर तौलने का बाँट बन गये। जनकपुर में रहने वाले श्रुतदेव ब्राह्मण और राजा बहुलाश्व ने भगवान को बुलाने के लिए पत्र नहीं लिखा था। भक्ति का निष्काम भाव से आचरण करते थे अत: भगवान बहुत से ऋषियों को साथ लेकर एक साथ दोनों के घर गये। उनका आतिथ्य सत्संग स्वीकार कर अपने दर्शन और उपदेशों से उन्हें कृतकृत्य किया। ऋषियों की स्वागत सामग्री रक्खी रह गई। वे प्रतीक्षा करते रह गये परन्तु भगवान सब भांति दीन-हीन-मलीन शबरी के यहाँ गये। पूछ-पूछ कर गये। जो भी कोई बनवासी भील या संत मिलते उनसे, सबसे प्रभु पूछते कि शबरी का आश्रम कहाँ है? उस भाग्यशालिनी के दर्शनों के लिए मेरे नेत्र प्यासे हैं। राम दर्शन की लालसा, उत्साह, उत्कंठा जैसी शबरी में थी, वैसे ही श्रीराम जी में थी। मिलकर भगवान ने कहा कि वनमार्ग में चलने से जो श्रम हुआ वह आज शबरी के दर्शन से दूर हुआ। जिसका वर्णन नहीं हो सकता, ऐसे परमानन्द का अनुभव हुआ। जयति रघुवंश तिलक:।

५९–एक गृहस्थ कुम्हार भक्त थे। एक संत ने उन्हें नाम दिया वे भजन करने लगे, सीधे सरल चित्त में भक्ति प्रकट हो गई। अपने घर का काम करते हुए भजन करते हुए वे सिद्ध हो गये पर उन्हें पता नहीं कि मुझ में कुछ प्रभाव है। उनके समीप जो भी कोई जिस कामना से आता उसकी कामना पूर्ण हो जाती उसका कष्ट मिट जाता। धीरे-धीरे उसकी प्रसिद्धि हो गई, गाँव के राजा ने सुना तो वह फल-फूल लेकर आया। दर्शन कर भेंट देकर उनके समीप बैठा। राजा ने पूछा कि भक्ति की क्या महिमा है? भक्त कुम्हार ने कहा राजन मैं पढ़ा लिखा नहीं हूँ, अतः शास्त्रों का मुझे ज्ञान नहीं हैं पर अपने प्रत्यक्ष अनुभव की बात बतलाता हूँ। मैं मिट्टी के बर्तन बनाता हूँ, मेरी स्त्री व बच्चे भी इसी काम में लगे रहते हैं। मिट्टी में मिलाने के लिए घोड़े की लीद की जरुरत पड़ती है। घोड़े की लीद से खाद भी नहीं बनती है सुखाकर उसे जलाने के काम में भी नहीं लिया जाता हैं। आपके यहाँ बहुत से घोड़े हैं, ढ़ेरों लीद पड़ी रहती है। मेरे स्त्री बच्चे उसे उठाने जाते हैं तो आपके नौकर उनको गाली देते हैं कभी-कभी बच्चों को मारते हैं इतने पर भी हमारी स्त्री बच्चे लीद लेने जाते हैं, मार गाली सहकर लाते हैं क्योंकि उसके बिना काम नहीं चलता है। अब आप ही देखे कि तुच्छ वस्तु के लिए तिरस्कार सहना पड़ता है मेरे स्त्री बच्चों को और आप स्वयं राजा होकर मेरे घर आए, मुझ नीच तुच्छ को प्रणाम करते हैं, भेंट दे रहे हैं ऐसा क्यों? विचार कर देखें तो यह भक्ति का प्रभाव है उसके प्रभाव से नीच ऊँचा हो जाता है वंदनीय हो जाता है। मेरे स्त्री पुत्र भक्त नहीं है तो उन्हें तुच्छ लीद के लिए नित्य तिरस्कार सहना पड़ता है। भक्त और अभक्त का अन्तर, आदर अनादर इसी में समझ लीजिए कि भक्ति की कितनी महिमा है। राजा बहुत प्रभावित हुआ वस्तुतः शास्त्रों के ज्ञाता भी तर्क और अविश्वास में फँस जाते हैं। उन्हें सरल हृदय और भावुकता प्राप्त नहीं है इसी से उनमें सच्ची भक्ति का प्राकट्य नहीं होता।

६०.–**'स वै पुंसां परोधर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।'** मनुष्यों का श्रेष्ठ परमधर्म वह है जिसके आचरण से अनपायनी अहैतुकी अनन्या भक्ति हो जिससे अपनी आत्मा परमात्मा सबकी प्रसन्नता होती है। सामान्य धर्म का त्याग कर परमधर्म का पालन भगवद् भक्तों ने किया। मेघनाद के मरने पर मंदोदरी ने सुलोचना को सती हो जाने की सलाह दी और वह पति के साथ जल गई परन्तु स्वयं मंदोदरी अपने पति रावण के मरने पर

उसके साथ सती नहीं हुई। प्रात: स्मरणीय सुलोचना नहीं हुई। मंदोदरी प्रात: स्मरणीय हुई क्योंकि उसने सामान्य धर्म को त्यागकर विशेष धर्म का पालन किया। विभीषण राम की शरण में है। मंदोदरी ने शरणागत भक्त की शरणागति की। भक्त की भक्ति की। रावण पूर्व जन्म में दैत्य था अगले जन्म में भी दैत्य बनेगा। इसके साथ जलने पर विमुख दैत्य की पत्नी बनना पड़ेगा। अगर रावण के साथ सती होती तो उसे शिशुपाल की पत्नी बनना पड़ता। सती धर्म का त्यागकर परमधर्म अपनाया। भक्त विभीषण का सम्पर्क किया उनका आश्रय लिया।

६१.–श्रीदशरथ जी के मरने पर जब उनकी अन्त्येष्टि क्रिया हो रही थी उस समय तीनों लोकों के महान से महान ऋषि महर्षि उपस्थित थे। तीनों माताएँ सती कालिक शृंगार करके आई और चिता की ओर बढ़ रही थीं। उपस्थित ऋषि समूह सती हो जाना ही ठीक समझ रहा था इसी बीच श्रीभरत लाल जी ने उन माताओं के श्रीचरणों में प्रणाम किया। श्रीतुलसीदास ने लिखा है कि–

'गहि पद भरत मातु सब राखी। रही राम दरशन अभिलाषी।' मानस अयो० २६९/२

उक्त वाक्य में ध्वनि यह है कि श्रीभरत जी ने माताओं को प्रणाम करके उन्हें समझाया कि पति के साथ सती होना सामान्य धर्म है। शरीर को रखकर श्रीराम का दर्शन करना परम धर्म है। परम धर्म से भक्ति होती है। भक्ति करने से, परमधर्म का आचरण करने से, सामान्य धर्म के त्याग का दोष नहीं लगता है। सामान्य पालन हुआ माना जाता है, सौ के नोट में पचास, बीस, दस, पाँच आदि के नोट समाये रहते हैं। सौ के नोट को प्राप्त करने में यदि पाँच का नोट छूट जाय तो हानि नहीं मानी जायगी। पाँच का नोट सामान्य धर्म है और सौ का नोट भक्ति का आचरण है। सती होने में साधारण लाभ है। राम दर्शन में परम लाभ है। अत: अब वन में चलकर राम दर्शन होगा आगे वन से वापस आने पर अधिक समय तक श्रीराम दर्शन लाभ होगा। यह सोचकर माताएँ वापस रनिवास को चली गईं।

उन दिनों कोई स्त्री विधवा नहीं होती थी। सती हो जाती थी। विधवा स्त्री जीवित नहीं रहती थी, परन्तु राम दर्शनार्थ माताएँ जीवित रहीं। इसका समर्थन ऋषि समूह ने किया। माताओं ने श्रीराम से प्रार्थना की थी कि–

'जो दिन गए तुमहि बिनु देखे। ते विरंचि जनि पारहिं लेखे॥'

हे श्रीराम! जो दिन तुम्हारे दर्शनों के बिना बीते उनकी गिनती जीवन में न हो। दर्शनयुक्त जीवन ही जीवन है। भक्ति बिना जीवन जीवन नहीं है। श्रीराम के जन्म से पूर्व का समय आयु में नहीं गिना गया। जन्म के बाद से जितनी आयु उस युग में होनी चाहिए, उतनी आयु माताओं ने प्राप्त की। दस हजार वर्ष की आयु उन दिनों हुआ करती थी। दर्शनहीन जीवन लेखे में नहीं आया। अतः मातायें अधिक दिन जीवित रहीं। श्रीराम जी के साथ परधाम गई।

६२.—प्रथम स्कन्ध अध्याय पंचम श्लोक १७-१९ में नारदजी ने कृपाकर वेद व्यासजी से कहा है-**'त्यक्त्वा स्वधर्मं०'** जो मनुष्य अपने वर्णाश्रम रूप स्वधर्म अर्थात् सामान्य धर्म का त्यागकर विशेष धर्म भगवान का भजन स्मरण करता है, उसका भजन यदि सिद्ध हो जाय तब तो कहना ही क्या है कदाचित् उसका भजन छूट जाय तो भी उसका अमंगल नहीं होता है। अर्थात् वह विषयी नहीं बनता है संसार बंधन में नहीं पड़ता है। जो लोग वर्णाश्रम धर्म को ही सर्वस्व मानकर उसका पालन करते हैं भगवान का भजन नहीं करते, वैष्णव भक्ति का आचरण नहीं करते उन्हें लौकिक पारलौकिक क्षणिक नाशवान सुखों की, स्वर्ग आदि भोगों की प्राप्ति होगी। उनका आत्यन्तिक कल्याण सम्भव नहीं, उन्हें अक्षय सुख नहीं मिल सकता है। अतः वर्णाश्रम धर्म का पालन करते समय वैष्णवाचरण को प्रधानता देनी चाहिए। बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि वह उस चीज को पाने के लिए प्रयत्नशील हो जो वस्तु ऊँची से ऊँची योनियों में, नीचे से नीची योनियों में जाने-आने पर, विधिपूर्वक विविध कर्मों के करने पर भी स्वयं कर्म के फलस्वरूप नहीं मिलती है।

६३.—इस जगत के विषयों के सुख तो बिना प्रयास के उसी तरह मिलते हैं जैसे बिना प्रयत्न के दुःख मिलता है अतः मन से उसे पाने की इच्छा नहीं करनी चाहिए। मन से सदा भगवान के नाम, रूप, चिंतन, स्मरण की कामना करनी चाहिए। भगवान का सेवक कदाचित् संसारी कर्म करने वाले के समान जगत में पड़ा दिखाई पड़े तो भी वह आवागमन के चक्र में नहीं पड़ेगा उसे संत भगवन्त का अनुग्रह प्राप्त होगा। वह संसार में गिरने से बच जायगा, गिरकर भी निकल जायगा। जो भगवान की लीला के अतिरिक्त संसार का चिंतन स्मरण करते हैं, अन्य धर्मों का आचरण करते हैं उनकी

बुद्धि स्थिर नहीं हो पाती है। वायु के वेग से नाव की चंचलता की तरह अस्थिर बुद्धि शांति का अनुभव नहीं करती है अतः भगवान का आश्रय लेकर वैष्णव धर्म का ही आचरण करना चाहिए। श्रीराधारानी वैष्णव धर्म पथ पर चलने की शक्ति प्रदान करें। यही प्रार्थना करनी चाहिए। श्री राधे राधे।

६४.–भगवान जब नेत्रों के सामने आते हैं तब श्रीकृष्ण अपने भक्त के नेत्र नासिका आदि के सामने अपने सौन्दर्य, सुगंध, सुकुमारता, उदारता, करुणा आदि गुणों को प्रकट कर देते हैं। भक्त उनका जितना जितना आस्वादन करता है उतना ही आस्वादन की उत्कंठा बढ़ती जाती है। उनके हृदय में परमानन्द का सागर लहराने लगता है वह स्वयं कृतार्थ हो जाता है उसके दर्शन–स्पर्श से अन्य जीव भी कृतार्थ हो जाते हैं। भगवान ऐसी कृपा करें कि हम सत्य क्षमा का आश्रय लेकर साधन–भजन परायण हो जावें।

६५.–भगवत् कृपा तो है ही। प्रेमीजन प्रत्येक परिस्थिति में प्रभु कृपा का अनुभव करते हैं। अपने इष्ट देव जो–जो कुछ करते हैं वह अति प्रिय लगता है। कदाचित् किसी को अपने प्रेमी का व्यवहार पसंद नहीं आ रहा है तो यही समझा जायगा कि विशुद्ध प्रेम नहीं है। मन, प्राण, आत्मा को अभी प्रेमी में स्थापित नहीं किया गया है। तभी तो रसिकजी कहते हैं कि–

'जोई जोई प्यारौ करैं सोई मोहिं भावै।
भावै मोहि जोई सोई सोई करैं प्यारे॥'

प्रिया प्रीतम के इस प्रेम का वर्णन कवि जन तो नहीं ही कर पाते हैं वरन् वे स्वयं ही उसका वर्णन नहीं कर सकते हैं। केवल अनुभव करते हैं।

'रामहि चितव भाय जेहि सीया। सो सनेह सुख नहि कथनीया॥
उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कवि कोऊ॥'मानस बाल० २४१/६–७

ऐसे दिव्य प्रेम को प्रकट नहीं किया जाता है उसके छिपे रहने में ही उसकी विशेषता है। प्रगट करने से वह घट जाता है अथवा नष्ट ही हो जाता है। गोपियाँ श्रीकृष्ण के वियोग में व्यथित होती हैं। भगवान ने रास में अन्तर्धान होकर वियोग देकर कृपा की। इससे अहंकार की निवृति हुई और प्रभु कृपा प्राप्त हुई। उस वियोगावस्था में उनके श्रीमुख से जो गीत निकले वे तीनों लोकों को आज भी पवित्र कर रहे हैं।

६६.—लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का यह प्रेम लोक वेद से परे है अत: लोक वेद की मर्यादाओं का इसमें उल्लंघन हो जाता है। गोपी भाव में जो सती है वह असती है और जो असती है वह सती है। शरीर के लौकिक पति की उपेक्षा करके श्रीकृष्ण में जो परम प्रेम हुआ वह लोक दृष्टि में असतीत्व है पर सच्चा सतीत्व यही है क्योंकि यहाँ सच्चे पति से सच्चा प्रेम है। श्रीकृष्ण का तिरस्कार करके अपने लौकिक पति में प्रेम लोक दृष्टि से सतीत्व है पर प्रेम नगर में यह असतीत्व है। मिथ्या-नश्वर पति की रति भी नश्वर होगी। इस रहस्य को करमैती जी ने समझा तभी **'नश्वर पति रति त्यागि कृष्ण पद सों रति जोरी।'**

६७.—दूसरे रोगों को नाश करने वाले आयुर्वेद के विद्वान वैद्य हैं परन्तु श्रीकृष्णानुराग रोग की दवा तो असती संग ही है। ब्रज के किसी ग्वाल की नव विवाहिता स्त्री ब्रज में आई उससे मिलने के लिए ब्रज की गोपियाँ गईं और उन्होंने कहा तुम भी हमारी सखी सहेली बन जाओ। किन्तु उस नई वधू ने उपेक्षा कर दी और कहा कि हमने सुना है तुम सब अपने पतियों को छोड़कर परपुरुष श्रीकृष्ण से प्यार करतीं हो इसलिए व्यभिचारिणीं हो हमारी तुम्हारी मित्रता नहीं हो सकती है। कुछ दिनों के बाद किसी दिन अकस्मात् उस नई वधू को कहीं श्रीकृष्ण का दर्शन हो गया। श्रीकृष्ण की तीखी दृष्टि से उसका हृदय विदीर्ण हो गया। उसके रोम रोम में श्रीकृष्ण से मिलने की भावना जाग उठी। विरह वेदना से व्यथित होकर उसने अन्न-जल का परित्याग कर दिया अब तो वह पागल सरीखी हो गई। घर वालों को इस रहस्य का ज्ञान न था। उन्होंने वैद्यों से चिकित्सा कराई पर रोग बढ़ता ही गया। इस समाचार को सुनकर गोपांगनाएँ आईं और उन्होंने कहा कि हम असती स्त्रियों का संग करो, देखो पतिव्रता जी! इस रोग की दवा दूसरे किसी वैद्य के पास नहीं है। आप स्वयं को पतिव्रता और हमें कुलटा मान रही थीं पर अब क्या हुआ। अब तुम हमारा संग करो तो हम तुम्हें श्रीकृष्ण की कथा सुनायेंगी उससे तुम्हारी विरह वेदना कम होगी और फिर समय पाकर तुम्हें श्रीकृष्ण से मिला भी देंगी। तब तुम अपने जीवन को, तन को धन्य मानोगी। ऐसा ही हुआ उसे भी कृष्ण दर्शन, मिलन का सुख मिला। ऐसी हैं व्यभिचार दुष्टा गोपियाँ। श्रीउद्धव जी के कथन का तात्पर्य यही है।

६८.—प्यारे श्यामसुंदर ने कंस वध किया, उनका सम्मान प्रशंसा के बड़े-बड़े गीतों का गान हो रहा था पर प्रभु को जब ब्रज गोपियों की उनके प्रेम की याद आती तो उन्हें सब कुछ फीका लगता वे व्याकुल हो जाते। उद्धवजी की समझ में नहीं आया अतः संदेश देकर ब्रज में भेजने की कृपा की। उद्धव से प्रभु ने कहा कि आप मुझे जितने प्रिय हैं उतना शिव, ब्रह्मा, बलराम, श्रीलक्ष्मी जी और आत्मा भी नहीं, ऐसे विलक्षण प्रेमी ज्ञानी को भगवान दिखाना चाहते हैं कि ब्रज के प्रेमियों को, उनके भावों को देखो। उद्धवजी ने वात्सल्य प्रेम की मूर्ति नन्द यशोदा को तथा ब्रज के कृष्ण सखाओं को प्रिय संदेश सुनाया और उनके प्रेमोद्गार सुनकर आत्म विभोर हो गए उसके बाद जब गोपियों से भेंट हुई तो आश्वासन दिया। संदेश सुनाया परन्तु भ्रमर के आने पर उनका जो प्रेमोन्माद तथा उसकी दिव्य दशा को देखकर, गोपियों की कृष्णासक्ति देखकर उद्धवजी नतमस्तक हो गये। अब वे उनके गुण गाने लगे। उद्धवजी ब्रज गोपियों के चरणों की वंदना करते हुए कहते हैं कि प्रेमिकाओं का ही शरीर धारण करना सफल है और श्रेष्ठ है क्योंकि ये श्रीकृष्ण के दिव्य प्रेम महाभाव में स्थित हो गईं हैं। इनमें प्रेम की चरम सीमा है। जिस प्रेम को प्राप्त करने की इच्छा बड़े-बड़े मुमुक्षजन करते हैं। हम लोग जिसके लिए लालायित हैं जिसकी प्राप्ति हमें अब तक नहीं हुई है उसे इन गोपियों ने प्राप्त कर लिया है। श्रीकृष्ण के चरितामृत के रस का चसका जिसे लग जाता है उसे कुलीनता की, द्विजाति संस्कारों की, यज्ञों को करने की क्या आवश्यकता? अथवा जिसको भगवान में प्रेम नहीं हुआ उनकी लीलायें नहीं रुची तो बार-बार ब्रह्मा बनने से ही क्या लाभ?

६९.—जीवनमुक्त तथा भक्तजनों को भी गोपी भाव अलभ्य है। इसे प्राप्त करने में जाति, आचार, ज्ञान कारण नहीं है। यह तो भगवत् कृपा, भक्त कृपा के अधीन है। कहाँ वे वनवासिनी, आचार विचार, ज्ञान, उत्तम जाति से रहित गँवार गोपियाँ और कहाँ श्रीकृष्ण के प्रति इनका अनन्य प्रेम। अहो! ये धन्य हैं धन्य हैं। इससे यही सिद्ध हुआ कि भगवान के स्वरूप को न जान कर भी जो उनसे प्रेम करे, उन्हें सर्वस्व अर्पण कर दे तो अपनी कृपा से प्रभु उसका कल्याण कर देते हैं जैसे कोई अनजाने अमृत पी ले तो वह भी अमर हो जायेगा।

७०.—वस्तु शक्ति श्रद्धा की भी अपेक्षा नहीं रखती है। **'क्वेमाः'** का भाव है गोपियां तत्वज्ञान आचार से रहित विशुद्ध प्रेम रस रसिका हैं। गोपकुल में जन्म है, महल

मकान से रहित वन में विचरने वाली हैं, चोरजार शिखामणि जो कृष्ण उनके साथ प्रेम करने के कारण लोगों की दृष्टि में व्यभिचार दोष से दूषित हो चुकी थीं। जब कृष्ण में अलौकिक प्रेम उद्धवजी ने देखा तब फिर उन्हें इस श्लोक में गोपियों के लिए **'व्यभिचार दुष्टाः'** यह विशेषण नहीं देना चाहिए था। ब्रह्मा ने इसकी महिमा को गाया। भक्ति श्वपच को भी पवित्र बना देती है। ध्रुवजी का पार्थिव शरीर हिरण्यमय कहा गया। फिर ऐसी प्रेमिकाओं के लिए निकृष्ट विशेषण क्यों?

७१.–ऐश्वर्य दृष्टि से तो प्रभु पतियों के पति हैं वस्तुतः इस प्रेम नगर में प्रभु विषय के व्यभिचार कोटि-कोटि सदाचार से भी पवित्र हैं। उक्त विशेषण शास्त्र तत्वज्ञों की दृष्टि में प्रेमोत्कर्ष का द्योतक है। कोई सती अपने लौकिक पति से प्रेम करे और श्रीकृष्ण की उपेक्षा करे तो वही असती है। पति से मन को हटाकर श्रीकृष्ण में प्रेम करने वाली सच्ची पतिव्रता हैं क्योंकि सच्चे पति से प्रेम करती है। लौकिक पति में नरकभय से देव बुद्धि की जाती है पर श्रीकृष्ण में इन गोपियों का प्रेम स्वाभाविक है। अतः ये ही सती हैं अन्य नहीं। भगवत् प्रेम रहित भौतिक अस्थि माँस मज्जायुक्त नश्वर पति जो मरे के तुल्य है ऐसे में प्रेम करने वाली की अपेक्षा श्रीकृष्ण में प्रेम करने वाली सती हैं, धन्य हैं। इस श्लोक में आगे **'परमात्मनि रुढ़भावः।'** शंका का समाधान कर देता है। उद्धवजी ने कहा-निरंतर वक्षस्थल पर निवास करने वाली को भी वह प्रेम प्रसाद नहीं मिला जो गोपियों को मिला। इनके चरणों को प्राप्त करने के योग्य अपने को न समझ कर चरण रज चाहते हैं वह भी प्रत्यक्ष नहीं लता गुल्म बनकर उसे प्राप्त करूँ पुनः दैन्यतावश इस योग्य भी अपने को न मानकर अंत में चरण रज की वंदना करते हैं। जिनकी गाई हुई हरि कथा तीनों भुवनों को पवित्र करती है। उद्धवजी ने गोपी महिमा को गाकर भक्तों के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

७२.–भगवद् भक्ति क्लेशों का नाश करती है। अविद्या माया के प्रभाव से काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर होते हैं, इनके कारण जीव तामस अन्धकार में क्लेश पाता है। भक्ति शुभ कल्याणदात्री है सभी प्रकार के लौकिक पारलौकिक मंगल कल्याण भक्त को प्राप्त होते हैं। संसारी आदमी की तरह खाता पीता व्यवहार करता है पर उसके मन की स्थिति भिन्न होती है अतः संसारी की और भक्त की मानसिक स्थिति भिन्न रहती है। शान्ति निरंतर भक्त के हृदय में रहती है। विमुख अशान्त रहता है।

७३.—जो गुरु के शरणागत नहीं है उनके द्वारा हुए धर्माचरणों से पुण्य मिलेगा इससे इस लोक परलोक के सुख मिलेंगे पर श्रीराम प्रेम का मिलना कठिन है। प्रभु की शरणागति के बाद जो कुछ नियम आवश्यक हैं उसका पालन करने पर ही प्रभु की कृपा होती हैं प्रभु भक्ति की प्राप्ति होती है। अपने भक्त को भक्ति देकर प्रभु जी आनंद का अनुभव करते हैं और भक्त भी प्रेम रस का अनुभव करते हैं। जैसी भक्ति का रस प्रभु को लेना रहता है वैसी भक्ति देते हैं। रावण आदि को भक्ति देकर भी भगवान ने आनंद लिया, रावणादि को भी आनन्दित किया।

७४.—प्रभु की कृपा ही कुशल है शरीर से अधिक दुखदायक मन के रोग होते हैं। उनसे बचाने वाली भगवद्भक्ति है वह सत्संग से प्राप्त होती है। संत-भगवन्त से कृपा प्राप्त करने की अभिलाषा करनी चाहिए।

७५.—बहुत सी सम्पति पाकर कृष्ण विमुख अभक्त शांति को प्राप्त नहीं कर पाता है। भगवद्भक्त प्रभुकृपा से प्राप्त धन में संतुष्ट रहता है और शांति का अनुभव करता है। ज्ञान, भक्ति, वैराग्य का लेशमात्र इस लोक में सुख देता है। अतः सत्संग अध्ययन द्वारा उसी को प्राप्त करने की इच्छा करना चाहिए।

७६.—मानव शरीर से ही भक्ति प्राप्त होती है। पशु को विवेक नहीं है वह विवश होकर श्रम करता है। पुण्यों से प्राप्त देव शरीर से भी भक्ति नहीं बनती है। स्वर्ग केवल भोग भूमि है। पृथ्वी पर किए गए पुण्यों का भोग स्वर्ग में, पापों का भोग नरक में होता है अतः यह मानव शरीर ही धन्य है इसी से सत्संग आदि नये पुण्य करके मनुष्य आवागमन से छुटकारा पाता है। भगवद् धाम को पाता है। मानव शरीर से भक्ति ही कर्त्तव्य है।

७७.—पुरुषोत्तम मास पुण्यमास है यत्र तत्र कथा कीर्तन की धूम है। ईश्वर की हम जीवों पर कृपा है। सारी सुख सुविधाएँ हमको मिली हैं अब हम जीव लोग ईश्वर की भक्ति न करें तो कृतघ्न कहे जायेंगे। ईश्वर हम से प्रेम करता है उसकी कृपा हमारे ऊपर है यह हर समय अनुभव करना चाहिए। कथा श्रवण, पूजन, सत्संग में अनुराग (श्रद्धा) की आवश्यकता है। यदि मुझ में (अपने में) प्रेम नहीं है, श्रद्धा नहीं है तो वह सब काम मशीनी होंगे जैसे रेडियो कीर्तन। उससे भी लाभ है पर पूर्ण लाभ श्रद्धा-पूर्वक कथा श्रवण, दान, अर्चन, वन्दन में होता है। बिना श्रद्धा के या कम श्रद्धा से भी भक्ति करते-करते श्रद्धा की प्राप्ति होती है अतः नित्य नियम से अर्चन-वंदन करना चाहिए।

७८.–भक्ति विमुख के सभी आरंभ अधर्म हैं अर्थात् प्रभु प्राप्ति में बाधक हैं जिस धर्म से स्वर्ग आदि भोगने पड़ते हैं वह वास्तविक धर्म नहीं है। धर्म वही है जिससे प्रभु प्रेम हो **'यतो भक्तिरधोक्षजे।'**

७९.–**'कृपास्य दैन्यादि युजि प्रजायते।'**

वेदान्त कामधेनु में निम्बार्क वाक्य है कि इन प्रभु की कृपा, दैन्य आदि उत्तम लक्षणों से युक्त भक्तियोगी के ऊपर होती है। भक्त के पास जो कुछ होता है, वह उसका अहंकार नहीं करता, उन वस्तुओं को अपनी नहीं मानता। जैसे सुतीक्ष्णजी में पूर्ण रूप से ज्ञान, भक्ति और वैराग्य दृढ़ है परन्तु वे कहते हैं–

'भगति विरति न ज्ञान मन माहीं।

× × × × ×

नहि सतसंग जोग जप जागा। नहिं दृढ़ चरन कमल अनुरागा।।

× × × × ×

एक बानि करुणानिधान की। सो प्रिय जाके गति न आन की।।

प्रभु को प्रसन्न करने के लिए मेरे पास ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, सत्संग, जाग, जप अनुराग आदि कुछ नहीं है। पर मैं यह जानता हूँ कि करुणानिधान भगवान की एक आदत है कि जिसे कोई दूसरा सहारा नहीं है जो मात्र अपने प्रभु के आश्रित है वह उन्हें प्यारा है।

८०.–अलवन्दार के एक श्लोक का भाव यह है कि मेरा जो कुछ है, मैं जो कुछ हूँ वह सब आपकी ही सम्पत्ति है। मेरी बुद्धि ने यह निश्चय कर लिया है फिर अब मेरे पास है ही क्या जो आप को समर्पित करूँ। शुद्धा शरणागति यही है। मन में आश्रय अपने इष्ट देवता का ही रखना चाहिए अन्य कोई मेरे कार्य को सिद्ध कर दे, मेरा कल्याण कर दे ऐसी आशा नहीं करनी है। अपना भला भक्त भगवान से ही है, इसमें संदेह नहीं।

८१.–जिन शरीरों से प्रभु भक्ति का अभिनन्दन वन्दन होता है वे दिव्य धाम के पूज्य पार्षद हैं। इस शरीर में पूर्व शरीर के द्वारा वे भक्ति करते थे और अगले शरीरों के द्वारा प्रभु की सेवा करेंगे। इनमें कभी लौकिकता दिखे तो वह नगण्य है। इससे उनकी

दिव्यता में कोई अन्तर नहीं आता है। वह सब क्रीड़ा मात्र है। संसार संबंध उनका नाम मात्र है वे अलग हैं। हर्ष विषाद से पुण्य पाप से अलग हैं। ऐसे ही सज्जनों से ही सम्पर्क, संबंध, मैत्री प्राप्त हो यही प्रार्थना है।

८२.–संत समाज में, सत्संग में, राम की भक्ति ही गंगा की धारा है। ब्रह्म विचार अन्तःसलिला सरस्वती है। विधि-निषेध, कर्तव्य-अकर्तव्य का निर्णय ही यमुनाजी हैं। कृष्ण ही ब्रह्म हैं उनके संबंध में उनके स्वरूप की चर्चा सरस्वती है। इस त्रिवेणी में स्नान ही प्रयाग कुंभ स्नान का फल देगा। अक्षयवट विश्वास है अपने इष्ट में, अपने धर्म में अटल विश्वास प्रभु कृपा से बना रहे तो समझो कि अक्षय वट की छाया में हैं। अक्षयवट पत्र पर बालमुकुन्द कृष्ण दर्शन देते हैं अर्थात् विश्वास में श्रीकृष्ण का दर्शन होता है।

८३.–ईश्वर का निवास श्रद्धा और विश्वास में है। जहाँ जिसका पूर्ण विश्वास है वहीं उसके लिए ईश्वर प्रकट है। बिना विश्वास के भक्ति नहीं बनती है। भक्ति के बिना श्रीराम प्रसन्न नहीं होते है। बिना श्रीराम के जीव भवसागर से निकल नहीं पाता है। यह सभी शास्त्रों का तथा सन्तों का सिद्धान्त है। ईश्वर सभी का मंगल करें। सबको ईश्वर की कृपा का अनुभव होता रहे।

८४.–श्रीभरत भाई के स्मरण से श्रीराम प्रसन्न होते हैं। विश्व के भरण पोषण करने वाले का नाम भरत है। सभी लोग श्रीराम जी का स्मरण करते हैं। श्रीराम जी भरत लाल का स्मरण करते हैं। भरतजी का स्मरण करने से श्रीराम जी की भक्ति प्राप्त होती है।

८५.–मन-वचन-कर्म से किए गए कर्म प्रभु को अर्पण करके प्रभु की भक्ति प्राप्त करना चाहिए।

८६.–राधा सर्वेश्वरी ब्रज की आराध्या हैं। उनमें अनन्त सौंदर्य, माधुर्य, सौशील्य आदि दिव्य गुणों का निवास है। राधा शब्द के उच्चारण से श्रीकृष्ण प्रसन्न होते हैं। राधा पादारविंदों की आराधना से श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति होती है। युगल स्वरूप एक ही है। कृष्ण के नाम रूप में राधा और राधा के नाम रूप में श्रीकृष्ण व्याप्त रहते हैं। केवल लीला रसवर्धन के लिए युगल दिव्य शरीर धारण करते हैं। जय श्री राधे।

८७.–विनती-प्रार्थना की बड़ी महिमा है। रामायण भागवत में स्तुति प्रकरण ही अधिक हैं। स्तुति में भगवान के स्वरूप का दया, क्षमा, करुणा का वर्णन रहता है तथा भक्त अपनी दयनीय अवस्था का निवेदन करता है तब भगवान और भक्त दोनों संतुष्ट हो जाते हैं। एक दूसरे के समीप पहुँच जाते हैं। माता कुंती ने कहा कि जीव के बिना इन्द्रियाँ शक्तिहीन हो जाती हैं वैसे ही आपके बिना यादवों का और पाण्डवों का कोई भी अस्तित्व नहीं रह जाता है। आपके चरण स्पर्श से पृथ्वी हरी भरी है। लता, वृक्ष, वन, पर्वत बढ़ रहें हैं। आपके वियोग में सब श्री हीन हो जावेंगे। मेरी ममता पाण्डवों में और यदुवंशियों में बढ़ गई है इस पारिवारिक स्नेह बंधन को आप काट दीजिए। जैसे गंगा की अखण्ड धारा समुद्र में मिलती रहती है उसी तरह मेरी चित्तवृति किसी दूसरी ओर न जाकर आप में ही निरंतर प्रेम करती रहें। आप चराचर के गुरु हैं। आपकी शक्ति अनन्त है। गाय, विप्र और देवताओं का दु:ख मिटाने के लिए आपने अवतार ग्रहण किया है। आपको बार-बार सदा नमस्कार है। इस प्रकार भक्तों के द्वारा की गई स्तुतियों से तथा अपनी भाषा में अपने हृदय के भावों को अर्पण करते हुए नित्य स्तुति करनी चाहिए।

८८.–हमको प्रभु इच्छा के अधीन रहना चाहिए। यह संसार का नियम है कि जिस वस्तु से सुख प्राप्त होता है उसी से दु:ख भी होता है। संसारी सुख के बदले संसारी दु:ख मिलता है। श्रीकृष्ण के मिलन से गोपियों को दिव्य सुख मिला फिर वियोग में उन्हें दिव्य दु:ख मिला। कृष्ण के विरह का दु:ख स्वर्गादि के सुखों की अपेक्षा अनन्त गुना अधिक सुखप्रद है अत: भक्त जन विरह की कामना करते हैं।

८९.–श्रीहनुमान जी में नवधा भक्ति है। सभी भक्तियों के आचार्य हैं पर दास्य रस जो भक्ति का प्राण है उसके विशेष आचार्य हैं। जहाँ-जहाँ कथा होती है वहाँ-वहाँ उपस्थित होकर अश्रुपूरित नयन, मस्तक में अंजलि बाँधकर श्रवण करते हैं। विश्व में अनन्त स्थानों पर कथा हर समय होती रहती है अत: सर्वत्र सुनते हैं इसलिए श्रवण के आचार्य हैं। कीर्तन में उनके रोम-रोम से नाम की ध्वनि निकलती रहती है। मन, वाणी और शरीर से होने वाले कर्मों को करके उन्हें प्रभु को अर्पण करना चाहिए। यह कर्मकाण्ड की विधि भी है पर श्रीहनुमान जी का मन-वाणी-शरीर अर्पण हैं। अत: कर्म करके अर्पण नहीं करना पड़ता है। सारे कर्म प्रभु के ही निमित्त होते हैं। **'दास्यं कर्मार्पणं तस्य।'** जो कर्म प्रभु को समर्पित न हों वे कर्म हनुमानजी से नहीं बनते हैं।

९०.–भगवान के प्रेमीजनों के सत्संग में जो भगवान की लीला कथाएँ सुनने को मिलती हैं उनसे उन दुर्लभ ज्ञान की प्राप्ति होती है जिससे संसार के दु:ख निवृत्त हो जाते हैं। मन शांत हो जाता है। हृदय शुद्ध होकर आनंद का अनुभव करने लगता है। भक्ति योग प्राप्त हो जाता है। भगवान की ऐसी रसमयी कथा का चस्का लग जाने पर भला कौन ऐसा है जो कथा में प्रेम न करे। भगवान के गुण ऐसे मधुर हैं कि ज्ञानी लोगों को भी अपनी और खींच लेते हैं। ज्ञानी यानी आत्मज्ञानी कृष्ण रूप में मग्न होते हैं। अन्य विषयों का ज्ञानी कृष्ण की ओर आकृष्ट नहीं हो सकता है।

९१.–नाम में नामी का पूरा चरित्र व्याप्त रहता है। गुरुदेव भगवान श्रीरामानन्दाचार्य ने कबीर, रैदास, धना आदि को भक्ति प्रदान की। निम्न कुल में उत्पन्न होकर भी भक्ति के प्रचारक हुए। उत्तम कुलीन लौकिक जन संपत्ति के अहंकार में रहते हैं, उनके लिए अहंकार को त्याग पाना कठिन रहता है। गुरुदेव की कृपा से भक्ति देवी हृदय में आती है तो भगवान भी हृदय में आ जाते हैं अत: अहंकार आदि दोष निकल जाते हैं।

९२.–अयोध्या गोकुल भवन के परमहंस जी का जीवन चरित्र प्रकाशित हुआ है। उसमें उन्होंने लिखा है कि यात्रा करते समय मैं एक रेल स्टेशन पर ठहरा था। इतने में एक माताजी आईं उन्होंने श्रीरामचरितमानस का पाठ किया। कुछ भोग अर्पण करके उन्होंने ध्यान किया तो ग्रन्थ से ही राम लक्ष्मण शिशु प्रकट हो गये। भोग खाकर पुन: ग्रंथ में लीन हो गये। यह दर्शन प्रत्यक्ष हुआ। किसी से कहो तो कोई विश्वास नहीं करेगा परन्तु प्रेम की ऐसी महिमा है कि उसके प्रभाव से भगवान प्रकट हो जाते हैं।

९३.–श्रीकृष्ण के उद्देश्य से अर्थात् श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने के लिए जो काम मन, वाणी एवं शरीर से किए जायँ वे सब भक्ति हैं। मन से प्रभु के नाम-रूप-लीला-धाम का स्मरण, वाणी से नाम-रूप-लीला-धाम का कीर्तन गान, शरीर से सन्त भगवन्त की सेवा, मंदिर की, गौ, ब्राह्मण की सेवा, तुलसी रोपण सिंचन, पुष्पवाटिका लगाना, माला आदि श्रृंगार बनाना, मंदिर बनाना, उसकी मरम्मत कराना, परिक्रमा यात्रा दर्शन आदि करना भक्ति है। नाम जप में, सेवा में, अपराध बनते हैं। दस नामापराधों से, बत्तीस सेवा अपराधों से बचने का प्रयास करना। सभी कुछ भोग वासना, मोक्ष वासना से रहित हो, केवल श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने के लिए हो तब उसे शुद्धा भक्ति, उत्तमा निर्गुण भक्ति कहा जाता है। गुरुदेव की कृपा से गुरु में, संत में, भक्ति होने से भगवद्

भक्ति दृढ़ होती है। भगवान का वाक्य है कि गुरुदेव को मेरा स्वरूप मानें। उनको साधारण मनुष्य मानकर उन में दोष बुद्धि न करें। यदि कोई क्रिया मर्यादा विहीन दिखाई पड़े तो भी अश्रद्धा न करें। कारण यह है कि उसका कोई ऐसा कारण हो सकता है कि उस क्रिया के बाद भी वे निर्दोष हैं।

९४.–ब्रह्मा, विष्णु, महेश के चरित्रों में दोष दिखाई पड़ते है पर वे दोष नहीं हैं। विचार करने पर सब गुण ही प्रतीत होंगे। वामन का बलि के साथ कपट, विष्णु का वृन्दा के साथ छल, श्रीराम का बालि बध, श्रीकृष्ण का चीर हरण लौकिक दृष्टि से दोषमय दिखाई पड़ेगे। परन्तु इन सबों में दोष का लेश नहीं है क्योंकि सब कुछ भक्त कल्याण के लिए है। वृन्दा के सतीत्व से जलंधर अवध्य था। स्वयं जलंधर अनेक सतियों के सतीत्व को नष्ट करता था। देवताओं को, गो, ब्राह्मण को दुःख देता था। अतः प्रभु ने कपट करके अपने भक्तों की रक्षा की। पुनः परम सतीत्व का फल प्रभु प्राप्ति है। वृन्दा को अपने पातिव्रत धर्म का पालन करने से उसे विष्णु की प्राप्ति हुई। भगवान ने उसे स्वधर्म पालन का फल दिया अतः दोष क्लेश नहीं है। वृन्दा को सदा के लिए अपनाया इससे बढ़कर और कौन लाभ हो सकता है। जलंधर के साथ सती होने पर उसे जलंधर का लोक मिलता जो तुच्छ है।

९५.–उपासना की पूर्णता में लौकिक वासना बाधक है और उपासना से ही लौकिक वासनाओं का अन्त होता है। जो श्रीकृष्ण नित्य निरंतर अखण्ड हैं उससे कोई जीव विमुख तो हो सकता है, कुछ काल के लिए परन्तु कोई श्रीकृष्ण से भिन्न नहीं हो सकता है। अतः कृष्ण की उपासना के लिए कहीं अन्यत्र नहीं जाना है। प्रभु को अपने निकट देखना है। अनुभव करना है। अपने को श्रीकृष्ण के निकट उपस्थित करना ही उपासना है।

:- इति शुभम् -

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्री हनुमते नमः

श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः

❃ भगवत्कृपा ❃

१.—इस संसार में अपने ही प्रारब्ध के अनुसार सुख दुःख प्राप्त होते हैं परन्तु भगवान का अनन्य भक्त सुख-दुःख में अपने इष्टदेव की कृपा का अनुभव करता है। हानि-लाभ में दूसरों को कारण मानकर उनसे राग-द्वेष नहीं करता है। जिसने आत्म समर्पण किया है उसे निश्चिंत रहना चाहिए। प्रभु जैसे रक्खे उसी प्रकार रहकर सर्वेश्वर को धन्यवाद देना चाहिए।

२.—श्रीगुरु रामानुजाचार्य जी ने ब्रह्माजी की स्तुति के **'तत्तेऽनुकम्पाम्'** इस श्लोक की व्याख्या करते हुए कहा कि ब्रह्माजी सभी साधकों को सरल साधन बताते हुए कहते हैं कि हे प्रभो! आपके गुण, नाम, रूप, लीला आदि अनंत हैं इनका अन्त पाने का प्रयास न करके आपकी कृपा का हर समय अनुभव करना चाहिए। हर घटना में कृपा छिपी है। बड़ी कृपा करते हैं तो भगवान अपने भक्त के धन को छीन लेते हैं। परिवार को अलग करके उसे निष्किंचन बनाकर प्रेम को परिपक्व करके कृपा करते हैं। राजा बलि का सर्वस्व लेकर बंधन में डालकर कृपा की। गुरुदेव ने बलि को शाप दिया, प्रभु प्रेरणा ही थी। राजा ने कृपा का अनुभव किया। जिस सम्पत्ति से भजन में बाधा होती है उसे प्रभु ले लेते हैं। जो सम्पत्ति प्रभु के द्वारा मिली है उससे सेवा होती है, बाधा नहीं। भगवान ने ध्रुवजी को छत्तीस हजार वर्ष का राज्य दिया। अम्बरीषजी को चक्रवर्ती सम्राट पद दिया। ये सम्पत्ति से सेवा करते थे। उसमें ममता नहीं रखते थे। अनुकूल प्रतिकूल सभी परिस्थितियों में भक्त प्रभु कृपा का अनुभव करता है। विपत्ति वह है जिससे भगवान का स्मरण भजन न हो। अपने प्रारब्धवश दुःख-सुख दोनों में कृपा का अनुभव करके उसे प्रसन्नता से भोगना चाहिए।

३.—हम लोग किसी प्रकार की योग्यता नहीं रखते हैं फिर भी वृन्दावनबिहारी ने वृन्दावन से किंचित् संबंध नाममात्र का जोड़ रक्खा है, इसी से प्रभु कृपा होगी। जय श्रीसीताराम।

४.–दयामय प्रभु जीवों पर कृपा करने के लिए सर्वदा तत्पर रहते हैं। कृपा है उसका हमको अनुभव करना चाहिए। यदि दया न होती तो आज जो सुख, सत्संग सुविधा प्राप्त है वह न मिलती। प्रभु बुद्धि को शुद्ध बनाए रहें यही कृपा है। प्रभु की कृपा में विश्वास न करना ही संकट है। आवश्यकता यह है कि जैसे प्रभु रक्खें उसी में सुख और आनन्द मानना चाहिए। जो सेवक स्वामी को संकोच में डालकर अपना काम बनाना चाहता है वह सच्चा सेवक नहीं है। भगवत् कृपा के अधीन ही हम हैं। प्रभु बुद्धि शुद्ध करें विश्वास दृढ़ बना रहे।

५.–शुभ, अशुभ कर्मों का फल, प्रारब्ध अवश्य ही भोगना पड़ता है पर यदि ज्ञान, भक्ति की पूर्णता हो जाय तो प्रारब्ध, संचित, क्रियमाण सभी प्रकार के कर्म नष्ट हो जाते हैं। दूसरा उपाय यह है कि सुख और दु:ख दोनों को भगवान की कृपा का फल मान लिया जाय तो कृपा के क्षेत्र में आने वाले दु:ख सुख नगण्य हो जाते हैं।

जो कोई बार-बार भक्ति का वरदान माँगता है तो फिर उसके शरीर में, वाणी में जो भक्ति विरोधी तत्व हैं उसे प्रभु निकालते हैं। उस समय कष्ट होता है। कृपा से कष्ट मिला है हम यह भूल जाते हैं किसी को बल का, रूप का अहंकार है। भगवान की भक्ति चाहता है। बिना आपरेशन के फोड़ा दूर नहीं होता है उसी तरह बल, रूप, धन आदि अहंकार को दूर किए बिना भक्ति कैसे दें। तब भगवान अहंकार के कारण को नष्ट कर देते हैं। उस समय कष्ट का अनुभव मोहवश होता है। अगर प्रभु की कृपा का अनुभव हो तो कष्ट दूर हो जाता है। हम प्रभु के पुत्र हैं प्रभु पिता हैं, कोई पिता अपने पुत्र को कष्ट नहीं देता है, इसी तरह भगवान किसी जीव को कष्ट नहीं देना चाहते।

६.–सेवा और सत्संग की प्राप्ति भगवान की महती कृपा का फल है।

७.–इस बात का मन में दृढ़ विश्वास रखना चाहिए कि प्रभु दयालु हैं। हमारे ऊपर उनकी कृपा है और आगे भी रहेगी। संसार एक सा नहीं रहता है। इसमें बदलाव आता है उससे हम लोगों को घबड़ाना नहीं चाहिए। अपने किए हुए पुण्य-पापों के फलस्वरूप सुख-दु:खों को भोगने में प्रसन्न रहना चाहिए और प्रभु कृपा का अनुभव करना चाहिए।

८.—संत दर्शन से ही प्रभु कृपा हुई यह जाना जाता है। संत दर्शन अर्थात् संत में प्रेम। संतों की प्रसन्नता प्रभु प्रसन्नता से भी अधिक महत्व की है। अपने इष्टदेव जिस कर्म धर्म से सुप्रसन्न हों वही पुण्य है। इष्टदेव जिससे अप्रसन्न हों वह नहीं करना है। इष्टदेव प्रत्यक्ष प्रकट न हों तो कैसे जाना जाय कि प्रसन्न है या अप्रसन्न हैं? उनके प्रतिनिधि माता-पिता, स्वामी, संत, सद्गुरु, गो, ब्राह्मण आदि हैं। इनकी प्रसन्नता से प्रभु की प्रसन्नता जानी जाय। नाम, रूप, लीला, धाम के सेवन से रुचि बढ़े। परिकर में प्रवेश करके सेवा की उत्कट अभिलाषा जगे, विकारों का नाश और प्रेम का हृदय में प्रकाश हो तो प्रभु प्रसन्नता मानी जाय। विस्मृति में व्याकुलता, सत्संग में अनुरक्ति और सुस्वप्न दर्शन हो तो प्रभु कृपा मानी जाय। करुणासागर प्रभु अपने शरणागत पर सर्वदा प्रसन्न ही रहते हैं। हम मायावश भूल करें तो सावधान प्रभु हमें मनमाना न करने दें। पकड़कर रखें। कृष्ण हैं तो हमें अपनी ओर आकृष्ट करें और वे मेरी ओर आकृष्ट हों। राम हैं तो मेरे में रमण करें और मुझे अपने में रमाये। दीन हीन होकर रुदन करने वाले पर प्रभु शीघ्र द्रवीभूत हो जाते हैं, ऐसा संतजन कहते हैं। **'गो ब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यम्।'** **'जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुना सागर कीजिअ सोई॥'** (मानस-अयो० २६८/२)

९.—प्रारब्ध के भोग भगवान की भक्ति से, ज्ञान की पूर्णता से नष्ट भी हो जाते हैं। शरीर का अहंकार न रहने के कारण दुःख-सुख का अनुभव भी नहीं के बराबर होता है। संत लोग प्रारब्ध के कष्टों को भोगने में भी भगवान की कृपा का अनुभव करते हैं। उस समय कष्ट सहन की सामर्थ्य भी प्रभु ही देते हैं। जगन्नाथी माधवदास एवं रघुनाथ गोस्वामी को दस्त होने लगे तो स्वयं भगवान जगन्नाथ जी ने सेवा की। संत इस भगवान की लीला से कष्ट का अनुभव करने लगे तो भगवान ने सारा कष्ट दूर कर दिया।

१०.—भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए प्रभु आप ऐसी कृपा करें कि हमारा मन और हमारी वाणी में एकता हो। हम जो कुछ वाणी से कहें उसे मन से भी करें इस प्रकार हृदय की प्रार्थना पर प्रभु कृपा अवश्य प्राप्त होगी।

११.—रामजी के कार्य को भूले सुग्रीव को समझाते हुए श्रीलक्ष्मण जी ने कहा कि-कृतघ्न को देख कर ब्रह्माजी ने अति उत्तम यह वाक्य कहा था-

'गोघ्ने चैव सुरापे च चौर भग्नव्रते तथा।
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः॥'

(बालमीकि किष्किंधा अध्याय ३४ श्लोक १२)

गो हत्यारे, शराबी, चोर, व्रतभंग करने वाले पुरुष के लिए आचार्यों ने प्रायश्चित बतलाया है। उसको पापों से छुटकारा मिल जाता है परन्तु कृतघ्न (किए हुए उपकार को भूल जाने वाले) के उद्धार का कोई उपाय नहीं है। कृतघ्न को नरकों में जाना ही पड़ेगा। इसलिए किसी के उपकार को भुलाना नहीं चाहिए। उपकार को मानना चाहिए। किसी मनुष्य के लोक हितकारी उपकार को भी नहीं भुलाना चाहिए फिर परम पिता परमात्मा के जो उपकार है वे अनंत हैं।

'कोटिहुँ मुख कहि जात नहि प्रभु के कोटि कोटि उपकार।'

एक-एक उपकार का वर्णन कोटि-कोटि मुखों से नही हो सकता है। ऐसे उपकारी संतों के, भगवान के उपकारों को भुलाने से अनेकों नरकों को भोगना पड़ेगा। हम चाहें तो भी प्रभु के उपकारों का बदला नहीं चुका सकते हैं अतः उनके श्रीचरणों में आत्मसमर्पण ही उचित है। श्रीराम जी बहुत बड़े कृतज्ञ हैं। हनुमानजी से उन्होंने कहा कि हनुमानजी! हम आपके एक-एक उपकार के बदले प्राणों को दे दें तो भी आपके उपकारों का बदला नहीं चुका सकते हैं अतः आपके ऋणी रहेंगे। मानव शरीर, इन्द्रियों में शक्ति, भारत में, तीर्थ में जन्म, सत्संग आदि प्रभु के उपकार हैं उनका स्मरण करके प्रेम निमग्न होकर प्रभु की स्तुति और उन्हें प्रणाम करना चाहिए।

१२.-प्रभु की सृष्टि में, कृपा दृष्टि में, भक्ति ज्ञानमय वायुमंडल रहता है। वे इस लोक में और यहाँ के बाद अपने देव की सेवा में परलोक में सुखी एवं संतुष्ट रहते हैं। दूसरी एक मायामयी सृष्टि ब्रह्माजी के द्वारा विरचित है। **'बिधि प्रपंच गुन अवगुन साना।'** (मानस-बाल० ५/४) इस सृष्टि के जीव चौरासी लाख योनियों में आते जाते रहते हैं। अपने कर्मों के अनुसार पृथ्वी, स्वर्ग, नरक आदि लोकों के भोंगों को भोगते रहते हैं। अकारण करुणा करने वाले प्रभु जब यह देखते हैं कि जीव कर्मजाल में इस प्रकार फँस गया है कि वह अपना उद्धार नहीं कर सकता है तब प्रभु उस जीव को मनुष्य शरीर देकर, भारत में जन्म देकर एक ऐसा अवसर देते हैं कि वह मानव शरीर पाकर, भजन-सत्संग करके आत्मकल्याण कर ले। अपने भगवान को प्राप्त कर ले। स्वयं प्रभु की यह उत्कट अभिलाषा रहती है कि जीव मेरी शरण में आकर मेरा बनकर मुझे प्राप्त

कर ले, निर्भय हो जाय परन्तु विषयी जीव कुसंग में पड़कर संसारी विषयों में इस प्रकार आसक्त रहता है कि उसे हठ करके भोगता है। इसलिए सर्वदा सत्संग करना और मन ही मन भगवान का चिंतन करके प्रार्थना करना। कुसंग से बचने का उपाय करते रहना। सद्गुरु के बताए मार्ग भक्तमाल का आश्रय लेना। भक्तमाल के सिद्धान्त को सत्य समझकर उसे मन में स्थिर कर लेना। भक्तों की, प्राणियों की श्रद्धा से सेवा, उपकार से प्रभु प्रसन्न होते हैं। भक्तापराध से बचना।

'जो अपराध भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई।।' (मानस-अयो० २१७/५)

१३.—संसारी सुख की आशा जिसके हृदय में बलवती है उसमें ममता होना स्वाभाविक है। ऐसा मनुष्य सेवा नहीं कर सकता है। प्रारब्ध में जो सुख हैं वे बिना प्रयत्न के अपने आप मिलेंगे ऐसा साधारण लोग समझते हैं। भक्तजन तो भगवान की कृपा को ही स्वीकार करते हैं। हर प्रकार की स्थिति में प्रभु का अनुभव करते हैं।

१४.—आप लोग नाम जप में रत हैं, धाम में निवास कर रहे हैं, यह कृपा प्रभु की है। नाम और धाम की कृपा है।

१५.—इतिहास-पुराण में आप सुनते हैं कि कितनी-कितनी कठोर और जन्म जन्मान्तरों की तपस्या साधन के बाद भी भगवत्कृपा-भक्ति दुर्लभ रही है। हम आपने कितना साधन कितनी तपस्या की है, यह विचार कर निराश न हों। यदि साधन में आप रत हैं मन कभी लगता है कभी नहीं लगता है तो घबड़ाने की, निराश होने की आवश्यकता नहीं है जो कुछ हो रहा है इसी में भगवत् कृपा का अनुभव कीजिए। **'बानि परी ललचावन की'** अपने प्रेमियों को दर्शन न देकर ललचवाने की आदत है। लौल्य को भगवान बढ़ाते हैं। लौल्य=चाह और उत्कंठा पर्यायवाची हैं। इनकी वृद्धि होने पर, पूर्णता होने पर प्रभु कृपा करते हैं, भक्त के अधीन हो जाते हैं। शास्त्र-पुराणों के वाक्यों को सत्य मानें, उनमें श्रद्धा करें, फिर निराशा का कोई स्थान नहीं रहेगा। साध न में स्वयं लगे रहें दूसरों को भी लगाए रहें। सत्संग का, भक्ति के आचरणों का त्याग न करें बल्कि उन्हें दृढ़ता से अपनाएँ।

१६.—प्रभु के गुणगण तत्व अनन्त है। उनकी गिनती करने में समय न लगाकर प्रभु की कृपा का अच्छी तरह से अनुभव करना चाहिए। प्रारब्ध से मिले दुःख सुखों को भोगने में भी श्रीकृष्ण का अनुभव संतजन करते हैं। हृदय से, वाणी से, शरीर से नमस्कार करता हुआ जो जीता है वह भक्ति-मुक्ति को इच्छानुसार प्राप्त करता है। प्रभु

कृपा सभी जीवों पर समान रूप से सदा बनी रहती है पर हम अपने अज्ञानवश उसका अनुभव नहीं करते हैं। हमारे मन में कथा, कीर्तन, सत्संग, सेवा के प्रति अनुराग हो और उसे बढ़ाने की चाह हो तो समझ लो कि भगवान की कृपा है। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि के वश होकर किसी की वस्तु छीनने की इच्छा हो, किसी के अपराध पर रुष्ट होकर उसे मारने-पीटने या अपमानित करने की इच्छा हो तो समझों कि हमारे ऊपर प्रभु कृपा नहीं है। क्रोधवश हम हिंसा करने के लिए उद्यत हों तब समझें कि प्रभु के वरद्हस्त को अपने सिर पर से हम हटा रहे हैं। किसी संसारी नाशवान वस्तु के नष्ट हो जाने पर यदि हम प्रभु को दोष दें, मोहवश उस वस्तु को फिर से प्राप्त करने के लिए ईश्वर से (क्षण प्रतिक्षण) प्राप्त कराने की प्रार्थना हठपूर्वक करते हैं तो समझो कि हम प्रभु की कृपा अपने ऊपर होने से रोकते हैं। कृपा वर्षा से बचने के लिए मोह का छाता लगाते हैं। तात्पर्य यह है कि कृपा का अनुभव नहीं कर पाते हैं। अज्ञानी जीव संसारी सम्पत्ति में कृपा का अनुभव करता है। भगवान जिस प्रकार ज्ञान, भक्ति की रक्षा हो उसे उचित समझते हैं। भक्ति की रक्षा करना प्रभु का काम है सबका मंगल हो।

१७.—बिना भगवान की कृपा के संत नहीं मिलते हैं। संतों के बिना भगवान की कथा नहीं मिलती है। भगवान की कथा के बिना मोह भंग नही होता। मोह दूर हुए बिना श्रीराधाकृष्ण में भक्ति दृढ़ नहीं होती। यह शास्त्र सम्मत है। अतः कथा श्रवण श्रीराधारानी की, श्यामसुंदर की कृपा का फल है।

१८.—भगवान की दया सभी पर सर्वदा बरसती रहती है परन्तु जीव उसका अनुभव नहीं कर पाता है। भक्तजन प्रभु कृपा का अनुभव करके सर्वदा प्रसन्न रहते हैं।

१९.—भगवान के स्वरूप पिता-माता, ब्राह्मण, संत, गुरुदेव, तुलसी, पीपल, मंदिर सब देवों को प्रणाम करना चाहिए। शरीर से साष्टांग अथवा वाणी से प्रणाम यह भी संभव न हो तो मन ही मन से नमस्कार कर लेना चाहिए। इस प्रकार भक्ति से युक्त जिसका जीवन है वह मुक्तिदाता श्रीकृष्ण के चरणों को, प्रेम को पाने का अधिकारी है। उसे भक्ति अवश्य प्राप्त होती है। राजा बलि ने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया अन्त में भगवान ने और देव ऋषियों ने बड़ाई की।

२०.—एक बार सभी इन्द्रियों ने अनुभव किया कि ब्रह्मा द्वारा निर्मित शरीरों में हम लोगों को बाहर रखा गया है और अस्थि, माँस, मेदा, रक्त, मूत्र, मलादि को भीतर रखा

गया। हमारे बाहर रहने से हमारे विषय सदा सामने रहते हैं, मेरे और विषयों के बीच में आवरण न रखकर साथ ही उनके भोगों पर प्रतिबंध लगाया गया। रूप मत देखो। उस पर लुब्ध मत होवो आदि, अन्यथा नरक होगा। अच्छा हो कि मेरे सामने विषय न रहें। उनमें मेरी लोलुपता न हो अथवा भोगने की छूट दी जाय। इस संकल्प से सभी इन्द्रियों ने चिरकाल तक कठोर तप किया तब भगवान ने कहा-अब हम ऐसे-ऐसे रूपों से अवतरित होंगे जिसमें तुम्हें अनुरक्त होने की छूट होगी। उसमें पाप-नरकादि का भय नहीं रहेगा। सभी का सर्वोत्तम विषय मैं ही रहूँगा। ऐसा कहकर प्रभु ने राम कृष्ण आदि के रूप धारण किए। सभी इन्द्रियों की सार्थकता सिद्ध हुई और सबको पूर्ण तृप्ति हुई। लौकिक विषयों में क्षणिक सुख या तृप्ति है। भगवद् विषयों में अखण्ड, अनन्त सुख है। इन्द्रियों की, उनके अधिष्ठाता देवों की सृष्टि प्रभु ने इसीलिए की है न कि मायिक, लौकिक विषयों को भोगने के लिए। इन्द्रियों का प्रभु में समर्पण, प्रभु और जीव, इन्द्रियों, देव सभी के लिए सुख संतोषप्रद है। भगवान के अवतार का यह भी एक वैदिक कारण है। तभी राम कृष्ण ने मधुर लीलाओं का विस्तार किया। पतित पावनता और दीनबन्धुता इन दो गुणों का वैकुण्ठ में उपयोग न होने पर ये गुण प्रार्थी बने अतः अपने सुयश और गुणों को सत्य सिद्ध करने के लिए प्रभु ने अवतार लिया। यह प्रसिद्ध रहा है, बार-बार सुनने को मिलता है कि प्रभु के अवतार में मुख्य कारण है 'श्रीजी की करुणा'।

२१.-श्रीजी ने संसार के जीवों को भव कूप में गिरते देखकर भगवान से पूछा-प्रभो! आप करुणाकर है? भगवान ने कहा-हाँ।

पुनः **प्रश्न**-यदि कोई अन्धा कुए में गिर रहा है तो कोई करुणाशील क्या करेगा?

उत्तर-आवाज देगा, पुकार कर कहेगा उधर न जाओ, दाएं या बाएं हटने को कहेगा।

प्रश्न-तो आप अज्ञानी अंधों को भव कूप से बचाने के लिए क्या कर रहे हैं?

उत्तर-वेद द्वारा पुकार कर मार्ग निर्देश कर उन्हें बचाना चाहता हूँ।

प्रश्न-यदि कोई अंधा होने के साथ कानों से बहरा भी हो, आपकी आवाज न सुन रहा हो तो फिर क्या उसे कूप में गिर जाने देना करुणाशीलता होगी?

उत्तर-नहीं। उस समय तो दौड़कर अंधे का हाथ पकड़कर मार्ग पर लाना ही कर्तव्य होगा। अतः श्रीजी ने कहा- तो फिर भवकूप में गिरते प्राणियों के लिए आप

चलकर उनकी रक्षा करें। प्रभु ने कहा–ठीक है तो तुम्हें भी चलना पड़ेगा और मेरे से वियोग का कष्ट सहकर जीवों की रक्षा करनी होगी। श्रीजी को क्षणिक वियोग असह्य है पर करुणावश अलग-अलग प्राकट्य, पुनः लंका में बंदिनी बनकर रहना एवं वन में ऋषियों के यहाँ तप करना इस कष्ट को सहना स्वीकार करके श्रीजी ने अपने मातृत्व को प्रकट किया। अवतार में हेतु है श्रीजी एवं युगल की करुणा।

२२.–भगवत् कृपा ही कुशल है। मैं सकुशल हूँ, ऐसा लिखने की एक रीति बन गई है। नहीं तो जब तक जीव संसारी प्रपंचों को त्यागकर भगवद् सेवा परायण नहीं हो जाता है तब तक कुशल कहाँ? शान्ति कहाँ? रामचरितमानस में लिखा है–

'तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन विश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ सोक धाम तजि काम।।' (मानस-सुं० ४६)

काम में सभी शोक निवास करते हैं।

२३.–भगवत् कृपा सबका मंगल करे। सभी उसका अनुभव करें।।

२४.–भक्तों के लिए भगवान सर्वदा सर्वत्र कृपा करते हुए दिखाई पड़ते हैं। भक्त और अभक्त दोनों पर प्रभु कृपा करते हैं। भक्तों को प्रेम और दुष्टों को मारकर प्रभु मोक्ष देते हैं। पतिव्रता का मन पति की ओर, कृपण का मन धन की ओर, विषयी का मन विषयों की ओर जैसा लगता है उसी प्रकार भक्त का मन भगवान की ओर लगता है। ऐसी मन की लगन से भगवान की कृपा का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। जटायु पर कृपा करते समय भगवान ने कहा–लक्ष्मण! शरणागत रक्षक, धर्मपरायण, शूरवीर सर्वत्र मिलते हैं यहाँ तक कि पशु पक्षियों की अधम योनियों में भी। देखो! जटायु महान भक्त धर्मात्मा है, तात्पर्य यह है कि भक्त तत्व सर्वत्र है।

मुए सकल मरिहैं सकल घरी पलक के बीच।
तुलसी काहु नहिं लही गीधराज सी मीच।।

जो पैदा हुए हैं वे अवश्य ही मरेंगे चाहे अब चाहे घंटा भर बाद अथवा सौ वर्ष बाद यानी सभी मरे हैं, आगे भी मरेंगे, परन्तु जटायु की सी मृत्यु किसी को भी नहीं मिली। प्रभु की गोद में प्रभु को देखते हुए मृत्यु हुई। धन्य भक्त जटायु धन्य भक्त जटायु।

२५.–हमारा स्वभाव है कि अनुकूलता में भगवत् कृपा को मानते हैं और प्रतिकूलता में नहीं। किन्तु संत अनुकूलता एवं प्रतिकूलता में सर्वत्र भगवत् कृपा का

ही अनुभव करते हैं। ईश्वर दयामय है, करुणामय है, कभी किसी जीव का अहित नहीं करता है। कदाचित् जीव को शुद्ध करने के लिए प्रभु दण्ड देते हैं।

२६.–समय विपरीत है तमोगुण की वृद्धि है। परन्तु भक्त मनोराज्य में कलियुग का प्रभाव नहीं व्यापता है। राम राम करते रहने वाले कलि के प्रभाव से बचेंगे। भगवत् कृपा से सभी का मंगल हो। सीतारामजी कृपा करें तो सब ठीक है।

२७.–भगवत् स्मरण से सभी विघ्न दूर हो जाते हैं। जिसके मन में विश्व कल्याण की भावना है वही भगवत् प्रिय है। संसारी काम बन जावें, सभी काम बन जावें तभी हम भगवत् कृपा मानें यह ठीक नहीं है। बहुत काम ऐसे हैं जिनका बिगड़ना भी हमारे कल्याण के लिए है। काम के बनने से या बिगड़ने से कल्याण होगा इस बात को हम नहीं जान सकते हैं। यह प्रभु को ही पता है। भगवत् कृपा और प्रारब्ध पर विशेष विश्वास रखना चाहिए। हमारी दृष्टि में थोड़ा समय है ईश्वर की दृष्टि में अनन्त समय है।

द्रौपदी सती साध्वी थी, भक्ता थी, फिर भी उसके पुत्र मारे गए पर जब उनके पूर्व जन्मों की बात मालूम हुई तब सबका शोक कम हुआ। गांधारी के पुत्र दुष्ट थे उनके मरने पर उन्हें पहले तो कुछ शोक हुआ बाद में उन्हीं का अपराध था ऐसा जान–मान कर सब दु:ख दूर हो गया। श्रीकृष्ण के रहते हुए बहिन के पुत्र अभिमन्यु की मृत्यु हुई, उसका कारण जानकर पाण्डवों का दु:ख कम हो गया। प्रभु कृपा का आश्रय रहना ही चाहिए।

२८.–भगवान श्रीराघवेन्द्र की दया सबका मंगल करे। भगवान की दया का निरंतर अनुभव करने वाले सर्वदा प्रसन्न रहते हैं। श्रीजयदेव कवि ने हाथ पाँव कटने पर भगवान की कृपा का अनुभव किया। कुए में पड़े थे तो इतने प्रसन्न थे कि उनके मुख की कान्ति से कुए में प्रकाश छाया था। शरीर के कष्ट का अनुभव नहीं हो रहा था क्योंकि भगवत् कृपा का अनुभव कर रहे थे। अभी तक हाथ पैरों का भरोसा था अब कुए में केवल भगवान का भरोसा है।

२९.–बिल्वमंगलजी के नेत्र नहीं रहे। उस समय उन्होंने कहा कि अब हमें हृदय की आँखों से काम पड़ा है और अब केवल भगवान का आश्रय रहा है। नेत्रों का अपराध मालूम पड़ा अत: नेत्रों को दण्ड दिया।

३०.—कृपामय प्रभु की कृपा तो निरंतर बरस ही रही है पर हम लोग उसका सम्यक् प्रकार से अनुभव नहीं कर पाते हैं। सारे अनर्थों का मूल अहंकार, ज्ञान-भक्ति की प्राप्ति में बाधक है। प्रभु कृपा करके उसको नष्ट करते हैं उस समय हम अज्ञानी जीव काल, कर्म, ईश्वर को भी दोष देने लग जाते हैं। जो कृपाश्रयीजन हैं वे ही अनुभव करते हैं कि हमको जो कष्ट मिला है वह या तो अहंकार को कम करने के लिए है अथवा मिटाने के लिए है। भगवान जो भी करते हैं उससे भक्तों का कल्याण ही होता है।

३१.—भगवान का विधान मंगलमय है। हम न तो भजन करते हैं और न कोई साधन। केवल उदर पोषण करके जी रहे हैं। भगवान जो कुछ करेंगे ठीक ही करेंगे। ऐसा विश्वास इसलिए हो रहा है कि होश सम्भालने के बाद मैंने बिगाड़ा ही है, कुछ बना नहीं सका हूँ पर प्रभु बना रहे हैं। अब तक बनाते आए है तो आगे भी बनावेंगे।

३२.—करुणामय प्रभु की सदा ही जीवों पर कृपा रहती है, प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी प्रभु कृपा का फल हैं।

३३.—परम मंगलमय भगवान श्रीसीताराम जी की कृपा से हमारा आपका सभी का मंगल है और होगा। यही मन में दृढ़ विश्वास रहना चाहिए। बड़े-बड़े बलवानों, बुद्धिमानों के भी सभी मनोरथ पूरे नहीं हुए। जो भक्ति संबंधी हैं उन मनोरथों की पूर्ति यदि दूसरे जन्म में हो तो भी श्रीजी की कृपा समझो। मन में चिन्तन शक्ति प्रभु की दी हुई है उसके अनुसार सबके बुरे भले मनोरथ इस जन्म में तथा अगले जन्मों में भी पूर्ण होते हैं। पर दुष्ट मनोरथ का पूर्ण होना नरकों का निवास है। भक्त के मनोरथ की पूर्ति में भगवद्धाम, सत्संग की प्राप्ति होती है।

३४.—**मोरि सुधारिहि सो सब भाँती। जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती॥** (मानस-बाल० २७/३)

जिनकी कृपा प्राप्त करके स्वयं कृपा देवी तृप्त नहीं होती हैं वे सीताराम जी ही मेरी बिगड़ी हुई बात को सब प्रकार से सुधारेंगे। अब तक जिस प्रकार कृपा है आगे भी प्रभु श्रीराम जी ही कृपा करेंगे यह निश्चित है।

३५.—प्रभु एक न एक घटना द्वारा भक्तों के अनन्य प्रेम को दृढ़ करते हैं, अनन्य भक्त प्रतिकूल दुर्घटना में भी प्रभु की कृपा का ही अनुभव करते हैं।

३६.—शरीर के स्वस्थ रहने की अपेक्षा मन के स्वस्थ रहने की महिमा अधिक है। मेरा मन प्रभु की कृपा का किंचित् अनुभव करता है उसी से प्रसन्न रहता है। शरीर का धर्म है पैदा होना, बढ़ना, क्षीण होना एवं नष्ट हो जाना। इन्हें हम लोग रोक नहीं

सकते हैं अत: जैसी स्थिति हो प्रभु का स्मरण करते रहें यही अपना कर्तव्य है। इसमें भी प्रभु कृपा की आवश्यकता है।

३७.–श्रीकुन्ती जी का कथन है कि उच्चकुल में जन्म, धन संपत्ति, महल के अहंकार में जो बूड़ा है, मतवाला है, उसकी जिह्वा पर भगवान का नाम प्रेम से नहीं आएगा और प्रभु तो निष्किंचन गोचर हैं। धनी मानी होकर भी अहंकारहीन जो भक्त हैं उनको प्रभु की कृपा का ठीक-ठीक अनुभव होता है। वे ही धन्य हैं।

३८.–सब कुछ प्रभु की कृपा के अधीन है। प्रभु का वात्सल्य सभी जीवों पर निरंतर है। उसका अनुभव होने से प्रसन्नता रहेगी। जीव जिस सुख में हैं यह प्रारब्ध का नहीं है। प्रभु कृपा का है।

३९.–**'चरण कमल बंदौं हरिराई।'** पाप और चित्त को हरने वाले हरि अनेक हैं। उन सबका राई=राजा अर्थात् चित्त वित्त का सबसे बड़ा अपहरणकर्ता। सोलह हजार एक सौ आठ का ही नहीं, विश्व के चित्त को चुराने वाले के चरण कमलों की वन्दना करता हूँ।

'जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अंधे को सब कुछ दरसाई।'

प्रथम मंगलाचरण के पद में कृपा का पूर्ण अनुभव करके कहते हैं कि उससे पंगु गिरि का लंघन कर सकता है। संसारी मायिक विघ्न जो प्रभु तक पहुँचने नहीं देते हैं वे पहाड़ हैं। मायाबद्ध जीव जो साधन संपत्ति से हीन हैं वह पंगु है। ज्ञान-वैराग्य नेत्रों से हीन को सब कुछ यानी कृष्ण दिखाई पड़ जाता है। कर्णवान वह है जिसे भगवत् कथा नाम श्रवण में प्रेम है उससे भिन्न लोग बधिर है। जो कथा कीर्तन नहीं कर सकता है बहुभाषी होकर भी मूक है। प्रभु कृपा से दरिद्र, असंतोषी, धनहीन भी धन पा सकता है।

'बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै रंक चलै सिर छत्र धराई।
सूरदास स्वामी करुणामय बारम्बार नमो तिहि पाई॥'

सूरदासजी कहते हैं कि मेरे स्वामी अत्यंत करुणामय हैं। मैं और कोई योग, यज्ञ, जप नहीं कर सकता उनके चरणों में बारम्बार प्रणाम करता हूँ। सूरदास को सद्गुरु कृष्ण कृपा से दिव्य दृष्टि मिली। सदा कृष्ण कृपा एवं उनकी लीला का साक्षात्कार होने लगा। अन्धे को सब कुछ दिखाई पड़ा। मूक ऐसा बोला कि सवा लाख पदों का गान किया। **'हरिजन की अतिशय ठकुराई।'** भक्त ही राजा है सूर भक्तराज हुए। अत: सूर ने अपने जीवन में पूर्ण रूप से कृपा का अनुभव किया।

४०.–**'स्वस्तये सर्व जीवानां प्रणमामि हरिं प्रियम्।'** भगवत् कृपा ही कुशल है। ईश्वर की कृपा सामान्य रूप से सभी जीवों पर होती है पर अपने भक्त पर विशेष रूप से रहती है। जो जितनी कृपा का अनुभव करता है उस पर उतनी कृपा है। यदि प्रभु की पूर्ण कृपा का अनुभव हो, अनुकूल प्रतिकूल सभी परिस्थितियों में, तो पूर्ण कृपा है। कदाचित् संसारी जीव सभी संसारी सुखों को भोगता हुआ ईश्वर की कृपा का बिल्कुल अनुभव न करता हो तो उस पर सामान्य कृपा है विशेष नहीं। सामान्य कृपा सृष्टि मात्र पर है अन्यथा जल, वायु, आकाशादि की सुविधा भी दुर्लभ है। मीन भगवान के वाक्यों पर आपका ध्यान गया हो तो ऐसी दीनतापूर्वक शरणागति करके प्रभु ने उपदेश दिया कि जीव को इसी दैन्य भाव से शरणागत होना चाहिए। कलेवर की वृद्धि करके प्रभु अपना ऐश्वर्य प्रकट कर रहे थे। जीव के सामने प्रत्यक्ष हो रहे थे। यहाँ प्रभु की पूर्ण कृपा का दर्शन है। संकट पड़ने पर स्वाभाविक रूप से अपने प्रीतम का नाम मुख में आता है। अजामिल का प्रिय उसका पुत्र था अतः उसका नाम आया। द्वारकाधीश ने सींवा का नाम लेकर पुकारा। बिना संकट के भी संकट का अनुभव करके प्रभु ने रक्षा के लिए पुकार कर भक्तों को बड़प्पन दिया। भक्त के प्रति अतिशय प्रेम को प्रकट किया। अपने प्रेमी को बड़ा बताने से अहंकार पूर्ण रूप से छोड़ा गया।

४१.–भगवत् कृपा का अनुभव करना चाहिए। यह सबसे सरल साधन है। भजन-पूजन आदि जितने साधन हैं उनमें कठिनाई है। सामग्री संचय, विधि का भी कुछ न कुछ पालन अनिवार्य हो जाता है पर कृपा का मन में अनुभव करना इससे अति सरल है।

तुलसीदास से पूछा गया कि अब तक के भजन साधन से आप को क्या मिला? तो उन्होंने कहा कि-

'जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसी दासहूँ।
पायउ परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ॥'

प्रभु की लेशमात्र कृपा से मुझ मतिमंद को परम विश्राम प्राप्त हुआ।

४२.–**'मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत्कृपालेशात् वा।'**

भगवत् और भक्त की कृपा में कोई अंतर नहीं, एक की कृपा के बिना दूसरे की कृपा नहीं प्राप्त होती है।

४३.–हम में भक्ति की निष्ठायें नहीं हैं। ज्ञान की पुष्टि भी नहीं है। सौभाग्यवश इतना ही है कि आप संतजन मुझ दास पर अनुग्रह करते हैं। श्रीजी ने सब प्रकार से अयोग्य मुझ दास को श्रीवृन्दावन का किंचित् सम्पर्क दिया है। ज्ञान और भक्ति की

पूर्णता के बिना जीव का कल्याण संभव नहीं है। ऐसा संतजन कहते हैं। मेरे में तो ज्ञान, वैराग्य या भक्ति का कण भी नहीं है। यह साधन साध्य नही है। संत-भगवन्त कृपा करें तभी जीव को सत्संग की महिमा समझ में आती है। हम तो दूसरों को उपदेश देते हैं पर आचरण नहीं करते। भगवत् कृपा की आशा है कभी न कभी पतित समझ कर उद्धार करेगें। श्रीहरि:शरणं मम।

४४.–संसार की असारता को, दु:खरूपता को समझने के लिए मन से संसार के त्याग की आवश्यकता है। शारीरिक व्यवहार बर्ताव के त्याग की आवश्यकता नहीं है। संसार के भोगों में आसक्त संसार के तत्व को नहीं समझ सकता है। ईश्वर के तत्व, महत्व, प्रभुत्व को जानने के लिए ईश्वर में मन लगाकर अपनी सत्ता को मिटाकर ही ईश्वर से अभिन्न होना पड़ेगा। यह ईश्वर कृपा से संभव है और ईश्वर कृपा शरणागति के बिना नहीं होती है। शरणागति गुरुकृपा से होती है। अत: सद्गुरुदेव भगवान ही सर्वभाव से आराध्य हैं। हरि:शरणं मम।

४५.–भगवद्भक्तों का कभी अशुभ नहीं होता है। यदि कुछ अशुभ दीखता है तो भी वह शुभ ही होता है उसके पीछे कोई न कोई भगवत् कृपा छिपी रहती है।

४६.–**'नट मर्कट इव सबहि नचावत।'** श्रीराम जी नचाने वाले हैं। अनेक योनियों में बार-बार हम बंदर की तरह नाचने वाले हैं। भ्रमण करते रहते हैं। प्रभु की पूर्ण शरणागति के बिना जीव की बड़ी दुर्दशा है। पर ईश्वर दयामय है जीव का साथ नहीं छोड़ता है। उसे अपनी ओर आकृष्ट करता है। श्रीधाम में निवास और भक्तों का सत्संग दर्शन यह रामजी की कृपा का फल है।

४७.–कोई अपने प्रयत्नों से भक्ति, ज्ञान या वैराग्य को नही पाता। ईश्वर यदि किसी पर रीझ जाय तो सब कुछ की शीघ्र प्राप्ति हो जाती है।

'रीझत राम जानि जन जी की।'

× × × × ×

'देखि न सकत दीन कर जोरे।'

४८.–हृदय के दु:ख को हृदयबिहारी रामजी से भली भांति जानने वाला कोई नहीं है। अत: अपने हार्दिक दु:ख को दूर करने की प्रार्थना प्रभु से ही करनी चाहिए।

इति शुभम्

❋

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्री हनुमते नमः श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः

❋ प्रभु का स्वभाव ❋

१.—प्रभु सभी जीवों के परमपिता परमात्मा हैं। कोटि-कोटि पिता-माता से अधिक वात्सल्य जीवों पर प्रभु का सदा बना ही है। ईश्वर जीवों का साथ नहीं छोड़ता है। इस बात पर विश्वास भक्तों को होता है और इसी से भक्त निर्भय रहता है। निर्भय निर्वैर होना भक्त का प्रथम लक्षण है। अपने समीप रहकर प्रभु भक्त की रक्षा स्वयं करते हैं क्योंकि वह निरन्तर प्रभु का सा हो जाता है। क्योंकि वह निरंतर प्रभु का चिंतन करता है जिस का चिन्तन होगा उसी का सा स्वभाव बन जायगा। यह सत्य है।

२.—ईश्वर दयामय है सबके ऊपर कृपा करता है। हमको प्रभु कृपा का अनुभव करना चाहिए, कृपा न होती तो सत्संग नहीं मिलता। प्रभु सबका कल्याण करें। प्रभु की कृपा का अनुभव सब को होता रहे। प्रेम बढ़ता रहे। श्रीसीतारामजी की जय हो।

३.—परम दयालु भगवान भक्तों पर तो दया करते ही हैं, जो अभक्त जीव हैं, उन पर भी प्रभु का प्यार रहता है क्योंकि वे भी प्रभु के हैं। अतः जीवमात्र के ऊपर दया क्षमा हमको भी करनी चाहिए। कोई बहुत भजन करता हो पर यदि जीवों पर दया, सत्य, सदाचार न हो तो प्रभु प्रसन्न न होंगे। मुझ दास में विद्या, बुद्धि कुछ भी नहीं है, पर प्रभु सब प्रकार के सुख दे रहे हैं। मेरे दुर्गुणों की ओर नहीं देखते हैं। धन्य है प्रभु के इस दिव्य स्वभाव को। भूले भटके भी जो प्रभु का नाम लेते हैं उन्हें भी अपना मानकर प्रभु उन पर दया करते हैं।

४.—इस संसार को ईश्वर से प्रकट मानें। ईश्वर का रूप मानें। तब मन में शान्ति रहेगी। जो कुछ हो रहा है अथवा जो कुछ होगा उससे जीवों का कल्याण ही होगा। दयामय प्रभु सबका भरण पोषण करते हैं आगे भी करेंगे। अपने पूर्वकृत कर्मों के फलस्वरूप कुछ कष्ट आ जाय तो उसे भी सहर्ष सहन करना चाहिए, ईश्वर को दोष

MALUK P-1 - 70

नहीं देना चाहिए। हमारे पापों का पूरा-पूरा फल मिले तो हमको एक क्षण के लिए भी शांति न मिले। प्रभु दया करके कम से कम कष्ट देते हैं।

५.—कोई प्राणी बिना कर्म किए नहीं रह सकता है। अत: अपने मन, वाणी, शरीर से जो कर्म बनते हैं उनको रजोगुण, तमोगुण से बचाकर सात्विक बनाना चाहिए। जिन कर्मों से स्वयं को या दूसरे को भी शुभ लाभ नहीं होता है ऐसे कर्म तमोगुणी हैं। जिन कर्मों से शरीर को लौकिक सुख मिलें, स्वर्गादि की प्राप्ति हो वे राजसी कर्म हैं। जिन कर्मों से पर उपकार हो, ईश्वर प्रसन्न हो वे सब सात्विक हैं। निर्गुण कर्म वे हैं जो मात्र भगवत् को प्रसन्न करने के लिए किए जायँ। अपने सुख की लालसा का लेश भी न हो तो ऐसे कर्म निर्गुण हैं। स्वयं प्रभु निर्गुण हैं। कभी-कभी किसी काल में भगवान श्रीराम, कृष्ण, नृसिंह आदि युद्धरत हो जाते हैं तो भी वे निर्गुण ही रहते हैं। क्रोध आदि के वश में नहीं होते हैं स्वयं क्रोध को अपने वश में रखते हैं। जितने क्रोध की आवश्यकता होती है उतने से दुष्टों का संहार करके उनका कल्याण करते हैं। जीव में क्रोध, काम आदि आते हैं तो वह उनके अधीन हो जाता है और विवेकशून्य होकर अनुचित कार्य कर डालता है। ईश्वर जिनका संहार करता है उनका मोक्ष हो जाता है अत: दुष्टों के वध में ईश्वर की कृपा रहती है। ईश्वर सर्वदा कृपामय है। जीव क्रोध में आकर किसी की हत्या करता है तो हत्या के अहंकार से युक्त होने के कारण हत्या के दण्ड का भागी होता है। जिसकी हत्या करता है उसकी भी दुर्गति होती है।

६.—दया, क्षमा, सत्य, अहिंसा, अस्तेय आदि सभी सद्‌गुण प्रभु में सहज भाव से नित्य निवास करते हैं। जीव में ये गुण कभी रहते हैं और कभी नहीं भी रहते हैं। भक्त में प्रभु गुणों का निवास होता है तो भक्त भी सहज सद्‌गुणवान हो जाता है। इसी तरह ऐश्वर्य माधुर्यादि भी प्रभु में नित्य रहते हैं। बालकृष्ण लाल ने ब्रज में बड़े दुष्ट दैत्यों का संहार किया। ऐश्वर्य चरित्र किए पर अपने ऐश्वर्य को छिपाकर रक्खा। ऐसा परदा योगमाया का कि ये भगवान हैं कोई पहचान नहीं सका। पीछे भगवान का जब वियोग हुआ तो एक-एक चरित्र का स्मरण करके ब्रजवासी लोग उनके ऐश्वर्य का ईश्वरता का अनुमान करके उन्हें ईश्वर मानने लगे।

७.—द्वारका की लीला में ऐश्वर्य प्रधान रहा। प्रभु ने चतुर्भुज रूप को स्वीकार किया पर सर्वदा उनमें माधुर्य रहा। भक्त लोग दर्शन करके निमग्न हो जाते थे। स्वयं कोई जीव प्रभु

श्रीकृष्ण को, उनके रहस्य तत्व को सम्पूर्ण को नहीं जान सकता है, जितना रहस्य तत्व स्वयं भगवान किसी को जनाना चाहते हैं बस उतने का ज्ञान भक्त को हो जाता है। अनन्त रूप को कोई जानने सुनने या समझने में समर्थ नहीं हो सकता है। जयति गोकुलाधीशः।

८.—संतों की गुरुजनों की सेवा से भगवान संतुष्ट होते हैं। यह बात सुदामा चरित्र में श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने श्रीमुख से कही है।

९.—भगवान के स्वभाव का जिसे ज्ञान हो जाता है उसे संसार अच्छा नहीं लगता। संसार के भोगों को भोगते हुए भी वे उनसे अलग रहते हैं, उनमें आसक्त नहीं होते हैं। **'जहाँ काम तहँ राम नहिं, जहाँ राम नहिं काम।'** जैसे सूर्य और रात एक साथ नहीं रह सकते उसी प्रकार संसारी भोगासक्ति और राम भक्ति एक साथ हृदय में नहीं रह सकती। भक्त के शरीर के भोग भगवत् प्रसाद युक्त होते हैं, उनके भोगने में भक्ति का साथ नहीं छूटता है। उनके भोग भी भजन हैं।

१०.—श्रीसुदामा जी को अनन्त धन ऐश्वर्य की प्राप्ति हो गई परन्तु उनके मन में भोगों की चाह नहीं उदय हुई। संपति के बीच में रहकर भी वे विरक्त ही रहे। भगवान के स्वभाव की याद आती थी, कहाँ तो मैं तुच्छ निबल निर्धन ब्राह्मण और कहाँ लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण। उन्होंने मुझे छाती से लगाया, मेरे चरण धोये, ऐसे परमात्मा में मेरा प्रेम मेरी मैत्री जन्मजन्मांतर में बनी रहे।

११.—ईश्वर का प्यार सभी प्राणियों पर रहता है। वह अपनी निंदा करने वाले पर भी कृपा करता है। ईश्वर हर समय हर प्राणी के हृदय को देखता रहता है। हृदय के भाव पर प्रभु रीझ जाते हैं अतः हृदय को निर्मल, निर्दोष, निर्मत्सर रहना चाहिए। हृदय में दूषित भाव आ जाय तो भगवन्नाम उच्चारण करके क्षमा माँगनी चाहिए। पृथ्वी देवी को प्रातः उठते ही नमस्कार करना चाहिए। पृथ्वी लक्ष्मी है। हमारे गुरु स्थान में है, उसमें क्षमा गुण विशेष है। रामजी में भी पृथ्वी से अधिक क्षमा है।

१२.—श्रीमद्भागवत में भगवान ने उद्धव जी को और महाभारत में अर्जुन को गीता का उपदेश दिया है। दोनों भगवान के अन्तरंग मित्र हैं। मित्रता करके जीव उसे निभा नहीं सकता है, ईश्वर मित्रता निभाता है। वह मित्रता का त्याग नहीं करता है। जिसे शरण में ले लिया फिर उसका त्याग कभी नहीं करता है। मित्र में कोई दोष भी आ जाय तो उस पर ध्यान न देकर ईश्वर दोषों को दूर कर देता है। जैसे सुग्रीव मित्रता

के बाद स्त्री-राज्य पाकर कुछ देर के लिए रामजी को भूल गया पर रामजी ने कृपा करके श्रीलक्ष्मण के द्वारा भयभीत करके फिर अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। भूल जाना यह जीव का स्वभाव है। कोई जीव ऐसा नहीं है जिससे भूल न हो पर ईश्वर से कभी भूल नहीं होती है। संसारी लोग भूल का आरोप लगाते हैं पर उनके आरोप मिथ्या हैं उन्हें भगवान की लीला, माया, कृपा, क्षमा, दया आदि का अच्छी तरह से ज्ञान नहीं है। अज्ञानी का कथन असत्य होता है।

१३.—भगवान श्रीराम का कथन है कि कोई भी मुझसे मित्रता के लिए हाथ फैलाए तो मैं इन्कार नहीं कर सकता हूँ, फिर चाहे उसमें कोई दोष ही क्यों न हो। मैं जब जीवों को अपनाता हूँ, जीव जब पूर्णरूप से आत्मसमर्पण करता है तब वह निर्दोष होता है। शरणागत को भगवान के सन्मुख रहना चाहिए। हर समय श्रीप्रभु के मुख कमल को भक्त देखा करता है और भक्त को प्रभु देखते रहते हैं। इस प्रकार के भक्त को सन्मुख कहते हैं। सन्मुख भक्त के सभी पाप-ताप नष्ट हो जाते हैं। विमुखजन भगवान की ओर पीठ करते हैं। तब प्रभु भी उनकी ओर पीठ कर देते हैं। पीठ में अधर्म का निवास है अत: विमुख अधर्मी हो जाता है। सन्मुख ६३ की तरह और विमुख ३६ की तरह रहते हैं। संसार से ३६ और प्रभु से ६३ रहना चाहिए।

१४.—भक्तों के साथ भगवान छाया की तरह घूमते हैं। गाय बछड़े के पीछे जैसे चलती है उसी प्रकार प्रभु भक्तानुगमन करते हैं। निरपेक्ष मुनि शांत निर्वैर भक्त रामदास पर रीझे। प्रेम में प्रेमी संकट को सहता है, त्याग करता है, मार खाता है। प्रभु ने राज्य ऐश्वर्य द्वारका को छोड़ा, शरीर पर चोट सही, भक्त के शरीर पर वह चोट पड़ती तो वह मर ही जाता। रामदास की झोपड़ी में रहे। नाभाजी ने लिखा है कि **'बलि बन्धन अपु वपु धरैं।'** बलि को बाँधने वाले भगवान् विराट थे। वही भगवान हल्के तुच्छ हो गए, एक रत्ती की वारी से भी कम वजन हो गया। ईश्वरता को भी दूर कर दिया था अत: चोट सही। बदले में उन ब्राह्मणों, पण्डों को दण्ड नहीं दिया। जीविका को मूर्ति बता दी। जैसे भगवान बलि से छल करके वामन से विराट बने। यहाँ विराट प्रतिमा से हल्के हो गए। प्रेम के निभाने में बड़प्पन बाधक है। निष्किंचन के साथ प्रेम निभाने के लिए प्रभु भी वैसे ही बन गए।

१५.–हम लोग भगवान की इच्छा शक्ति के अधीन रहकर सारे कार्यों को कर रहें हैं। जहाँ-जहाँ का अन्नजल भाग्य में है, वहाँ-वहाँ जाना होगा। प्रसन्नता की बात है कि सत्संग मिलता है। देहाती गरीब सात्विक लोग प्रेम से कथा सुनते हैं। इसी में हमको सब कुछ की प्राप्ति हो जाती है। **'उर प्रेरक रघुवंश विभूषण'** अर्थात् हृदय में श्रीरामजी प्रेरक हैं। परन्तु श्रीराम जी केवल भक्त हृदय में शुभ प्रेरणा करते हैं। दुष्ट जन चोरी-हत्या करते हैं। वे यह कहें कि हमने ईश्वर की प्रेरणा से पाप किया है, हम दण्ड के भागी नहीं हैं। ऐसा कहने से राजा उन्हें दण्ड से मुक्त नहीं करेगा। पापियों के हृदय में पाप करने की प्रेरणा पाप ही कराता है। पाप करने की आदत बन जाती है।

१६.–पुण्यवानों के हृदय में पुण्य प्रेरणा करता है तो वे पुण्य करके उत्तम लोकों को प्राप्त करते हैं। भक्तों के हृदय में भक्ति रहती है वहाँ भगवान का निवास रहता है। इसलिए भक्त हृदय में भगवान प्रेरक रूप से रहते हैं। प्रेरणा पाकर भक्त भक्ति करता है। कभी प्रभु प्रेरणावश भक्त से झूठी बात निकल जाती है तो भगवान उसे सत्य कर देते हैं, भक्त को झूठ बोलने का पाप नहीं लगता है। भुवनसिंह चौहान दार (लकड़ी) कहना चाहते थे प्रभु प्रेरणा से दार की जगह पर सार निकला। लकड़ी की तलवार लोहे की हो गई। देवा पण्डा से राजा ने पूछा–क्या भगवान के बाल सफेद हो गये? प्रभु प्रेरणा से हाँ कह दिया। भगवान ने भक्त वाणी को सत्य कर दिया। बाल सफेद कर लिया।

१७.–पापियों के मन में पाप, पुण्यवानों के मन में पुण्य और भक्तों के हृदय में भगवान प्रेरणा करते हैं। प्रभु प्रेरणा से मंगल ही मंगल होता है। अपने मन को जब हम भगवान से मिलाकर रक्खेंगे तब भगवान प्रेरणा करेंगे। भगवत् प्रेरित भक्त के सभी कार्य दिव्य होंगे। रैदासजी प्रभु की प्रेरणा से भगवान की सेवा पूजा करते थे तो प्रभु के मन में रैदास की कीर्ति बढ़ाने की इच्छा हुई। काशी के विद्वान ब्राह्मणों ने विरोध किया। यह भी प्रभु की प्रेरणा थी। ब्राह्मणों ने राजा से शिकायत की। रैदास को राज दरबार में बुलाया गया। रैदासजी ने कहा प्रभु सेवा स्वीकार करते हैं। अपनी सेवा की प्रेरणा प्रभु ने दी है। सभा में सिंहासन पर प्रभु पधराये गये। राजा ने कहा कि जो कोई अपनी प्रार्थना से बुला लेगा वह पूजा का अधिकारी होगा। पंडितों ने मंत्र पढ़कर बुलाया पर प्रभु नहीं आए। रैदास

की प्रार्थना सुनकर उनके पास आ गए। उनकी वाणी में दीनता थी। उन्होंने कहा कि प्रभो! आप हमसे अलग न होइये। या तो शीघ्र मेरे पास आ जाइये या मुझे अपने पास बुला लीजिए। मैं इस शरीर को त्याग करके आपके पास आकर आपकी सेवा करुँ। सेवा में ही मुझे रखिये। सेवा योग्य शरीर दीजिए। प्रभु रैदास की गोद में आ गए। रैदास की सभा में जै जैकार हुई। राजा-प्रजा ने रैदास को प्रणाम किया। प्रभु की प्रेरणा से रैदास सब कार्य करते थे अतः प्रभु ने रैदास का पक्ष लिया।

१८.-श्रीरामानंद जयंती के उपलक्ष में भक्तों ने उड़िया बाबा से प्रश्न किया कि-ब्रह्म सगुण है या निर्गुण?

उत्तर-ज्ञान वैराग्य रूपी नेत्र वालों के लिए ब्रह्म सगुण है और ज्ञान वैराग्यहीन अंधो के लिए ब्रह्म निर्गुण है। मंदिर में विराजमान अर्चा विग्रह श्रीराधावल्लभ, श्रीराधारमण, श्रीबाँकेबिहारी साक्षात श्रीविग्रह हैं सगुण ब्रह्म हैं। नेत्र वाले रूप माधुरी का अनुभव करते हैं। भगवान शालग्राम साक्षात परब्रह्म हैं, श्रद्धा विहीन उन्हें नहीं देख सकते हैं। सरयू भगवान के नेत्र कमल से प्रकट हुई है। **'सरयू सगुणः पुमान्।'** भक्त प्रेम विश्वास से प्रभु का हृदय द्रवीभूत हो गया, द्रवीभूत हृदय नेत्र मार्ग से प्रकट हुआ। ब्रह्म द्रवीभूत नेत्र जल सगुण ब्रह्म ही है। श्रद्धालु भक्त ही देख सकते हैं। अश्रद्धालु अंधा देख नहीं सकता है, अनुभव नहीं कर सकता है। श्रद्धावान विश्वासी के लिए ईश्वर सर्वत्र सगुण रूप से दयावश प्रकट है। अपना अनुभव कराकर भक्तों को आनन्दित करते हैं। भक्तों को प्रसन्न देखकर स्वयं भगवान प्रसन्न होते हैं।

१९.-भक्तजन भगवान को भगवान मानकर के ही भक्ति करते हैं। इसी तरह सन्त को सन्त मानकर उसकी भक्ति की जाती है। नहीं तो भगवान और भक्तजन अपने को सर्वथा छिपाते रहते हैं, एक क्षण ऐश्वर्य-ईश्वरता दीख पड़ेगी, दूसरे क्षण भगवान उसे छिपा लेते हैं। अर्जुन, युधिष्ठिर आदि के सामने अपने को छिपाते थे। उनके साथ हँसने बोलने, खाने पीने के समय में वे लोग अनुभव करते थे कि मेरे मित्र हैं, मेरे भाई हैं। श्रीनारद जी ने यज्ञ के समय युधिष्ठिर को प्रह्लाद चरित्र सुनाया और कहा कि ये देवकीनंदन ही नृसिंह है। श्रीकृष्ण ने कहा कि आप क्यों मेरे पेट पर लात मार रहें है। भाई-मित्र मानते हैं तो साथ साथ खिलाते-पिलाते हैं। ईश्वर मानेंगे तो अलमारी

में रखकर दो चार बताशों का भोग लगाकर शयन करा देंगे। इसलिए मित्र या भ्राता मानने से मैं विशेष प्रसन्न रहता हूँ।

२०.–यज्ञ के पूर्ण हो जाने के बाद श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा–भ्रातृवर! आपने बहुत बड़ा यज्ञ किया है, जो वर्णन करने के योग्य नहीं है। इस महान पुण्य का महान लाभ मिलेगा। युधिष्ठिर ने कहा–प्रभो! आपकी कृपा से ही यज्ञ पूर्ण हुआ है। जरासंध का वध आप न करवाते तो यह यज्ञ पूर्ण नहीं हो सकता था। हम लोग दिग्विजय करके धन का इतना बड़ा संग्रह नहीं कर सकते थे। आपने अन्न, धन, वस्त्र का इतना बड़ा संग्रह कराया तब यज्ञ हुआ। भगवान ने कहा–हमने तो केवल दोना पत्तल उठाये। सन्त चरण प्रक्षालन किया इसलिए हमको भी थोड़ा सा पुण्य मिल जायगा। युधिष्ठिर जी ने कहा– श्वपच बाल्मीकि को आपने प्रकट किया, उसकी महिमा का ज्ञान हुआ। पाञ्चजन्य शंख अपने आप बज उठा। भक्त भगवान एक दूसरे की महिमा बढ़ाते हैं। इसी से पारस्परिक प्रेम बढ़ता है।

२१.–**व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो, विद्या गजेन्द्रस्य का**
कुब्जायाः किमु नाम रूपमधिकं, किं तत्सुदाम्नो धनम्।
वंशः को विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम्
भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्ति प्रियो माधवः॥

वैष्णवाचार्यों ने भक्ति सिद्धाँत का प्रचार विशेष किया। दार्शनिक सिद्धान्तों पर ध्यान कम दिया। क्योंकि वे केवल विद्वानों के समझने के योग्य हैं। उन्हें भी भक्ति का आश्रय लेना पड़ता है क्योंकि भक्ति से ही प्रभु प्रसन्न होते हैं। आज भी किसी को हम प्रसन्न करना चाहें तो उसे प्रेम से ही हम प्रसन्न कर सकते हैं इसमें सेवा प्रधान है। तत्वों का निरुपण करके हम पिता, माता, स्वामी को प्रसन्न नहीं कर सकते हैं। आचरणों से प्रसन्न होते तो ब्याध का कौन सा पवित्र आचरण था। बाण से प्रहार किया। दीर्घायु से प्रभु प्रसन्न होते हों ऐसा नहीं। ध्रुवजी तो पाँच वर्ष के ही थे। हाथी के पास कौन सी विद्या थी जिसकी पुकार पर गरुड़ को छोड़कर आए। किसी की सुन्दरता पर प्रभु नहीं रीझते वे तो हृदय के प्रेम को देखते हैं। कुब्जा कौन सी सुन्दरी थी तीन जगह से टेढ़ी थी। सुदामा के पास धन नहीं था निष्किंचन भक्त थे। विदुर की जाति पवित्र

नहीं थी। शूद्र माता से जन्म था। स्वयं प्रभु महान वीर हैं विश्व विजयी हैं तो कोई अपने शरीर के बल से उन्हें प्रसन्न नहीं कर सकता है। उग्रसेन वृद्ध थे उनमें शारीरिक बल नहीं था। उनके हृदय के प्रेम से प्रभु उनको राजा बना कर स्वयं छड़ीदार सेवक बने। इन प्रमाणों से सिद्ध हो गया कि भगवान केवल भक्ति से ही संतुष्ट होते हैं। उन्हें भक्ति ही प्रिय है। भक्ति-प्रेम से श्रवण, कीर्तन, स्मरण करना चाहिए। वैष्णवों में प्रेम, नाम रूप गुण स्मरण, प्रणियों पर दया ये तीन साधन श्रीकृष्ण को प्रिय हैं। इनसे ही प्रभु प्रसन्न होते हैं। तीनों भगवान में हैं। वैष्णवभक्त में प्रेम, भक्त नाम-गुण कीर्तन, श्रवण, प्राणी पर दया ये भगवान में भी हैं।

२२.—चन्द्र, सूर्य, पृथ्वी आदि अस्थिर है, चलायमान है। परन्तु श्रीधाम वृन्दावन का निकुंज विहार अचल है नित्य है। **'चन्द्र टरै सूरज टरै.........'** प्रसिद्ध है। हम लोग उसकी चर्चा दूर-दूर से करते हैं। लोक में प्रभु लौकिक लीलायें प्रकट करके शिक्षा देते हैं और अपने भक्तों को आनन्दित करते हैं। वृन्दावन में तो प्रभु सर्वेश्वर होकर भी अपने प्रेमियों के, गोपियों के सेवक बन जाते हैं। आत्म समर्पण करने वालों के लिए प्रभु स्वयं आत्मसमर्पण कर देते हैं। भक्त जितना प्रेम करता है, उतना ही प्रेम यदि प्रभु करें तो फिर क्या बड़प्पन रहा, जीव के एक प्रेम के कण पर रीझकर प्रभु प्रेम का समुद्र उड़ेल देते हैं उसमें सराबोर कर देते हैं। ऐसे प्रभु को त्यागकर जो विषयों में मन लगाता है, वह अभागी है, वही अंध है।

२३.—श्रीप्रभु की प्रसन्नता का फल है कि बुद्धि शुद्ध रहे। विषयों की आशा न रहे। संसारी संपत्ति की प्राप्ति यह रामजी की कृपा का उत्तम फल नहीं है। भक्तजन संसार से विरक्त रहते हैं। प्रभु की इच्छा होती है तो वे लौकिक सम्पत्ति देकर लोक में भक्त का सम्मान बढ़ाते हैं।

'कियौ गोपालको सब होय।
जो अपनौ पुरुषार्थ मानै झूठो है सब सोय।।

× × × × ×

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई।।'

मानस बाल० १२/१

जिस प्रकार भक्त का कल्याण हो वैसा ही श्रीराम जी करते हैं। जो-जो कुछ प्यारे श्रीराम जी करते हैं, भक्त उसी में संतुष्ट रहता है। तब ऐसे भक्त को जो अच्छा लगे वही श्रीराम जी करते और कराते हैं। श्रीहनुमान जी से विनती और समाज, राज्य में प्रयत्न यथा संभव कर्त्तव्य है। आप उन्हें करते रहिए। उद्योगी पुरुष को ही प्रारब्ध फल पूरा-पूरा मिलता है। आलसी का प्रारब्ध नष्ट हो जाता है। अतः प्रभु से प्रार्थना और राज समाज में उद्योग करना। प्रभु स्मरण करते रहना। प्रभु स्मरण करके कार्य आरंभ करने वाले सफल होते हैं।

२४.—जीवों के प्राप्य भगवान श्रीराम कृष्ण हैं। प्रभु असंख्य कल्याण गुणों से युक्त हैं। भगवान में ये गुण कहीं से आए नहीं हैं स्वाभाविक ही सदा से सब उत्तम गुण उनमें हैं। जीवों में भक्ति होने से उसमें गुण आते हैं, जिसमें भक्ति नहीं है उस विमुख में दिव्य कल्याण गुण नहीं रहते है। षडैश्वर्य सम्पन्न प्रभु अपने शरणागतों पर कृपा करें। भक्तों के मन को हठात् प्रभु अपनी रूपमाधुरी के आस्वादन में लीन कर लें।

२५.—भक्त को भगवान के प्रभाव और स्वभाव को जानना चाहिए। प्रभाव, प्रताप, महिमा एक दूसरे के पर्याय हैं इसे जाने बिना विश्वास नही होता है। काकभुशुण्डिजी ने एक चौपाई में दोनों को कहा है—

'शिव अज पूज्य चरण रघुराई। मो पर कृपा परम मृदुलाई॥' मानस उत्तर० १२३/३

इससे बढ़कर और प्रभाव की बड़ाई क्या होगी कि सृष्टिकर्ता श्रीब्रह्मा जी एवं देवाधिदेव महादेवजी भी उनके श्रीचरणकमल का निरंतर ध्यान-पूजन करते हैं एवं उसी के प्रभाव से सृष्टि का सृजन-संहार भी करते हैं। ब्रह्मा, शिव सबसे बड़े उनके द्वारा पूज्य हैं चरण जिनके, वे प्रभु महान प्रभावशाली हैं। उनका स्वभाव ऐसा है कि इतने बड़े होकर भी मुझ सरीखे कुटिल काक पर परम कृपा है। इसलिए—

'अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न देखउँ। केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ॥' मानस उत्तर० १२३/४

२६.—भगवान के स्वभाव को सुनकर भी जो आनन्दित न हो, उनका आश्रय न ले, सो संसार में धूल फाँकता फिरे यही ठीक है। शिशुपन से ही उनके मुख पर किसी ने क्रोध नहीं देखा। एक बार भगवान राम ने खेल में छड़ी चलाई तो एक अति मूल्यवान झाड़ फूट गया। लोगों ने भयभीत होकर राजा दशरथ को सुनाया तो उन्होंने उलटे प्रसन्न होकर बाजे बजवाये, दान दक्षिणा दिया कि राम की यह चंचलता देखने

को तो मिली। खेल में मित्रों की अनीति को देखकर भी कहते न थे। अपनी जीत में अपनी हार मानकर उन्हें प्रसन्न करते थे।

२७.—चरण स्पर्श से अहिल्या का संताप दूर हुआ, उसे सद्गति मिली परन्तु इससे हर्ष न था। चरण छुवाया इसका खेद था। शिव का धनुष तोड़ सभी राजाओं का मान भंग किया पर अहंकार न हुआ। परशुराम ने क्रोध किया तो उनके अपराध को क्षमा कर स्वयं अपने अपराध को मानकर क्षमा माँगी, लक्ष्मण से माफी मँगवाई। ऐसी सहिष्णुता अन्यत्र कहाँ मिलेगी।

राजा दशरथ ने राज्य देने को कहा और कैकेयी के वश में होकर वन दिया ऐसी कैकेयी के प्रति अपना मातृभाव पूर्ववत् रखा। युद्ध के बाद दशरथ ने आकर दर्शन दिया तो उनसे वरदान माँगा कि आप माता कैकेयी को क्षमा कर दें। हनुमानजी की सेवा के वश होकर इतने उपकृत हुए कि बुलाकर उनसे बोले कि तुम्हारे उपकारों के बदले मेरे पास देने को कुछ भी नहीं है मैं तुम्हारा कर्जदार हूँ तुम महाजन हो प्रोनोट लिखवा लो। सुग्रीव आदि में कपट दिखलाई पड़ा फिर भी आपने भरी सभा में उनकी प्रशंसा की, उन्हें महान आदर दिया–

'निज करुणा करतूति भक्त पर चपत चलत चरचाउ।
सकृत प्रनाम प्रनत जस बरनत सुनत कहत फिरि गाउ॥'

अर्थात् भक्तों पर जो आपने दया की उनके साथ उपकार किया, उनकी चर्चा चलते ही आप लज्जित हो जाते, उस बात को दबा देते। अपनी प्रशंसा अच्छी नहीं लगती। पर एकबार प्रणाम करने वाले शरणागत भक्त का सुयश आप स्वयं गाते और सुनते हैं। ऐसे प्रभु के कोमल स्वभाव को सुनकर हृदय में प्रेम आ जाता है। प्रभाव और स्वभाव दोनों जिस स्वामी में हो वही शरण ग्रहण करने के योग्य है, एक की कमी से वह शरण्य नहीं हो सकता है।

२८.—एक बादशाह का स्वभाव अति क्रूर था। थोड़े अपराध पर भारी दण्ड देता था। एक दिन भोजन परोसते समय रसोइया से शाक का छींटा उसके पाजामें पर पड़ गया। बादशाह आग बबूला हो गया, तब रसोइया ने सारा शाक उसके ऊपर उड़ेल दिया। क्रुद्ध होकर बादशाह ने पूछा—तूने ऐसा क्यों किया? तब उसने कहा–छींट पड़ी, थोड़ा अपराध, भारी दण्ड आप फाँसी देते तो लोग आपकी निंदा करते अतः मैंने अपराध को बड़ा कर

दिया अब आप फाँसी देगें तो आपकी निंदा न होगी। मेरी निंदा होगी। यह सुनकर बादशाह ने उससे शिक्षा ग्रहण की, स्वभाव को बदल दिया। सच्चा सेवक स्वामी की निंदा नहीं चाहता, स्वामी के स्वभाव में सेवक की निष्ठा ने परिवर्तन किया।

२९.–श्रीराम का प्रताप, प्रभाव और स्वभाव ये जानने के योग्य हैं। प्रताप में प्रखरता है, प्रभाव में प्रताप की तीक्ष्णता न होकर सौम्यता है, प्रताप और प्रभाव का ज्ञान दूर से भी हो जाता है किन्तु स्वभाव का ज्ञान, उसका पूर्ण अनुभव समीपता से होता है। श्रीलक्ष्मण जी प्रताप के, श्रीहनुमान जी प्रभाव के और भरतजी स्वभाव के प्रतीक है।

३०.–ईश्वर को दीनों का नाथ कहा जाता है। निष्किंचन भक्त जिसके पास कुछ नहीं है, वे भगवान के कृपापात्र हैं। अपना कहने के लिए केवल ईश्वर है। ऐसे भक्तों का धन ईश्वर है। प्रभु का दिया धन-राज्य भजन में बाधक नहीं होता है।

ध्रुवजी को भगवान ने छत्तीस हजार वर्ष का राज्य दिया। ऐसे ही अम्बरीष आदि भक्तराजा राज्य से विरक्त होकर भजन करते थे। राज्य की वे चिन्ता नही करते थे अत: वे भी निष्किंचन भक्त थे, प्रभु को प्रिय थे।

३१.–संतों से, बड़ों से आशीर्वाद माँगना चाहिए, इससे दैन्य सुरक्षित रहता है। प्रेमीभक्त मात्र सप्रेम प्रणाम ही करते हैं उन्हें बिना माँगे ही अभीष्ट की प्राप्ति हो जाती है। प्रभु सबके स्वामी हैं, रक्षक हैं पर जब तक हम में दास्य नहीं होगा हम रक्ष्य न होंगे तब तक वे स्वामी बनकर रक्षा नहीं करेंगे।

३२.–विल्वमंगल ने लिखा है-**'दास्यं गोकुल पुंश्चलीषु कुरुषे स्वाम्यं न दान्तात्मसु।'** हे कृष्ण! तुम गोकुल की गोपियों के घर की रज में लोटते हो, उनके घर का दास्य भी करते हो, पर जो शम, दम आदि साधन की सम्पत्तियों से सम्पन्न हैं ऐसे आचार्य विद्वानों के स्वामी बनना नहीं चाहते हो। तुम्हारा स्वभाव विचित्र है। तात्पर्य यह कि जिनमें दैन्य है ऐसे भक्त के प्रति स्वयं दीन होकर उनके अधीन हो जाते हो। जो मिथ्या अहंकार में मग्न हैं उनके सामने तुम भी अहंकारी बन जाते हो। कठोर के प्रति अति कठोर और कोमल के प्रति अति दीन हो। दीन के प्रति कोमल हो।

३३.–जिस सेवा और स्वभाव से हम किसी पर प्रसन्न हो जाते हैं उसी प्रकार की सेवा से उस प्रकार के स्वभाव से ईश्वर भी हम पर प्रसन्न हो जायगा। भगवान का सा

भाव स्वभाव यदि हम अपनाने की चेष्टा करें तो प्रभु रीझ जावेंगे। बड़ों के सामने नम्र रहकर सेवा, छोटों पर प्यार रखकर उनका पालन यही साधन उत्तम है।

३४.–**'उपकार प्रियो विष्णु:।'** उसकी ओर प्रभु की कृपा विशेष रहती है जो हेतु रहित पर उपकारी हैं। सबसे बड़ा उपकार जीवों को भगवान की ओर सन्मार्ग पर लगाना है। खोये हुए पुत्र को यदि कोई पिता से मिला दे तो पिता की कृपा प्राप्त करना सुलभ है।

३५.–**'उमा राम सुभाउ जेहि जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना॥'** मानस सुं० ३३/३

शंकर भगवान कहते हैं कि जिसने रामजी के स्वभाव को जान लिया उसे फिर रामजी का भजन ही अच्छा लगता है। भगवान का स्वभाव है उन्हें शरणागत भक्त प्रिय हैं। श्रीराम ने कहा हे मित्र! मेरा स्वभाव है कि कोई कितना ही पापी क्यों न हो, सब कुछ का त्याग करके सभीत होकर यदि मेरी शरण में आता है तो मैं उसे अपना लेता हूँ। उसके सभी पापों का नाश कर देता हूँ। वह निर्भय हो जाता है। विभीषण के मन में कुछ वासना थी कि प्रभु रामजी रावण का वध करके लंका का राज्य मुझे दे देंगे। परन्तु जब उन्होंने श्रीराम जी का दर्शन किया, उनके मन में प्रेम उत्पन्न हो गया तो उसके प्रभाव से मन की वासना प्रेम की नदी में बह गई। अब उन्हें कुछ नहीं चाहिए, फिर भी प्रभु ने उन्हें लंका का राजा बना दिया। रावण के मरण के पूर्व ही लंका का राज्य विभीषण को देना यह रामजी की वीरता, उदारता का परिचायक है। रावण के भय से विभीषण की रक्षा करने में कोई भी, ब्रह्माजी, शंकरजी भी समर्थ नहीं थे। ऐसे विभीषण को अभय दान दिया। इस स्वभाव को काकभुशुंडिजी जानते हैं अत: वे निरंतर भजन करते हैं। श्रीराम ने कहा कि–

'तुम्ह सारिखे सन्त प्रिय मोरे। धरउँ देह नहि आन निहोरे॥' मानस सुं० ४७/८

आप सरीखे संत मुझे प्रिय हैं, उन्हीं के लिए मैं पृथ्वी पर आकर लीला करता हूँ। अवतार का कारण भक्तों पर प्रेम ही है। विभीषणजी ने अनपायनी भक्ति का वरदान माँगा। प्रभु ने दिया। युद्ध के समय रावण ने प्रचण्ड शक्ति जो अमोघ थी उसे विभीषण के ऊपर छोड़ा। उसे आते देखकर श्रीराम जी ने विभीषण को पीछे कर लिया स्वयं सामने आकर शक्ति को अपने वक्षस्थल पर सहन किया। मेरे लिए प्रभु ने कष्ट सहन किया। यह देखकर विभीषण ने गदा लेकर रावण के वक्षस्थल पर प्रहार किया। उसे घायल किया।

३६.–श्रीरंगनाथ जी का पूजन करने के लिए लंका से विभीषणजी आ रहे थे, गाँव में मोड़ पर धक्का लगने से एक ब्राह्मण की मृत्यु हो गई। रुष्ट होकर ब्राह्मणों ने विभीषण को बहुत मारा पर उनके शरीर पर चोट नहीं लगी, तब कोठरी में बंद कर दिया। श्रीराम जी पुष्पक विमान द्वारा आ गये। ब्राह्मणों ने कहा–इसे ब्रह्म हत्या का दण्ड आप दीजिए। श्रीराम ने कहा यह हमारा सेवक है। सेवक के अपराध पर स्वामी को दण्ड मिलना चाहिए। विभीषण को मैंने एक कल्प की आयु दी है उसकी मृत्यु नहीं हो सकती है। आप लोग मुझे दण्ड दीजिए। श्रीराम की ऐसी भक्तवत्सलता देखकर ब्राह्मण लोगों ने क्षमा कर दिया और कहा कि विभीषण ने जान बूझकर हत्या नहीं की है। वृद्ध था अत: रथ के धक्के से मर गया। प्रभो! हम आपको दण्ड क्या देंगे। आप हमको अपनी भक्ति दीजिए। विभीषण श्रीराम जी को प्रणाम करने के लिए आए पर प्रभु ने मना कर दिया और कहा कि पहले ब्रह्महत्या का प्रायश्चित करो, उसके बाद तुम्हारा प्रणाम स्वीकार करेंगे। विभीषणजी रामजी को अत्यन्त प्रिय हैं।

३७.–सेवा धर्म से ही भगवान प्रसन्न होते हैं। मैं सेवक हूँ चराचर जगत भगवान का स्वरूप है, ऐसा जिसको दृढ़ विश्वास है वह अनन्य भक्त है। प्रभु के अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं। ऐसे भक्तों के पीछे पीछे भगवान घूमते है, उनका भरण पोषण करते हैं। वे भगवान आप सबों का मंगल करें। सत्संग और नाम संकीर्तन श्रेष्ठ है। नाम संकीर्तन की जय हो।

३८.–भगवान की कृपा सभी जीवों पर है। संसारी पिता-माता से अनन्त गुना वात्सल्य भगवान में हैं। एक संत सेवी भक्त के द्वार पर एक व्यक्ति आया और भगवान को गाली देने लगा। उस संत सेवी भक्त ने उसे भोजन नहीं दिया। धक्का देकर बाहर कर दिया। रात में स्वप्न में भगवान ने कहा तुमने पहचाना नहीं। मैं जन्म से उसका भरण-पोषण कर रहा हूँ तुमने एक दिन भी भोजन नहीं दिया। वह आज गाली दे रहा है कल हमारी पूजा भी कर सकता है, जीवों की बुद्धि एक सी नहीं रहती है। उसके हृदय में मैं उपस्थित हूँ। भक्त ने क्षमा याचना की और प्राणी मात्र के गुण-दोष देखे बिना ही सबकी सेवा करने लगा। भगवान की कृपा सभी के ऊपर है। हम आप पर भी प्रभु की कृपा है। हमको उसका अनुभव करके भगवान को धन्यवाद देना चाहिए।

३९.—अपना कर्तव्य है कि यथासंभव नाम, रूप, लीला का स्मरण करें। प्रभु अपने कर्तव्य का विस्मरण नहीं करते हैं। भक्त अपने प्रभु का जितना चिंतन करता है प्रभु उससे अधिक चिन्तन भक्त का करते हैं। एक एक भक्त के साथ एक एक रूप धारण करके भगवान लीला करते हैं। प्रभु अनन्त हैं, उनका सामर्थ्य अनन्त है। हर समय भक्त की भावना के अनुरूप प्रभु उस पर अपना उज्ज्वल वात्सल्य बरसाते रहते हैं। पृथ्वी का नाम क्षमा है पर उससे भी अधिक क्षमागुण प्रभु में हैं यदि ऐसा न होता तो संसारी प्राणी एक क्षण भी सुख से नहीं रह पाता। प्रभु के क्षमागुण का लाभ हमको मिल रहा है। आज ही के दिन इन्द्र ने क्षमा याचना की थी और सुरभि गाय ने श्रीकृष्ण का अभिषेक किया। चारों थनों से इतना दूध गिरा कि सारी धरती पर चारों और दूध ही दूध भर गया। सुरभि ने गोविन्द यह नाम रखा, गोरक्षक के सच्चे इन्द्र आप हैं। गोवंश तथा ब्रज का नाश करने की इच्छा से प्रलयकालीन वर्षा करने वाला इन्द्र नहीं हो सकता है। श्रीकृष्ण ने इन्द्र के अपराध को क्षमा कर दिया। आज गोविन्द कुण्ड का प्राकट्य हुआ अत: पर्व है। लोग स्नान दान करके पुण्य लाभ प्राप्त करेंगे। अन्न का कूट पर्वत बना अत: इसे अन्नकूट कहते हैं। **'कढ़ी गोपाल दूसरा माँगी।'** कढ़ी को माँगा। इस लीला को करके सबको मुँह माँगा वरदान दिया। दण्डवती के समय लोग निम्नलिखित मंत्र का कीर्तन करते हैं–

'गिरिराज धरन प्रभु तेरी शरन। रख लाज हमारी गोवर्धन॥'

गिरिराज महाराज की जय, मानसीगंगा की जय, चक्रेश्वर महादेव की जय, हरिदेवजी की जय, राधाकुण्ड की जय।

४०.—करुणानिधान भगवान सदा दया करके भक्तों का कल्याण करने के लिए तैयार रहते हैं। अपने भक्तों को प्रसन्न रखना यह ईश्वर का मुख्य कार्य है। इसी प्रकार भक्तजन अपनी सभी चेष्टाओं से अपने सभी कर्मों से प्रभु को प्रसन्न करना चाहते हैं। वे प्रार्थना करते हैं कि जिस प्रकार से आपका मन प्रसन्न रहे वही कीजिए। ईश्वर भक्तों को प्रसन्न करने के लिए सृष्टि करता है, अवतार लेता है।

४१.—श्रीराम जी का स्वभाव है कि–

'कथंचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति। न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्म वत्तया॥'

जैसे तैसे कोई थोड़ा सा उपकार परउपकार करने पर रामजी उपकारी पर प्रसन्न हो जाते हैं। श्रीराम जी के साथ कोई सौ अपकार करे तो भी उनको ध्यान में नहीं लाते हैं क्योंकि उसमें आत्मभाव है। उसे श्रीराम जी अपना मानते हैं। माता के गर्भ में बालक हाथ पैर चलाता है, उससे माता को कष्ट होता है, पर जन्म के बाद उस अपकार के बदले माता बालक को दण्ड न देकर प्यार ही करती है। इसी प्रकार श्रीराम और उनके भक्तों के मन में आत्मीयता रहती है इसलिए अपकारी पर भी क्रोध न करके उसे क्षमा ही करते हैं। क्षमाशील होने के कारण नारायण भगवान ही बड़े माने गये है। भगवान ने दुर्वासा पर क्रोध नहीं किया। शाप नहीं दिया। अम्बरीष ने श्रीकृष्ण के क्रोध से दुर्वासा की रक्षा की। दूसरे लोगों ने भगवान की यह क्षमाशीलता देखी तो उनको सबसे बड़ा माना। भगवान ने अपने भक्त को बड़ा माना। जीव बड़ा क्या होगा वह माया के आधीन है। जीवों के ऊपर प्रभु कृपा और प्यार करके उन्हें बड़ा बना देते हैं।

इति शुभम्

❋

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्री हनुमते नमः | श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः

❋ धाम महिमा ❋

१.–अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवन्तिका और द्वारका ये सात पुरियाँ प्रातः स्मरणीय हैं। अहिल्या, द्रौपदी, तारा, कुन्ती, मंदोदरी ये पाँच कन्यायें भी प्रातः स्मरणीय हैं।

सायं प्रातः जो श्रीधाम का, श्रीधाम के विग्रहों का, धामवासी भक्तों का स्मरण करते हैं उन्हें श्रीधाम में वास करने का फल प्राप्त होता है। शुद्ध होकर बुद्धि भगवान में, भगवान के भजन में लगती है।

२.–(सूर श्याम सेवा संस्थान) पृथ्वी बदली नहीं है। भक्त भगवन्त के श्रीचरणों की रज आज भी सिर पर चढ़ाने के योग्य है। यहाँ पर श्रीआचार्यों की कथा के, श्रीसूरदास के संगीत स्वर आज भी गूँज रहे हैं। प्रेमी भक्तों को इसका अनुभव होता है। गोवर्धन की तरहटी–जहाँ श्रीराधाकृष्ण ग्वाल बाल गोपियों के साथ क्रीड़ा करते थे वही भूमि है।

३.–उत्सवों का स्मरण करने से धाम वास का फल मिल जाता है। श्रीधाम में सत्संग ही प्रधान है। सब पर प्रभु कृपा करें भक्ति बढ़ती रहे। तन मन स्वस्थ रहे।

४.–नित्य उत्सव महोत्सवों से ही मंदिरों की, तीर्थों की शोभा होती है। कुछ लोग मनोरंजन के लिए आते हैं तो श्रीधाम में आने पर मंदिरों के तीर्थो के दर्शन होने से उनका भी कल्याण होता है। कई लोग दर्शन, सत्संग, रासलीला से ऐसे प्रभावित होते हैं कि बार बार श्रीधाम आने का नियम बना लेते हैं, क्योंकि श्रीधाम अनेक प्रकार से शुद्ध हृदय को आकृष्ट करता है। श्रीजी जीवों पर सर्वदा कृपा करती हैं। श्रीधाम में जड़ भी चैतन्य हैं, क्योंकि उनमें भक्ति महारानी व्याप्त हैं। धाम की यही विशेषता है।

५.—जैसे-जैसे यमुना बढ़ती हैं वैसे-वैसे सुकृत सुभट कलियुग राजा का निरादर करके उसको भगाते हैं। जैसे-जैसे यमुना जल में रज मिलकर जल मलीन होता है वैसे-वैसे यमराज के दूतों के मुख मलीन हो जाते हैं। पापी उन्हें दिखाई नहीं पड़ते हैं।

६.—पवित्र गोवर्धन धाम है। नाम संकीर्तन ही सर्वश्रेष्ठ साध्य और साधन है। गोवर्धन गिरिराज हरि हैं। नामनिष्ठ श्रीहनुमान जी की सात कोस में अनेक दिव्य मूर्तियाँ हैं। गिरिराज वास और परिक्रमा करके भक्तों के सब मनोरथ पूर्ण होते हैं।

७.—**'आशा जाकी जहँ बसी तहँ ताही को वास।'**

मन श्रीवृन्दावन में रहे। प्रारब्धवश शरीर बाहर है तो यह वृन्दावन वास ही है और यदि शरीर वृन्दावन में है मन बाहर है तो इसे उत्तम धाम वास नहीं कहेंगे।

८.—धाम से बाहर जाने पर प्रभु का धाम में अभाव नहीं होता है।

९.—आनन्दमय भगवद्धाम में भगवान के नाम, रूप, लीला के सर्वत्र दर्शन होते हैं। नाम का श्रवण, रूप का दर्शन और लीला का अनुभव भगवान के धाम में होता है। अनन्य भक्त अपने घर में रहकर नाम, रूप, लीला का अनुभव करते हैं। उनका घर का निवास, धाम निवास के तुल्य है।

१०.—अनन्त गुण सम्पन्न परमात्मा आप सबका कल्याण करें। भगवद्भक्तों के दोनों लोक सुखमय होते हैं। जब तक यहाँ रहते हैं, शास्त्र मर्यादा के अनुकूल सुखों को भोगते हैं। अन्त में शरीर त्यागकर भगवद्धाम में जाते हैं। भक्त के लिए यह लोक भी वैकुण्ठ के तुल्य है क्योंकि यहाँ नित्य भगवत् सेवा में रहता है। भगवान के धाम में भी सेवा ही प्रधान है। सेवा धर्म ही भगवान को प्रसन्न करता है।

११.—धाम में पहुँचना, निवास करना, धाम के स्वामी की कृपा से ही होता है।

१२.—श्रीकृष्ण की लीला के समय धामवासी ग्वालबाल गोपियों की जैसी महिमा थी ब्रज वासियों की वैसी ही महिमा है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है कि–**'तुलसी तब के से अबहु जानिबे रघुवर नगर बसैया।'** श्रद्धालु के लिए वही धाम है। वही श्रीकृष्ण का परिकर है। श्रद्धाहीन लोग जब भगवान प्रगट होकर लीला कर रहे थे तब उनके ऐश्वर्य माधुर्य को प्रत्यक्ष देखकर श्रीकृष्ण को पहचान नहीं सके। द्वारकाधीश की पटरानियों में रुक्मिणी, कालिन्दी, सत्यभामा आदि कुछ ही रानियों ने श्रीकृष्ण तत्व को समझा, सबने नहीं। जैसे समुद्र में रहने वाले जीवों ने समुद्र में रहने वाले चन्द्रमा को नहीं

पहचाना, अपना सरीखा जीव ही माना, उसी तरह एक विशिष्ट पुरुष है इतना जान सके, परात्पर ब्रह्म हैं यह नहीं जान सके। जो भक्त थे जिन पर संत-भगवन्त की कृपा थी उन्होंने ही संत-भगवन्त को पहचाना व लाभ प्राप्त किया। ब्रज की लताओं-कुंजों को, यमुना के तट को, गोवर्धन गिरिराज को देखकर कृष्ण-बलराम दोनों भाइयों का हृदय प्रेम से भर गया। उसमें उत्तमा प्रीति का अविर्भाव हुआ। जब यह धाम श्रीकृष्ण-बलराम को प्रीति प्रदान करने वाला है, तब यहाँ आने वाले सहृदय भक्तों के मन में प्रेम प्रकट हो जाय, उससे धामवास, धामी में निष्ठा हो जाय तो क्या आश्चर्य है। श्रीकृष्ण सबको अपनी ओर आकृष्ट करते हैं, उस भक्त के हृदय में प्रकट हो जाते हैं। माया अपने आप दूर हो जाती है। तब जीव सदा के लिए कृतार्थ हो जाता है। उसे अंतिम कल्याण की प्राप्ति हो जाती है। श्रीराधारानी विश्व का कल्याण करें।

१३.—प्रथम अपने इष्टदेव के नाम, रूप, चरित्र, धाम के कीर्तन में जिह्वा को और उनके स्मरण में मन को नियुक्त कर देना चाहिए। जैसे स्वामी सेवक को सेवा में नियुक्त करता है वैसे ही अपने अधीन वाणी को, मन को लगाना चाहिए। वाणी से कीर्तन का विधान किया गया। कीर्तन बिना श्रवण के नहीं होगा। अतः प्रथम श्रवण करना चाहिए। उसके बाद सुने हुए नाम, रूप, लीला, धाम का कीर्तन करना चाहिए। प्रथम श्रवण, द्वितीय कीर्तन, तृतीय स्मरण में मन लगाना चाहिए। उसके बाद अपने इष्टदेव के धाम में ही निवास करना चाहिये। अयोध्या, वृन्दावन, काशी आदि में जो अपना इष्ट धाम हो वहीं कष्ट सहकर भी रहना चाहिए। अपने निवास के कमरे में प्रभु, प्रतिमा या चित्र के रूप में विराजमान हैं अतः वह भगवान का धाम है, उसमें रहना चाहिए। सारी सृष्टि भगवान की है, उसमें प्रभु विराजमान हैं अतः हम भगवान के धाम में हैं ऐसा विश्वास रखना चाहिए। हमारे पति परमात्मा श्रीकृष्ण हैं हमको अपने पति के घर में रहना चाहिए। पति के घर में रहेंगे तो पति हमारी हर प्रकार से रक्षा करेगा। हमारे खान-पान, परिधान का प्रबंध करेंगे। हम पति के घर को छोड़कर अन्यत्र रहें तो हमारी रक्षा की, खान-पान आदि की जिम्मेदारी पति पर नहीं रहेगी। स्वेच्छाचारिणी कुलटा के पालन का भार पति पर नहीं रहता है। पतिधाम में रहकर पतिधाम वासी लोगों की यथोचित सेवा करना कर्त्तव्य है। पतिधाम में शरीर से, वाणी से, मन से रहना चाहिए। शरीर पति धाम में है, वाणी से बाहर

की बातें करते हैं, मन धाम से बाहर अन्यत्र है यह धामवास सही नहीं है। हम धाम में रहें और धाम मेरे मन में रहे। अपने इष्ट धाम का कभी भी त्याग नहीं करना चाहिए। धर्मनिष्ठ संत तो धाम के बाहर श्रीकृष्ण की ओर भी नही देखते हैं। धाम के बाहर करोड़ों चिन्तामणियाँ मिलें तो लेने की इच्छा नहीं करते हैं। चौथी बात यह कि जो श्रीकृष्ण के अनुरागी हैं, अपने गुरुदेव हैं, जिनका धाम में वास है उनका अनुगमन करना चाहिए। स्वच्छंद साधन की अपेक्षा गुरुजनों के अधीन रहकर साधन करना श्रेष्ठ होता है। कभी कोई शंका उलझन मन में पैदा हो जाये तो सिद्ध गुरु सब प्रकार से समाधान कर देते हैं, जिससे साधन पथ पर चलने में कोई कठिनाई नहीं होती है।

१४–अयोध्या आद्यापुरी है। पुरियों में मस्तक है। सरयू नदी आदि नदी है इसका प्राकट्य भगवान के नेत्रों से हुआ अतः नेत्रजा नाम है। मानसरोवर से प्रकट हुई अतः सरयू। राम के लिए आई अतः रामगंगा नाम है। वशिष्ठजी तपस्या करके लाये अतः वाशिष्ठी नाम प्रसिद्ध है। कई लाख वर्ष पूर्व रामावतार हुआ था। इतिहास अयोध्या का उज्ज्वल है।

१५.–यमुनाजी में बाढ़ आ गई थी। सुदामा कुटी के सामने सड़क पर तीन फुट गहरा पानी भर गया। खूब धारा चलने लगी। ज्ञानगुदड़ी में पानी पहुँचते ही प्रेमी लोग ज्ञानगुदड़ी यमुना में स्नान करने लगे। तीन दिन यह पर्व रहा।

श्रीयमुना श्रीकृष्ण के द्रवित प्रेम का स्वरूप है। पानी नहीं हैं। प्रेम ही पिघला भरा है। ज्ञानगुदड़ी में गोपी–उद्धव सम्वाद हुआ उस समय राधारानी का प्रेम उमड़ा। नेत्रों से प्रेम के अश्रु प्रवाहित हुए। वे ज्ञानगुदड़ी की रज में व्याप्त हैं। यमुना और उस प्रेमाश्रु गंगा का संगम हो जाने से पर्व बन जाता है। संगम होने से तीर्थराज बन जाता है। ज्ञानगुदड़ी में वर्ष १९९५ में तीर्थ राज बना उसमें प्रेमी लोगों ने स्नान कर धन्य माना।

१६.–प्रेम का घनीभूत (जमा हुआ) स्वरूप श्रीगिरिराज गोवर्धन है। यमुना और गिरिराज दोनों चिर स्थाई हैं। इसके बाद बाँके बिहारी, राधावल्लभ, राधारमण अनेक निधियाँ हैं। इन सबके प्रकट होने में प्रेम ही प्रधान रहा है। जब तक यमुनाजी और गोवर्धन हैं तब तक भक्तों के पापों को दूर कर ये भक्तजनों को पवित्र करते रहेंगे। कलियुग के प्रभाव को नष्ट करते रहेंगे। जब इनका दर्शन नहीं होगा तब कलि का प्रभाव बढ़ेगा। परम सत्य यह है कि ईश्वर सभी प्राणियों में विराजमान है संसार से व्यवहार करते समय सावधान रहना चाहिए कि हम जो कुछ करते हैं वह ईश्वर के

साथ अथवा अपने साथ करते हैं। किसी उपकार या अपकार का फल हमको मिलेगा तो वह उपकार या अपकार सब अपने साथ ही होता है। इतना समझने से सारे शास्त्रों का तात्पर्य समझ में आ जाता है। विश्व का कल्याण हो।

१७.–शरीर के द्वारा होने वाले कर्म की अपेक्षा मन के द्वारा हुआ कर्म स्मरण आदि श्रेष्ठ है। **'आशा जाकी जहँ वसी तहँ ताही को वास।'** धाम के बाहर रहकर जिनका मन श्रीवृन्दावन में लगा है वे भाग्यशाली वृन्दावन वास का लाभ प्राप्त करते हैं। नाम, रूप, लीला, धाम सभी सच्चिदानन्दमय हैं। धाम का स्मरण करने पर धाम वहीं प्रकट हो जाता है। नाम के अधीन नामी रहता है। इस प्रकार धाम भी नाम के अधीन है। कृष्ण-कृष्ण कहने से कृष्ण का सानिध्य मिलता है और वृन्दावन-वृन्दावन कहने से वृन्दावन धाम का सानिध्य प्राप्त होता है। धाम का वियोग, धाम प्रेम का दाता है। श्रीभगवत रसिक जी के पद आपकी स्मृति में हैं-

हमारो वृन्दावन उर और।
मायाकाल तहाँ नहि व्यापै जहँ रसिक सिरमौर॥
छूट जात सत असत वासना मन की दौरा दौर।
भगवत रसिक बतायो श्रीगुरु अमल अलौकिक ठौर॥

धाम की उपासना का यही रहस्य है कि मैं धाम में हूँ और धाम मुझमें है। मैं श्रीधाम का हूँ और श्रीधाम हमारा है। मैं श्रीकृष्ण का हूँ और श्रीकृष्ण मेरे हैं।

१८.–वृन्दावन के प्रेमी काशीवासी हरिदास का स्मरण करें, वे वृन्दावन के लिये चले, फिर भाव आया मलमूत्रागार शरीर को वृन्दावन में छोड़ना ठीक नहीं है। बीच में ही शरीर त्यागकर दिव्य शरीर से धाम में पहुँचे।

१९.–भगवन्तमुदितजी के पिता माधवदास का वृन्दावन प्रेम स्मरणीय है। चन्द्रमा, समुद्र, कमल, सूर्य आदि एक दूसरे से बहुत दूर हैं, फिर भी उनमें प्रेम है। उत्कट प्रेम में दूरी नहीं रह जाती है।

२०.–आपके कमरे में अनेक ग्रंथ हैं जो प्रभु के श्री विग्रह हैं। अनेक संतों के चित्र हैं। चित्रों के द्वारा भक्त-भगवान का निवास है। श्रीतुलसी वृक्षावली एवं अशोक भी शांतिप्रद है। वृन्दावन में वृन्दा राधारानी का निवास है। आपके आवास में तुलसी वृन्दावन है उसे देखकर आनन्द होता है। मैं आप के पास था तो उक्त कारणों से वृन्दावन की

याद आती थी, वृन्दावन का वियोग नहीं व्याप्त होता था। अशोक को देखकर रामायण की चौपाई ध्यान में आ जाती थी–

सुनहि विनय मम विटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका।। मानस सुं० ११/१०

२१.–धाम का अपना ऐसा आकर्षण है कि सभी लोग आकृष्ट हो जाते हैं, सबको शांति प्राप्त होती है, सबका मनोरंजन हो जाता है। भावुक जन तो भाव विभोर होकर कृतार्थ ही हो जाते हैं। इस प्रकार यहाँ स्वार्थ परमार्थ दोनों ही सिद्ध हो जाते हैं। साधक को धाम वास करते समय मन समेत इन्द्रियों को वश में करके भजन साधन करना अनिवार्य है। अन्यथा धाम वास करने पर भी कल्याण में बाधा होती है। गहवर वन वासी के कूप में कूदने से यह सिद्ध हुआ। प्रेत योनि छूट गई, अब गर्भ वास हो गया। भागवतादि अनुष्ठानों से लाभ हुआ। संतों के भजन कीर्तन अनुष्ठान न होते तो अधिक काल तक प्रेत योनि में रहता।

२२.–मन को विषयों का अभ्यास जन्म जन्मान्तर का है। पूर्ण संयमित मन था विल्वमंगलजी का, पर वह भी अभ्यासवश रूप में आसक्त हो गया। इसलिये मन विश्वास के योग्य नहीं है। इसे सदा सत्संग में डुबाकर रखने की आवश्यकता श्रीमद्भागवत में कही गई है।

२३.–श्रीधाम आनन्द का पुंज है, इसलिए है कि धाम और धामी में अभेद है। धामी श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दमय हैं अतः उनकी लीला, लीला स्थली भी आनंदमयी है। यही कारण है कि जो श्रीकृष्ण, लीला, धाम से संबंध स्थापित करता है उसे आनन्द की प्रतीति तत्क्षण होती है। जो दूर रहकर धाम का स्मरण करते हैं, जो धाम में आकर दर्शन एवं निवास करते हैं उन सभी को अपनी पात्रता के अनुसार आनंद का अनुभव होता है।

२४.–जिसका सम्पर्क स्मरण शोक, चिन्ता, और उद्वेग को प्रदान करता हो उसे अनित्य समझो। जो क्षणिक मिथ्या सुख देती है वह वस्तु भी अनित्य है और जो नित्य, अखण्ड सुख प्रदान करने वाली वस्तु है वही नित्य है, सत्य है। अपनी निज की वस्तु के संबंध से शांति सुख होता है, अन्य विपरीत से अनन्य को दुःख होता है। जो श्रीकृष्ण के अपने जन हैं जिन्होंने श्रीकृष्ण को अपना लिया है उन्हें वृन्दावन धाम सुखद है। वृन्दावन, गोवर्धन, यमुना पुलिन को देखकर कृष्ण और बलराम के मन में साधारण प्रीति

नहीं, उत्तमा प्रीति हुई। गोकुल से वृन्दावन आए तो देखते ही प्रेम मग्न हो गऐ। यथा–
'वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानिच। वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नुप॥'

२५.–सप्त मोक्ष देने वाली पुरियों में अयोध्या प्रथम है। यहाँ सरयू का दिव्य प्रवाह है। भगवान के नेत्रों से उनका प्राकट्य है। मानसरोवर से वशिष्ठजी लाये अतः वशिष्ठी नाम है। श्रीराम के लिए आईं अतः रामगंगा भी नाम है। यहाँ श्रीहनुमान गढ़ी के हनुमानजी का मंदिर मुख्य है। राम जन्म भूमि, रत्न सिंहासन, कनक भवन ये प्रसिद्ध मंदिर हैं। साधुओं के अनेक स्थान प्रसिद्ध हैं। मणीरामजी की छावनी, श्रीरघुनाथ जी की छावनी, श्रीतपसीजी की छावनी। श्रीराम हर्षणदासजी महाराज का स्थान प्रसिद्ध है। साधुओं का ही यहाँ बहुमत है।

२६.–दण्डवती परिक्रमा में रज शरीर में लगती है। यही सौभाग्य है दण्डवती लगाने वालों का।

२७.–**राम कथा मंदाकिनी, चित्रकूट चित चारु।**
तुलसी सुभग सनेह वन, सिय रघुबीर विहारु॥

अर्थ–श्रीराम कथा मंदाकिनी है। सुन्दर चित्त ही चित्रकूट है। निर्मल स्नेह वन है उसमें श्रीसीताराम जी विहार करते हैं। जिनमें असूया नहीं है वे अनुसूया अपने पति अत्रि के वास्ते गंगा की धारा लाईं। भक्त का मन जब स्थिर और पवित्र, पर्वत की तरह हो तब उसमें, निष्काम प्रेम रूपी वन में श्रीसीताराम जी विहार करते हैं। जैसे चित्रकूट में मंदाकिनी है वैसे ही मन में राम कथा होनी चाहिए। राम कथा में मन लगा रहेगा तो चित्रकूट की तरह अचल अमल रहेगा। कथा के प्रभाव से स्नेह हरा भरा रहता है। पवित्र स्नेह जिसमें है उसी के हृदय में श्रीसीताराम जी विहार करते हैं। स्वच्छ हरे भरे वन को ही विहार के योग्य माना जाता है। अपना चित्त ही चित्रकूट बने, उसमें राम कथा लीला का जब चिंतन हो तब वहाँ श्रीजी के समेत प्रभु स्वयं ही पधारेंगे। चित्रकूट अचल है। गंगाजी बहने वाली हैं, राम कथा लीला में प्रवाह है। जन्म हेतु से लेकर स्वधाम गमन तक प्रवाह है इसी में स्नान अपेक्षित है।

२८.–लाड़िलीजी तो पूजा भक्ति से प्रसन्न रहती हैं। उन्हें अपने भक्तों पर वात्सल्य है। जो जैसे रहना चाहते हैं उन्हें उसी प्रकार से रखती हैं अतः वे वन्दनीया

हैं। उनमें वात्सल्य की प्रधानता है। इस मातृत्व का लाभ धाम वासी जीवों को विशेष मिल जाता है। श्रीधाम के भक्त तो धाम में ही हैं बाहर रहकर भी धाम वास का आनंद लेते हैं। यह धाम कार्तिक में कल्पवास के लिए बुलाता है।

२९.–सेवा में जो भक्त यहाँ लगे हैं वे शरीर को त्याग कर दिव्य शरीर से भगवान की सेवा में लगे रहेंगे। श्रीवृन्दावन धाम श्रीराधेरानी का धाम है। यहाँ निवास करने वाले सभी जीवों पर उनकी अपार कृपा रहती है। अपने मन में यह समझकर कि हमको प्रभु कृपा करके सदा अपने धाम में, अपनी शरण में सर्वदा रक्खें।

३०.–श्रीधाम का स्मरण करके श्रीबिहारी जी को, श्रीराधावल्लभ को, श्रीगोपेश्वर जी को, यमुनाजी को नमस्कार करने से वृन्दावन वास का लाभ मिलेगा।

३१.–जिनका धाम के प्रति प्रेम है जिन्हें धाम की आशा है वे बाहर रहकर भी धाम के प्रेमी, धाम के वासी हैं। मंदिरों के ध्यान-स्मरण से धाम वास का फल मिलता है। नीचे लिखे श्रीमान भगवतरसिक जी के छंदों का आप नित्य पाठ कर लिया करें। इन्हें कंठस्थ कर लें तो धाम के प्रति प्रेम बढ़ेगा।

'प्रथम दरश गोविन्द, रूप के प्राण पियारे।
दूजे मोहन मदन, सनातन शुचि उर धारे॥
तीजे गोपीनाथ, मधू हंसि कण्ठ लगाये।
चौथे राधारमण, भट्ट गोपाल लड़ाये॥
पाँचे हित हरिवंश, सुवल्लभ राधा।
छठ्यें युगल किशोर, व्यास सुख दियो अगाधा॥
सातें श्रीहरिदास के कुंज बिहारी हैं जहाँ।
भगवत रसिक अनन्य, मिलि वास करौ निधिवन तहाँ॥१॥

कुंजन ते उठि प्रात गात यमुना में धोवे।
निधिवन करि दण्डवत् बिहारी को मुख जोवे॥
करै भावना बैठि स्वच्छ थल रहित उपाधा।
घर घर लेय प्रसाद लगै जब भोजन बाधा॥
संग करै भगवत रसिक, कर करवा गूदर गरे।
वृन्दावन बिहरत फिरै युगल रूप नैनन भरे॥२॥

३२.—भक्त की अन्तर्मुखी वृत्ति रहती है उसे दिव्य वृन्दावन के सिद्ध संत दिखते हैं। अभक्त की बहिर्मुखी वृत्ति रहती है उसे अपनी अश्रद्धा के कारण माया का नाटक दीखता है पर जो अधिक समय तक धाम से जुड़ा रहता है उसे एक दिन कभी न कभी श्रीधाम की कृपा प्राप्त हो ही जाती है। यह धाम का अपना दिव्य प्रभाव है। यहाँ के दीन हीन वेषधारी महान सिद्ध हैं, भिक्षुक भी दिव्य देवता हैं। छिपे रूप से रहते हैं।

३३.—भगवान का धाम सबको अपनी ओर नित्य आकृष्ट करता है। जो भी दर्शनार्थ आते हैं उनके मन में यही होता है कि मुझे यहाँ निवास मिल जाय तो उत्तम है। श्रीधाम का दर्शन करके, यहाँ के मंदिरों का, श्रीविग्रहों का, तीर्थों का, धाम के संतों का यथा समय सायं-प्रातः स्मरण ध्यान करने से तीर्थ वास का फल प्राप्त हो जाता है।

३४.—सब प्रकार धाम में आनन्द है। जो सन्मार्ग में है वह श्रीधाम में हैं। जो कृष्ण सेवा चिन्तन में निमग्न हैं वह धाम में है। नाम जापी सदा धाम में हैं। **श्रीकृष्णः शरणं मम।** इस शरणागति मंत्र का सदा स्मरण करने वाला धाम में है।

जो कुमार्ग में है वह धाम से बाहर है। विषयासक्त, माया मोहित मनुष्य संसार में है। धाम में बुद्धि नहीं रमी है तो धाम में रहकर भी धाम में नहीं है। कृष्ण विमुख धाम से बाहर हैं।

इति शुभम्



श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्री हनुमते नमः श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः

❃ शरणागति का स्वरूप ❃

१.—भूल जाना यह जीव का स्वभाव है। कन्या अपने पति का वरण कर लेती है तो उसे दृढ़ विश्वास होता है कि यह मेरे पति हैं। बार-बार वह न कहे तो कोई आपत्ति नहीं है। पर जीव शरणागत होकर भी दृढ़ विश्वास नहीं कर पाता है। संसार के संबंध अपनी ओर खींचते हैं अतः उसे बार-बार शरणागति का स्मरण करना चाहिए। मन नाम, रूप, लीला में अनन्य भाव से लीन हो जाय तो उस भक्त का स्मरण स्वयं भगवान करते हैं। भक्त बार-बार न भी कहे कि मैं शरण में हूँ तो कोई आपत्ति नहीं है पर नये साधक को बार-बार स्मरण करना ही है।

२.—जब तक जीव भगवान की शरण में नहीं जायेगा तब तक उसे शांति नहीं मिलेगी। आज नहीं तो आगे घूम फिर कर जीव भगवान के पास अवश्य पहुँचेगा। इस प्रकार पहुँचने में विलम्ब होगा। अनेक बार चौरासी लाख योनियों में भटकना पड़ेगा अतः प्रयत्न करके, साधन भजन करके शीघ्र से शीघ्र अपने प्रभु के पास पहुँच जाना चाहिए। इससे वे प्रभु अति प्रसन्न होंगे। जीव के विमुख होने पर ईश्वर को कष्ट होता है।

आवत निकट हँसहि प्रभु भाजत रुदन कराहिं।

जब भक्त निकट आता है तो भगवान प्रसन्न होकर हँसने लगते हैं। भगवान से दूर भागता है तो बाल गोविन्द भगवान रोने लगते हैं इसलिए इष्ट को प्रसन्न रखने के लिए प्रभु की ओर जाना चाहिए। भगवान की ओर पीठ करके उनसे अलग नहीं जाना चाहिए।

३.—साधारण जीव कर्मवश सुख और दुख भोगते हैं परन्तु शरणागत जीव प्रभु के प्रेम में निमग्न रहते हैं। उनका दिव्य संसार अलग ही है।

४.—मैं एक भगवान के हाथ का छोटा सा खिलौना हूँ। भगवान के सर्वथा अधीन हूँ। जैसे भी चाहें भगवान हमको अपने पास रक्खें। हमको हर हालत में प्रसन्न ही रहना चाहिए।

५.—प्रातः उठकर पृथ्वी को प्रणाम करके अपने इष्टदेव के नाम, रूप, लीला, धाम का स्मरण करना चाहिए। जिस-जिस वस्तु को मैंने अपनी माना है, हे प्रभो! वह

सब आपको अर्पण करता हूँ। वह सब आपका है। मेरा नहीं है। मैं आपकी शरण में हूँ। अब आपसे मैं किसी संसारी वस्तु की माँग न करूँ, ऐसा हमारा मन बन जाय। आपके रूप में मेरा मन उलझा रहे। जहाँ-जहाँ मेरा मन जाय वहाँ-वहाँ मुझे आप अपने ही स्वरूप का दर्शन कराओ। अपने पूर्व के अभ्यास के अधीन होकर मैं संसारी विषय के गढ्ढ़े में गिर गया हूँ। आप के अतिरिक्त अब मुझे कोई निकालने वाला नहीं है। जो चाहो सो करो। आप सर्वसमर्थ हैं। दीनों पर दया करने वाले हैं। पतितों को पावन करने वाले हैं। मुझसे बड़ा कोई पतित नहीं है अतः आप मुझे पवित्र कर लीजिए। 'श्रीकृष्णः शरणं मम। जयति श्रीकृष्णः।'

६.–**'हरिः शरणम् हरिः शरणम्'** ऐसा निरन्तर कहने वाले को बाधायें व्याप्त नहीं होती हैं। कराल कलिकाल में भक्त जन शांत और सुखी हैं। मैं विश्व कल्याण की कामना करता हूँ।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्॥

७.–प्रभु कृपा से मन प्रसन्न है। मन में कोई ग्लानि नहीं है। प्रभु के अधीन हम जीव हैं। जैसे प्रभु रक्खे उसी तरह से रहने को तैयार हैं। वृद्ध शरीर के भोग कर्मानुसार भोगने पड़ते हैं उन्हें भोग रहा हूँ। शरीर त्याग के लिए तैयारी है पर जब तक श्वास पूरे नहीं होंगे तब तक शरीर रहेगा। जहाँ-जहाँ का अन्न-जल अपने भाग्य में है वहाँ-वहाँ जाना पड़ेगा।

८.–प्रारब्धवश संकट आते हैं। ईश्वर कृपा करके भक्तों के पास संकट भेजता है। संकट के समय विशेष दीनता होती है। दीनता पर ही प्रभु रीझते हैं। यदि जीव संकट का अनुभव न करे तो ईश्वर की शरण में क्यों जाय। अज्ञानी जीव संकटग्रस्त होने पर भगवान को याद नहीं करता है। भक्त जीव संसार में कदाचित् प्रभु को भूलता है तो प्रभु ऐसा संकट पैदा करते हैं कि उसको प्रभु की याद आती है। भक्त संसारी कष्ट से नहीं घबड़ाता है। वह नरक स्वर्ग से भयभीत होकर शरण में जाता है। ज्ञानी भक्त नर्क स्वर्ग से नहीं डरता है। प्रेमाभक्ति को प्राप्त करने के लिए शरण में जाता है। हमारे और आप लोगों पर जो संकट है वह परीक्षा के लिए हैं, कृपा करने के लिए है, वैराग्य को दृढ़ करने के लिए हैं। संकट आने पर संसारी सुखों को भोगने की आशा का त्याग करना चाहिए। हमने संसारी सुखों में मन को आसक्त किया उसी का परिणाम

दु:ख है। जिस वस्तु से जितना अधिक संसारी सुख मिलता है उतना ही अधिक दु:ख उस वस्तु से मिलता है। दु:ख में यदि भजन नहीं बना तो फिर कब बनेगा। मेरा संकट दूर हो जायेगा तब भजन करुँगा। तभी भजन करुँगा ऐसा मत सोंचो। जो भी स्थिति है चाहे दु:ख हो या सुख उसी स्थिति में यथासंभव भजन करो। **'भजत कृपा करिहैं रघुराई'** भजन करने से भगवान कृपा करते हैं।

९.–**सुखी मीन जहँ नीर अगाधा। जिमि हरि शरण न एकहु बाधा।।**

जहाँ अति गहरा पानी है वहाँ मछली को कोई संकट नहीं होता है। इसी प्रकार शरणागत भक्त को कोई संकट नहीं होता है। पर शिकारी काँटे में खाने की कोई चीज लगाकर जल में डालता है तो मछली जिह्वा के लोभ से काँटे को निगल लेती है। काँटा गले में फँस जाता है। मछली को शिकारी पकड़ लेता है। इसी प्रकार शरणागत यदि खाने, पीने, सुनने, देखने के लोभ में पड़ता हैं तो वह मारा जाता है। शरणागत भक्त इन्द्रियों से विषयों के भोगने की इच्छा नहीं करता है तब वह निर्भय रहा करता है। विषय सुखों से वैराग्य होना यह शरणागत का लक्षण है। अनासक्त भाव से यथा प्राप्त विषय प्रभु प्रसाद है प्रभु द्वारा दत्त है, उनको भोगकर जीवन धाारण करता है वह बंधन में नहीं पड़ता है।

१०.–भक्तजन भगवान की इच्छा में अपनी इच्छा को मिला देते हैं और जो कुछ हुआ, जो कुछ होगा, जो हो रहा है वह सब भगवान की इच्छा से हो रहा है और ठीक हो रहा है। हमारे प्रभु सच्चे पिता-माता हैं और उनका प्यार हमारे ऊपर है उसी प्रकार दूसरे प्राणियों पर भी भगवान का प्यार है। अत: हम भी दूसरे प्राणियों के साथ उचित दयामय व्यवहार करें। किसी भी बात का मन में चिंतन करें तो वास्तविकता समझ में आ जायगी। स्वाध्याय नित्य करें।

११.–भगवद् आश्रित प्राणी ही सकुशल हैं। फिर चाहे वे शरीर की दृष्टि से संकटग्रस्त ही क्यों न हों। विमुख को चाहे जितने संसारी सुख मिल जाय पर सकुशल नहीं रहता है।

१२.–शरीर में जरा, व्याधि और मरण बना रहता है पर प्रारब्धवश ये क्रियायें अनिवार्य हैं ऐसा मानकर सज्जन लोग उसकी विशेष चिंता न करके भगवत् स्मरण में

मन लगाते हैं। जो सुख दु:ख आते हैं प्रभु का कृपा प्रसाद समझकर भोगते हैं। अपने कर्मों के फलस्वरूप सुख दु:ख मिलते हैं। दूसरा कोई दु:ख सुख का दाता नहीं है ऐसा विश्वास रखने वाले भी सहर्ष सुख दु:ख भोगते हैं पर भक्तजन तो हर परिस्थिति में अपने इष्ट की कृपा का अनुभव कर आनंदित रहते हैं। धर्म की जय हो। अधर्म का नाश हो। प्राणियों में सद्‌भावना हो। विश्व का कल्याण हो।

१३.—**जेहि विधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुणा सागर कीजै सोई॥** (भरत वाक्य)

हे करुणा सागर प्रभो! जिस प्रकार आपका मन प्रसन्न रहे आप वही कीजिए। भक्त के मन में पूर्ण विश्वास रहता है कि प्रभु सर्वत्र हैं और मेरे ऊपर उनकी पूर्ण कृपा है। मेरा कल्याण करने के लिए सदा तत्पर हैं। इसलिए भक्त भगवान के सामने हठ नहीं करता है कि आप उस मनोरथ को पूर्ण कर दीजिए। भक्त अपने प्रभु के मुख पर मुस्क्यान देखना चाहता है। जो हठ करके प्रभु को संकोच में डालकर अपना हित चाहते हैं उसकी स्वार्थी प्रीति है। शरणागत होकर कितने लोग यह चाहते हैं कि हमारे सभी बिगड़े कामों को भगवान बनावें। यह भाव उचित नहीं है। शरणागत भक्त को अपना सर्वस्व प्रभु को सौंपने के बाद अपनी इच्छा नहीं रह जाती है। भक्तजन भगवान की इच्छा से सब काम करते हैं। जब भक्त भगवान की इच्छा पर निर्भर हो जाता है तब भगवान उस भक्त की इच्छानुसार सब करते हैं।

१४.—संकट के समय प्रभु नाम स्मरण के अतिरिक्त अपने पास कोई उपाय नहीं है। भक्त का प्रथम लक्षण है कि वह सहनशील होता है। धैर्यपूर्वक हर विपत्ति को सहन करता है और ईश्वर के प्रति श्रद्धा-विश्वास को सुदृढ़ बनाए रखता है। ईश्वर को दोष नहीं देता है। कष्ट अपने ही कर्म का फल है अत: धैर्यपूर्वक सहन करना ही बुद्धिमानी है। संकट में प्रभु का स्मरण सहज भाव से होता है इसलिए कुंती ने कष्ट का वरदान माँगा। हम में श्रद्धा की कमी है नहीं तो जिसका वरदान माँगा गया वह वस्तु सहज में हमको भगवान ने दे दी है, तो यह कृपा ही है।

१५.—सिद्धान्त यह है कि प्रभु के दिए हुए धन में, परिवार में, शरीर में हमको संतुष्ट रहना चाहिए। जो प्रभु ने दिया है उसमें संतुष्ट न होकर जब हम अपने मन में असंतोष व्यक्त करते हैं तो प्रभु का अपमान होता है। हमको कृतज्ञ होना चाहिए। भगवान

ने कृपा करके जो कुछ दिया है वह ठीक है। प्रभु को धन्यवाद है। इतना सब कुछ दिया है यदि हमको और अधिक आवश्यक होगा तो प्रभु हमको और देंगे। ईश्वर की इच्छा में अपनी इच्छा को, प्रभु की प्रसन्नता में अपनी प्रसन्नता को मिला देना चाहिए। जो कुछ सहज प्राप्त है उसमें ही संतुष्ट रहना चाहिए। प्रभु के द्वारा दिये गये धन-जन में संतुष्ट न रहकर हम तरह-तरह की कामना करते हैं उसके लिए देवी-देवताओं से विनय करते हैं। कामना के पूर्ण न होने पर अविश्वास हो जाता है इसलिए यदि कामना हो तो अपने इष्टदेव के सामने निवेदन करना चाहिए। यदि कामना की पूर्ति में आप प्रसन्न रहें, मेरा कल्याण हो तब आप पूर्ण कर दीजिए। आप प्रसन्न न रहें, मेरा कल्याण भी न हो तो ऐसी कामना का पूर्ण न होना ही अच्छा है। जिस प्रकार प्रभु प्रसन्न रहें उसमें ही प्रसन्न रहना है।

१६.–**'जन कहँ कछु अदेय नहि मोरे।'** भगवान कहते हैं कि कोई भी उत्तम वस्तु, ऊँचा पद ऐसा नहीं जिसे मैं अपने भक्त को न दे सकूँ। परन्तु अज्ञानवश बालक यदि विष पीने का आग्रह करे तो माता-पिता उसे विष नहीं देंगे। परन्तु भगवान को छोड़कर दूसरे देवता तप के बदले जो माँगो वही दे देते हैं। फिर उस वस्तु से याचक का कोई अनिष्ट हो जाय तो उस देवता को चिंता नहीं रहती है। पर भगवान ऐसे दयालु है कि वे भक्त को वही वस्तु देंगे जिससे कल्याण हो। दयामय भगवान सभी भक्तों पर सर्वदा कृपा करें।

१७.–जो कुछ करते हो वही करो पर उसे सच्चाई के साथ करो और प्रभु को प्राप्त करने के लिए करो। संसार के लिए करोगे तो संसार मिलेगा, प्रभु के लिए करोगे तो प्रभु मिलेंगे। मनुष्य खूब साधन-भजन करता है पर यदि संसार की आसक्ति होती है तो उसका फल संसारी होता है। माता कैकेयी की पुत्र में आसक्ति थी, स्वयं को राजमाता पद की इच्छा थी। अतः राम को वनवास दिया। लोभ अर्थ को अनर्थ में बदल देता है। भगवत रसिक का वाक्य है,

अपने सुत के काज कैकेयी दियो राम वनवास।
भर्ता मर्यौ भरत दुख पायौ सह्यौ जगत उपहास॥

१८.–भजन साधन का संग्रह हुआ। संसार में कोई कार्य अटका तो वह अपने साधन फल के बदले संसार का कार्य बनाने की इच्छा करता है। कदाचित् संसार का

काम बन जाता है पर ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती है। ईश्वर को प्रसन्न करने का, पाने का लक्ष्य रहने से ईश्वर की प्रसन्नता और ईश्वर की प्राप्ति होती है। दयालु प्रभु अपने भक्त के कुटुम्ब की रक्षा स्वयं करते हैं–**'प्रणत कुटुम्ब पाल रघुराई।'** प्रभु शरणागत के परिवार का पालन करते हैं।

१९.–ईश्वर का चिंतन करते–करते अम्बरीष जी ने राज्य रक्षा चिन्तन को छोड़ दिया। तब राज्य के रक्षा की चिंता स्वयं प्रभु को हुई। चक्रसुदर्शन भगवान सारे राज्य का रक्षण करते थे। जैसा रक्षण अम्बरीष नहीं कर सकते थे। समय पर वर्षा आदि द्वारा प्रजा का कल्याण चक्र भगवान करते थे। सबको अपने धर्म पथ पर चलने के लिए बाध्य कर देते थे अत: प्रजा में भी धर्म का प्रचार हो गया। तात्पर्य यह कि भगवच्चिन्तन से भक्त के संसारी कार्य भी सिद्ध हो जाते हैं, परिवार का कल्याण भी हो जाता है। जिस–जिस में आसक्ति होती है उसे भक्त, भगवान को अर्पण करता है। धन, शरीर, परिवार को प्रभु को, प्रभु के लिए समर्पित करने वाले भक्त धन्यवाद के योग्य हैं।

२०.–प्रभु की शरण में जाकर उनका बनकर उन्हें अपना मानकर शरणागत के समान आचरण करता हुआ जब कीर्तन, श्रवण, सत्संग करता है तो प्रेम का हृदय में प्राकट्य होता है। प्रेम पुष्ट होता है। बिना शरणागति के श्रवण–कीर्तन आदि से सात्विकता से समय बीतता है पर प्रेम का हृदय में अविर्भाव नहीं होता है। माधुर्य प्रेम के दृढ़ होने पर फिर ऐश्वर्य का बोध नहीं रहता है। जैसे सम्राट और महारानी के सामने शिशु उसे राजा रानी का सा आदर नहीं देता है। उसी प्रकार गोपियों के माधुर्य प्रेम में ऐश्वर्य का स्थान नहीं रहता है। जैसे युद्धकाल में विभीषण जी में अति प्रेम अर्थात् माधुर्य का उदय हुआ तो उसी से यह भ्रम हो गया कि इनके पास रथ–कवच पादत्राण नही है फिर ये रावण को कैसे जीतेंगे? ईश्वर का पराक्रम अपार है बिना रथ कवच पादत्राण के भी वह विश्व विजय कर सकता है। माधुर्य प्रेम से प्रभु अपने भक्त के अति निकट आ जाते हैं। ऐश्वर्य प्रधान प्रेम से प्रभु उतना प्रसन्न नहीं होते हैं जितना कि माधुर्य प्रेम से। ईश्वर को ऐश्वर्य छोड़ नहीं सकता। माधुर्य–ऐश्वर्य प्रभु में नित्य रहते हैं। जैसा भी प्रेम प्रभु देते हैं वही मिलता है। स्वयं जैसे प्रेम का आस्वादन प्रभु करना चाहते हैं वैसा प्रेम भक्त में प्रकट करके स्वयं आनन्दित होते हैं भक्त को आनन्द देते हैं।

२१.—अपने मन में प्रेम जागृत हो इसके लिए भगवत् कृपा ही कारण है। प्रेम को बढ़ाने के लिए विरह और मिलन जरुरी है। ये भी प्रभु कृपा से ही प्राप्त होते हैं। कृपा प्राप्ति के लिए भगवान की शरणागति ही मुख्य है। शरणागति के लिए मन से संसार का, संसार के सुखों का, त्याग जरुरी है। संसार में ममता न रखकर परिवार पालन, वर्णाश्रम धर्म का पालन आदि कर्म करना चाहिए। यह भी प्रभु की प्रसन्नता के लिए।

२२.—श्रीमद्भागवत के अन्त में प्रार्थना की गई कि–जहाँ भी कहीं जन्म हो प्रत्येक जन्म में हे प्रभो! आपके श्रीचरणकमलों में जिस प्रकार भक्ति हो, वैसा ही आप कीजिए। देवों के देव आप ही मेरे स्वामी–रक्षक हैं। अपने स्वामी आपको छोड़कर अन्यत्र कहाँ जाऊँ। किसे पुकारें। कौन मेरी सुनेगा अत: आप ही से बार–बार प्रार्थना है जैसा कुछ उचित समझें वैसा करें। ''श्रीकृष्ण: शरणं मम। श्रीराम: शरणं मम। श्रीहरि: शरणं मम।।''

२३.—भगवान की प्रतिज्ञा है कि जो कोई शरण में आकर कहेगा कि मैं तुम्हारा हूँ मैं उसे निर्भय कर देता हूँ। सर्व प्रथम विश्वामित्र राक्षसों के भय से यज्ञ नहीं कर पाते थे, उन्हें श्रीराम ने निर्भय करते हुए कहा–**'निर्भय यज्ञ करहु तुम जाई।'** अपने मित्रों को अयोध्या से विदा करते समय प्रभु ने कहा अपने–अपने घरों को जाओ। **'सुमिरेहु मोहि डरपहु जनि काहू।'** मेरा स्मरण करना किसी से डरना नहीं। गीध संपाती से सब वानर डर गए तो संपाती ने अभय दान दिया। **'तिनहि अभय करि पूछेसि जाई।'** वानरों ने राम कथा सुनाई। निर्भय होना चाहिए प्रभु के भरोसे।

२४.—अशोक वन में माता का दर्शन करके हनुमान जी को भूख लग आई। माता जी ने कहा कि बड़े–बड़े निसाचर बाग की रखवाली कर रहे हैं। श्रीहनुमान जी ने कहा कि **'तिन कर भय माता मोहि नाहीं। जो तुम सुख मानहु मन माहीं।।'** हनुमान जी निर्भय हैं राक्षसों से नहीं डरते हैं। शरणागत भक्त हैं। गुरु, ब्राह्मण, भगवान, धर्म, माता–पिता से डरना चाहिए दूसरों से नहीं।

२५.—आचार्य श्रीरामानुज की प्रार्थना है कि हे नाथ! आप कृपापूर्वक मुझे अपना दास बना लीजिए। मुझे अपनी प्रीतियुक्त दासता किंकरता प्रदान कर अनुगृहीत करें। आपकी सेवा का मिलना ही श्रेष्ठ गति है।

२६.—श्रीवल्लभाचार्य जी आत्म निवेदन करने वालों के संबंध में कहते हैं कि जिन्होंने भगवान को अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है उन्हें कभी भी किसी प्रकार की चिन्ता की अपेक्षा नही, कृपा प्रदाता वे श्रीहरि शरणापन्न भक्त को संसार सागर के भयंकर संकटों से बचाकर अनिर्वचनीय आनंद प्रदान करते हैं। उक्त आचार्यों के वाक्यों के विचारपूर्वक पठन-मनन से प्रभु में आस्था बढ़ती है। स्तुति करने के लिए भक्तों की वाणी उत्तम है क्योंकि आचार्यों भक्तों की वाणी से भगवान विशेष प्रेम करते हैं। उसे सुनकर स्तुति करने वालों पर कृपा विशेष करते हैं। भक्तों के, भगवान के, हम लोगों के ऊपर अनन्त उपकार हैं। उन सब उपकारों को समझ कर हमको कृतज्ञ होना चाहिए। भगवान की सेवा करनी चाहिए। प्रेम करना चाहिए।

२७.—हम लोग भगवान की कृपा प्रेरणा के अधीन हैं इसी से प्रसन्न हैं। मन में कोई विषाद या किसी वस्तु की कमी का अनुभव नही होता है। **'संत भगवन्त अन्तर निरन्तर नहीं।'** यही समझ में आ जाय, इसके अनुसार शरीर की चर्या बन जाय प्रभु ऐसी कृपा करें।

२८.—राधाकृष्ण की प्रसन्नता ही सबकी कुशल है। सर्वेश्वरी राधा जैसे चाहें उस प्रकार से हमारा मंगल कल्याण करें। जैसे चाहें वैसे हमको अपनी सेवा में रक्खें। हमारे मन में संत भगवन्त की सेवा की सद्भावना पुष्ट हो। निरंतर आपका चिंतन करके जो आपकी सेवा में तल्लीन हैं वे संत ही हमारे ऊपर सदा कृपा करते रहें। उनका वरद हस्त हमारे सिर पर सर्वदा बना रहे। हमारा मन उनके चरणों में लीन रहे। वाणी से हम उनके गुणों का गान करते रहें। शरीर से उनकी सेवा करते रहें। **'सर्वे भवन्तु सुखिनः।'** सभी सुखी हों।

२९.—सभी ग्रंथों में वेद सर्वोपरि हैं। उपनिषद् वेदों का सार है और उपनिषदों का सार गीता है। गीता और वाल्मीकि रामायण का सार भगवत् शरणागति है। इसलिए जैसे भी हो मन वाणी से यही सोचना चाहिए, यही कहना चाहिए कि मैं भगवान की शरण में हूँ। बार-बार कहने से मन पर असर पड़ेगा। विद्वान बुद्धिमान की शरणागति एक बार कहने से हो जाती है पर हम सरीखे लोगों को बार-बार इसलिए कहना चाहिए कि हम दृढ़ प्रतिज्ञा वाले नहीं हैं। भूल जाने का हमारा स्वभाव है। अतः **'श्रीकृष्णः शरणं मम। श्रीरामः शरणं मम।'** बार-बार प्रणामादि के समय अवश्य कहना चाहिए।

३०.—भगवान के श्रीमुख के वाक्य **'सकृदेव' 'सर्वधर्मान्'** जो वाल्मीकि-गीताजी के हैं इन वाक्यों के कहने से मन में शांति और संतोष होगा क्योंकि भगवान झूठ नही बोलते हैं। वे अपनी प्रतिज्ञा का त्याग भी नहीं कर सकते हैं। हम में दोष हैं परन्तु भगवान दोषयुक्त जीव को भी अपनाते हैं। शरणागति के बाद भी सुग्रीवजी राजकोष, पुत्र, स्त्री आदि को प्राप्तकर रामजी के काम को भूल गये। रामजी को कहना पड़ा **'सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी।'** समझा बुझा कर प्रभु ने अपनाया। शरण के साथ एक सन्मुख शब्द और आता है जैसे-**'तेउ सुनि सरन सामुहे आए।'** शरणागत से भूल भी हो सकती है परन्तु जो सन्मुख है उससे भूल नहीं होगी क्योंकि वह प्रभु के सामने है, प्रभु उसके सामने हैं, हर समय प्रभु के मुख कमल को देखकर वह प्रेम विभोर रहता है। सभी स्त्रोतों का पाठ, दुर्गासप्तशती आदि का पाठ करके श्रीकृष्ण के चरणों में प्रेम हो ऐसा वरदान माँगता है।

३१.—भक्त और पतिव्रता स्त्री का एक सा धर्म है। केवल पति ही पति स्थान पर रहता है, शेष पति के मित्र परिवारी आदि सभी का आदर करती है। पिता-माता, गुरुजन, संत, ब्राह्मण, तुलसी, अश्वत्थ ये सब श्रीकृष्ण के प्रतिनिधि हैं। इनका प्रसन्न होना श्रीकृष्ण का प्रसन्न होना है।

३२.—**'श्रीकृष्णः शरणं मम'** इस मंत्र का बार-बार उच्चारण एवं जप कीजिए। जप में मन को लगाने से मन का संकट दूर होगा।

३३.—प्रभु के शरणागत भक्त को कोई बाधा नहीं होती है। वह संसार के कष्टों को कष्ट नहीं मानता है।

कह हनुमंत विपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥

जब भगवान के स्मरण-भजन में बाधा होती है तब भक्त संकट का अनुभव करता है। संसार के संकट के समय तो भक्त का स्मरण-भजन और अधिक होता है। इसलिए कुन्ती माता ने विपत्ति का वरदान माँगा।

३४.—संसार की आशा ही बड़ा दुःख है। संसार से निराशा में बड़ा सुख है। संसार आशा को पूर्ण नहीं कर सकता है। अतः संसार से निराश होकर भगवान की आशा करनी चाहिए। भगवान से सब आशाएँ पूर्ण हो जाती हैं अतः 'आशा एक रामजी की और आशा छोड़ दे।'

३५.–प्रभु श्रीराम का आश्रय अभयदान देने वाला है। **'जिमि हरि शरण न एकउ बाधा।'**

३६.–शरणागत के सभी कर्म भगवान को अर्पण हो जाते हैं। शुभ कर्मोंको अर्पण करके यदि कदाचित् कोई अशुभ कर्म बन गया हो तो उसके लिए क्षमा याचना करनी चाहिए। अब तक मुझसे जो बिगड़ी है उसे क्षमा करो और ऐसी कृपा करो कि मुझसे अब न बिगड़े। प्रतिकूल कर्म मेरे मन, वाणी और शरीर से न बनें। मैं आपके आश्रित हूँ। आप मेरे सर्वस्व हैं।

जो मोह, ममता, वासनाओं से विचलित नहीं होता है वह सच्चा शरणागत भक्त है। जहाँ तक अपना सामर्थ्य है वहाँ तक अपने मन-बुद्धि को असत् से हटाकर प्रभु की ओर लगावें। जो हमारे किये नहीं होता है उसके लिए प्रभु से प्रार्थना करें।

'कियो गोपाल को सब होय।'

अपना पुरुषार्थ मानने वाला गिर पड़ता है। जो कुछ शुभ है उसे प्रभु कृपा से हुआ समझो। अशुभ हुआ है उसको अपनी भूल मानो।

३७.–शरणागत भक्त संसारी कामनाओं को पूर्ण करने का हठ नहीं करता है। प्रेम-भक्ति प्रदान हो यही कामना करनी चाहिए। इसके प्राप्त होने पर कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता है। रत्नों के मिलने पर सोना चाँदी दुर्लभ नहीं रहते हैं। जिन्होंने कुछ नहीं माँगा उनको सब कुछ मिला जिन्होंने माँगा उनको कुछ नहीं मिला। जो मिला वह नष्ट हो गया। सहनशीलता जिसमें है वही संत है। सहनशील किसी पर कुपित नहीं होता। दु:ख पाकर भी किसी को दोषी नहीं ठहराता है। अपने दु:ख का कारण मैं हूँ ऐसा मान लेने पर मन शांत होता है। शांत मन में प्रभु की छबि दिखाई देती है।

३८.–शरणागत भक्त भगवान के भरोसे रहते हैं जैसे प्रभु रक्खें उसी तरह रहने को तैयार रहते हैं। प्रभु का संसार है, प्रभु की सृष्टि है। उसकी चिंता प्रभु को ही है। अपना कार्य प्रभु का चिंतन करना है। वह भी प्रभु की कृपा से होगा। अवश्य होगा।

३९.–ईश्वर की कृपामयी शक्ति जीवों को सब प्रकार के क्लेशों से बचाती है। प्रभु की शरण में जाना ही भक्तियोग का श्रेष्ठ साधन है। एक मत यह है कि अपने को प्रभु के समर्पण करके पूर्णरूपेण वर्णाश्रमोचित कर्मानुष्ठान का त्याग कर देना चाहिए। स्वयं

को प्रभु चरणों में जो समर्पित कर देता है उसकी रक्षा स्वयं भगवान ही करते हैं। इसमें दृष्टांत बिल्ली के बच्चे का दिया जाता है। अपनी माता के सामने वह निश्चेष्ट रहता है। बिल्ली उसे उठाकर ले जाती है। क्रियाहीन शरणागत शावक की रक्षा जैसे मार्जारी करती है उसी प्रकार प्रभु भी क्रियाहीन शरणागत भक्तों की रक्षा करते हैं।

इसके विपरीत दूसरा मत यह है कि शरणागत को सक्रिय रहना चाहिए। बिना कुछ किए प्राणी रह भी नहीं सकता है। अत: कपि शावक की तरह अपने को भगवान से संयुक्त रखना चाहिए। कपि शावक यानी बन्दर का बच्चा अपनी माता के पेट में चिपका रहता है अपने हाथों तथा पैरों से माता को पकड़े रहता है तभी माता उसकी रक्षा कर पाती है। इस मत के अनुसार कर्मानुष्ठान करना चाहिए।

ये दोनों न्याय मार्जार न्याय तथा मर्कट न्याय से प्रसिद्ध हैं। दोनों मतों का सिद्धान्त यही है कि भक्तिभाव से भगवत् शरणागत होना चाहिए और प्रभु-प्रीत्यर्थ प्रभु समर्पण करना चाहिए।

मार्जारी उन्हीं दाँतों से चूहे को पकड़ती है तो वह झट मर जाता है उन्हीं दाँतों से बच्चे को पकड़ती है तो बच्चा सुखी होता है। ऐसे ही प्रभु दुष्टों का दमन तथा भक्तों का रक्षण करते हैं। 'शिव: शं तनोतु।'

४०.-**'एकोऽपि कृष्णस्य कृत: प्रणामो।'** श्रीकृष्ण को किया गया एक प्रणाम दस अश्वमेध की अपेक्षा श्रेष्ठ है क्योंकि दस अश्वमेध यज्ञ का कर्ता पुन: भवाटवी में भटकता है और कृष्ण को प्रणाम करने वाला पुन: संसार में नहीं आता है। सौ अश्वमेध कर्ता नहुष इन्द्र सर्प योनि को प्राप्त हुए।

कृष्ण प्रणाम का अर्थ है कृष्ण को आत्म समर्पण।

४१.-समर्पित जीव चिन्ता नहीं करता है उसे जैसे प्रभु रक्खें उसी प्रकार वह रहना चाहता है। अपने आप में संतुष्ट रहने वाले, जितना प्रभु ने धन-जन दिया है अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए उसमें पूर्ण संतुष्ट रहने वाले धन्य हैं।

४२.-श्रीहरिवंश जी हिताचार्य के मत से नवग्रह अनुकूल होकर भक्त को कोई लाभ नहीं पहुँचा सकते और प्रतिकूल होकर कुछ भी हानि नहीं कर सकते। श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त को इनकी चिंता नहीं करनी चाहिए। सामान्य लोगों को जब कुछ कष्ट का अनुभव होता है तब वे घबड़ाकर कृपा का अनुभव नहीं कर पाते हैं। किसी ज्योतिषी

के पास जाते हैं तो वह ग्रहों की प्रतिकूलता को कष्ट का कारण बताता है। निवारण का उपाय भी बताता है।

४३.—साधक शरणागत को इस संसार में इस प्रकार रहना चाहिए जैसे पाणिग्रहण के बाद कन्या पिता के घर रहती है। पिता के घर रहकर सारे काम काज करती है पर वह मन में पति के घर को घर मानकर रहती है। यहाँ के बाद वह अपने घर जाना है, ऐसा दृढ़ चिंतन करती है। इसी प्रकार इस जगत में रहना, सब कुछ करना चाहिए पर यह मन में मानना चाहिए कि यह संसार मेरा अपना घर नहीं है यहाँ थोड़े दिन रहकर परमपति परमात्मा के पास जाना है। वही अपने निज हैं इस विश्वास संबंध से जीव ईश्वर का बन जाता है प्रभु उसे अपना लेते हैं।

४४.—भगवन्नाम स्मरण एवं शरणागति ही सभी संकटों से बचने के लिए श्रेष्ठतम साधन है। धैर्य धारण करना ही श्रेष्ठ है। दिन रात की तरह आने जाने वाले दु:ख एवं सुख हैं। सर्वदा कोई सुखी या दु:खी नहीं रहता है। स्वयं भगवान अवतार काल में संकट सहकर अपने भक्तों को शिक्षा देते हैं।

४५.—सभी प्रणियों में परमात्मा है इसलिए इनके प्रति दया, क्षमामय व्यवहार करना चाहिए। किसी प्राणी का निरादर करना ईश्वर का निरादर करना हैं। जब ऐसा भाव आ जायगा तब ईश्वर की कृपा का अनुभव होगा। अपने को सबसे छोटा मानो, अहंकार मत करो। धन का होना अच्छा है पर धन का अहंकार अच्छा नहीं है। दीनों पर ही भगवान की दया होती है। अपने दोषों को देखो और दूसरे के गुणों को देखो। भगवान के भरोसे रहो। हानि, लाभ, जीवन, मरण सब कुछ ईश्वर की कृपा से भाग्य से होता है। दिन रात की तरह सुख दु:ख आने जाने वाले हैं अत: निश्‍िंचत रहो। जय श्री राधे।

४६.—वे दीन हीन निर्धन भी धन्य हैं जो **'हरि: शरणं हरि: शरणं'** जपते ही रहते हैं। सनकादिकों ने इस मंत्र का आश्रय लिया है अत: उन्हें शोक, मोह, जरा व्याधि, मृत्यु दु:खप्रद नहीं हैं। इसी मंत्र के प्रभाव से वे पाँच वर्ष के बालक के समान बने रहते हैं जबकि वे बहुकालीन हैं, पूर्वजों के पूर्वज हैं। शरणागत निर्भय रहते हैं वे किसी को भय नहीं देते हैं इसलिए वे किसी से भयभीत नहीं होते हैं। लोगों को भयभीत न करना और दूसरों के व्यवहार से स्वयं भयभीत न होना यही भक्त का लक्षण है। जय श्रीराधे।

४७.–संसार का कोई दु:ख आता है तो उसे धैर्यपूर्वक सहन करने की आवश्यकता है। एक न एक दिन दु:ख का अन्त होगा। भगवत् इच्छा से सारी प्रकृति अनुकूल हो जाती है। भजनानंदी के भजन में बाधा आती है तो दृढ़ता से प्रभु की शरण ग्रहण करता है। प्रभु का दिया दु:ख है। उसका आदर करना चाहिए। जिस तरह प्रभु रखना चाहें उसी तरह रहने के लिए हमको तैयार रहना चाहिए। पाण्डवों के, द्रोपदी के दु:ख को देखो, वैसा दु:ख हम पर नहीं है। रामजी के ऊपर, राजा नल के ऊपर कैसा दु:ख पड़ा उसे देखो और भगवान की कृपा का अनुभव करो। प्रभु सब संकट दूर करेंगे।

४८.–प्राणी तरह तरह के मनोरथ करता है पर होता वही है जो श्री प्रभु की इच्छा होती है। मनोरथ प्रभु को समर्पित कर देना चाहिए। जैसी आपकी इच्छा हो वही कीजिये।

'जेहि विधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुणा सागर कीजै सोई॥'

स्वामी परम दयामय हैं उनके सामने हठ नहीं करना चाहिए। स्वामी को संकोच में डालकर जो सेवक अपना हित चाहता है उसकी बुद्धि उत्तम नहीं है।

४९.–प्रभो! आप मेरी भूल चूक को क्षमा करो। हम जीव हैं, अज्ञानी हैं। आप सबके स्वामी हैं। हम आपके दास है। आप मेरे क्रोध, मोह, अहंकार को दूर कर दो। जिससे हम आपकी भक्ति करके आपको प्रसन्न करें। जय श्रीराम।

५०.–प्रभु अत्यंत दयामय हैं। जीवों पर उनका अपार प्रेम है। शरणागत के ऊपर तो अति प्रसन्न रहते हैं, उसका कभी त्याग नहीं कर सकते हैं। आप मन में जो इच्छा करेंगे प्रभु उसे अवश्य पूर्ण करेंगे। अपनी कमी को दूर करने के लिए प्रभु से प्रार्थना करना ही उत्तम साधन है। जीव अनेक जन्मों से संसारी सुखों को भोग रहा है अत: उसके मन में अनेक वासनाएं रहती हैं। प्रभु चरणों के ध्यान से उनमें प्रेम होने से सभी वासनाएं दूर हो जाती हैं। मैं शरण में हूँ यह कहते रहना चाहिए। **'श्रीरामः शरणं मम'** इसे बार बार कहते रहना चाहिए। संसारी घर के कामों को करते समय भी इसका उच्चारण करते रहना चाहिए। दण्डवत् प्रणाम करते समय भी इसका उच्चारण करते रहना चाहिए। मन ही मन प्रभु नाम का उच्चारण मन को पवित्र करेगा। मैं भगवान की

शरण में हूँ। भगवान मेरी रक्षा करें। मैं भगवान का दास हूँ भगवान मेरे स्वामी हैं सबके स्वामी हैं। भगवान के संबंध से सभी अपने हैं। वैष्णव स्मरण, दर्शन, सेवा की मन में इच्छा रक्खें।

५१.–**'ईश रजाय शीश सबही के। उतपति थिति लय विषहु अमीं के॥'** (रामायण)

उत्पति, थिति और लय, विष, अमृत सबके ऊपर ईश्वर की आज्ञा चलती है। आज्ञा न हो तो विष मार न सकेगा और अमृत जीवित नहीं कर सकेगा। यदि ऐसी बात है तो प्रभु के सेवक को हर हालत में प्रसन्न रहना चाहिए। प्रभु जो कुछ भी करेंगे हमारा उसी में कल्याण है। हमारा कल्याण किसमें है हमें मालूम नहीं हैं।

५२.–दयामयी किशोरीजी ने, प्यारे श्यामसुंदर ने हमको क्या नहीं दिया और क्या नहीं दे रहे हैं अर्थात् जो कुछ चाहिए था वह सब दिया है और अब भी दे रहे हैं। हम उनके इन उपकारों का बदला नहीं चुका सकते। बदला चुकाने के लिए मेरे पास कुछ नहीं है। हम कृतज्ञ रहें, उनके उपकारों को मानें। वस्तुतः तन, मन, धन, जन सब ठाकुर ठकुरानी के हैं। हम उनको अपना मानते हैं तो अपने को, अपनी वस्तुओं को ठाकुरजी को अर्पण करें और प्रार्थना करें कि प्रभो! आप अपनाइये। अपनी वस्तु वह है जो सदा अपने पास रहे। घर, तन, जन आदि अपने पास सर्वदा नहीं रह सकते हैं अतः अपने नहीं हैं। ये सब आपके हैं मेरे पास धरोहर (अमानत) है। अब यदि हम इन सबका सदुपयोग करके आपकी आज्ञा का पालन करते हैं तो आपकी कृपा की आशा कर सकते हैं। यदि प्रभु की सम्पत्ति का दुरुपयोग करते हैं तो उनका अपमान होगा। तब उनके कोप भाजन बनेंगे।

५३.–ईश्वर दाताओं का दाता है अतः किसी याचना को वे अस्वीकार नहीं करते हैं। हृदय की पुकार पर याचक भक्त के मनोरथ प्रभु पूर्ण करते हैं। जैसे कोई अज्ञानी बालक पिता से घोर विषपान याचना करे तो दयालु पिता उस बालक की इच्छा को कभी पूर्ण नही करेगा। बालक कष्ट सहे, रोदन करे पर पिता अपने बालक का अनहित कभी नहीं कर सकता। इसी प्रकार प्रभु अपने भक्त की ऐसी इच्छा को कभी पूर्ण नहीं करते है कि जिससे उसका अनहित हो जाय।

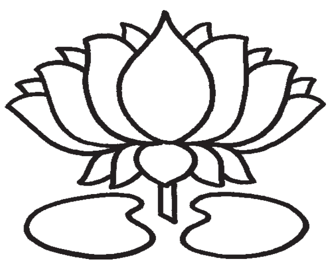
५४.–सर्वेश्वर सर्वहितकारी हैं और सबके कल्याण की इच्छा रखते हैं। हम सब उनकी शरण में है। श्रीकृष्णः शरणं मम।

५५.–गीता में संसार को दु:खालय अशाश्वत कहा गया है। दु:खों का स्थान है और एक सा रहने वाला नहीं है, बदलता ही रहता है। संसार से अलग हटकर संसार को समझा जा सकता है। भगवान के निकट रहकर उनमें मन लगाकर भगवान को समझा जा सकता है। कष्ट आता है प्रभु की याद दिलाने के लिए। जो भी कष्ट हमको मिल रहा है वह मेरे कर्मों के फलस्वरूप ही मिल रहा है दूसरा कोई हमको सुख दु:ख देने वाला नहीं है। अपना मन संसार में आसक्त होता है तो दुखद होता है, संसार से विरक्त हो जाय तो मन सुखों का दाता है।

५६.–भगवत् शरणागति ही सब आपत्तियों से बचाने वाली है अत: सर्वदा अनुसन्धान करो कि मैं श्रीराम की शरण में हूँ। वही मेरे रक्षक हैं। श्रीराम जी के अनुकूल कर्मों का अनुष्ठान करें। प्रतिकूलता का त्याग हो जाय तब मन को शान्त मानिये और त्याग का लाभ उठाइये। प्रभु रक्षा करेंगे।

इति शुभम्

❋



श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्री हनुमते नमः | श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः

❋ संत–भक्त महिमा एवं सत्संग ❋

१.–संत के मिलने पर संत ही महान सुख प्राप्त करता है। साधारण संसारी संत से मिलकर भी दिव्य सुख नहीं पाता है। संत की कृपा दृष्टि हो जाय तो असन्त भी सन्त बन सकता है। संसार सुख और दुःखमय है यह मानकर दुःख सुख को नगण्य करके प्रसन्न रहना चाहिए। प्रभु कृपा का अनुभव करना चाहिए। जै राधे।

२.–नित्य संत के पास सत्संग सभा में उपस्थित रहने से भक्त–भगवान की चर्चा सुनते–सुनते धीरे–धीरे मन का मैल दूर होगा। अपने जीवन में कोई सुधार प्रत्यक्ष न भी दिखाई पड़े तो भी सत्संग को व्यर्थ नहीं समझना चाहिए। अनजाने हमारा अज्ञान कम हो रहा है। आगे चल कर अनुभव होगा। सत्संग में रहते हैं तो उतनी देर कुसंग से बचते हैं। यह सबसे बड़ा लाभ है। सज्जन के साथ रहना, उससे प्रभु कथा का श्रवण करना, सुने हुए को याद रखना, उसका अभ्यास करके उसे अपने जीवन में उतारना चाहिए। तब मन बुद्धि पर असर पड़ेगा।

३.–हम अपने हाथों में कोई डंड़ा हथियार रक्खें तो कभी न कभी उसे चलाने की इच्छा होगी, हथियार का कुसंग किसी को कष्ट देने वाला हो जायगा। यदि हम हाथ में माला रक्खें तो उससे जप ही होगा उससे हम किसी को चोट नहीं पहुँचा सकेंगे। यह माला का सत्संग हुआ। जैसे गाय बछड़े के पीछे–पीछे चलती है, उसी तरह सत्संगी नाम जापक प्रेमी के पीछे–पीछे भगवान चलते हैं। स्वयं भगवान उसको खोजते हैं। आप सत्संग को खोजेंगे तो ईश्वर आपको खोजेगा। जैसे अस्पताल में दाखिल रोगी डाक्टर के अधीन होता है, उसकी चिंता डाक्टर करता है, उसी तरह अपने को सत्संग में समर्पित कर देने से हमारी बिगड़ी बनाने की जिम्मेदारी भगवान के ऊपर पहुँच जाती है।

४.—**जड़ता जाड़ विषम उर लगा। गयउ न मज्जन पाव अभागा॥** (मानस-बाल० ३८/२)

सत्संग रूपी मानसरोवर में स्नान करने के लिए साधक जाता है पर जड़ता रूपी जाड़ा लगता है। वहाँ पहुँचकर भी स्नान नहीं कर पाता है। मानसरोवर में प्राकृत जाड़ा स्थूल शरीर में लगता है अत: स्नान नहीं हो पाता है। रामचरितमानस में स्नान करने जाता है अर्थात् कथा श्रवण करने के लिए सभा में जाता है। जड़ता=मूर्खता के कारण मन को स्थिर नहीं रख पाता है। विषय को समझ नहीं पाता है। अत: मन कथा रस में लीन नहीं होता है। आनन्द नहीं आता है। मन लीन हो तो गोता लगे। इसका उपाय यही है कि जो कोई इस रामचरित मानस सरोवर में स्नान करना चाहे वह निरन्तर सत्संग करे। सत्संग में मन लगावे।

५.—तबहि होइ सब संसय भंगा। जब बहुकाल करिअ सत्संगा॥ (मानस-उत्तर ६०/४)

अधिक दिनों तक सत्संग करते-करते मन पर मोह के जो अनेक पर्त पड़े हैं वे धीरे धीरे छूटेंगे। मन निर्मल होगा तो श्रवण में रस का आस्वादन होगा। मन राम रूप लीला में आसक्त हो जायगा। कथा में आसक्त हो जायगा। कथा में आसक्ति हो जाना ही प्रभु की प्राप्ति का साधन है। कथा में प्रेम होगा तो प्रभु में प्रेम होगा। कथा मिल गई तो प्रभु मिल गए, ऐसा अनुभव होगा। प्राकृत जाड़ा अग्नि से दूर होता है पर जड़ता रूपी जाड़ा सत्संग से दूर होगा। अग्नि से दूर हुआ जाड़ा, अग्नि के न रहने पर फिर लगेगा पर सत्संग से दूर हुआ जाड़ा जड़ता फिर सदा के लिए दूर हो जायगा। अग्नि के सेवन से साधु सेवन की उपमा दी गई।

६.—अग्नि सेवन के तीन लाभ हैं :-

१. शीत दूर हो जाना। अग्नि से मूर्खता रूपी जाड़ा दूर न होगा। साधु सेवन से वह दूर होगा।

२. भय दूर होना। अग्नि के पास रहने से सिंह, सर्प, रीछ आदि जानवर और दुष्ट प्रेत आदि पास नहीं आते हैं। प्राकृत भय प्राकृत अग्नि से दूर होगा पर भवरोग भय, नरक भय तो सत्संग से ही दूर होगा।

३. अग्नि से अन्धकार के दूर होने पर प्रकाश होता है। कहाँ क्या रक्खा है यह पता चल जाता है। कमरे का प्राकृत अंधकार दूर होगा तो कमरे की प्राकृत वस्तुएँ दिखाई पडेंगी। सत्संग से हृदय का अज्ञान अन्धकार दूर होगा तो भगवान के दिव्य रूप

के दर्शन होंगे। सत् असत् का ज्ञान होगा इसलिए अग्नि की अपेक्षा साधु जनों का सेवन सत्संग श्रेष्ठ है। सेवन का तात्पर्य अन्न वस्त्र आदि देना मात्र नहीं है। उनको प्रसन्न करके भगवत् संबंधी ज्ञान को प्राप्त कर भगवान को प्राप्त करना। तभी तो साधु सेवा की महिमा भक्त समाज में प्रसिद्ध है। प्रेम से सेवा ही भक्त तथा भगवान को प्रसन्न करती है। प्रभु की कृपा से आप सभी का मन सत्संग में लगे, सत्संग की प्राप्ति हो।

७.–श्रीमार्कण्डेय जी ने माया को देखने का वरदान माँगा तो भगवान ने माया का अनुभव कराया। उससे व्यथित हुए, अक्षयवट के पत्रपुट पर दर्शन हुआ। भगवान बाल मुकुंद ने दर्शन दिया। अपने ही करारविंद से अपने पदारविन्द को अपने मुख में डालकर आस्वादन करने वाले प्रभु का दर्शन कर प्रसन्न हो गये। भगवान ने मार्कण्डेय जी को इतना प्यार किया कि अपने भीतर ले लिया। भगवान के उदर में पहुँचने पर मार्कण्डेय जी अति आनन्दित हुये। भक्त को अपने हृदय में रखकर भगवान को बड़ा आनन्द आया। भक्त भगवान दोनों आनन्दित हुए। वहीं अपना आश्रम मिला, उसमें रहकर बहुत कालतक भजन साधन करते रहे। पुनः भगवान ने बाहर कर दिया तो भगवान की शोभा देखकर आनन्दित हुए। प्रभु ने अपनी माया आकृष्ट कर ली तब अपने आश्रम में अपने आसन पर अपने को बैठा पाया। माया के दर्शन में भगवान का दर्शन हो गया। यह एक क्षण में हुआ। अग्नि में जो आहुति डाली थी वह जल नहीं पाई थी।

भगवान शंकर ने दर्शन दिया सत्संग दिया पुराण की रचना करने का वरदान दिया और कहा जलमय, धातुमय, पाषाणमय तीर्थ ही तीर्थ नहीं हैं सच्चे तीर्थ आप सरीखे सन्त हैं जो दर्शन और स्मरण मात्र से पवित्र करते हैं। (विशेष भागवत में देखिये।) सच्चे तीर्थ सन्त हैं, सत्संग जंगम तीर्थराज का स्नान है।

८.–संत में और पारस में बड़ा अन्तर है। पारस लोहे को सोना बना देता है पर लोहे को पारस नहीं बना सकता है पर संत किसी पापी को अपने समान सन्त बना सकता है। कवियों ने संत के स्वभाव को नवनीत के समान कोमल कहा है पर वे ठीक नहीं कह सके, क्योंकि मक्खन में जब ताप लगता है तब वह पिघलता है, दूसरे में ताप लगने से वह नहीं पिघलता है। सन्त अपने दुःख से नहीं दूसरे के दुःख से द्रवीभूत हो जाते हैं।

९.–एक बहेलिया हिरन को मारने के लिए बाण चलाने वाला था उसी समय श्रीनारद जी पहुँच गये। व्याध कुण्ठित हो गया और पूछा कि आप रास्ता छोड़कर इधर क्यों आए। आपके आने से हिरन भाग गया। नारद जी ने कहा तुम्हारे द्वारा मारे गये हिरन अधमरे पड़े हैं, तड़प रहे हैं तुम उन्हें तड़पा-तड़पा कर क्यों मारते हो? ब्याध ने कहा कि उनके कष्ट को देखकर मुझे प्रसन्नता होती है। नारद जी ने कहा कि-ध्यान रखो कि सभी पशु तुम्हें तड़पा-तड़पा कर मारेंगे। एक-एक पशु का बदला चुकाने के लिए एक-एक जन्म लेना होगा। तुम्हें तुम्हारी हत्याओं का फल भोगने के लिए तैयार रहना चाहिए। नारद जी की कृपा से उसको ज्ञान हो गया। उसने श्रीनारद जी के चरणों में प्रणाम किया और अपने उद्धार का उपाय पूछा। श्रीनारद जी के दर्शन मात्र से उसका हृदय शुद्ध हो गया। नारदजी ने कहा-धनुष तोड़कर फेंक दो। घर जाकर सारा सामान गरीबों को, ब्राह्मणों को दान कर दो। घर छोड़ वन में रहो। तुलसी का नित्य पूजन किया करो। केवल भजन मात्र का संग्रह करो। कृष्ण-कृष्ण जपते रहो। नारद जी के आदेश से वह नाम जपने लगा। कुछ दिनों के बाद श्रीनारद जी आदि ऋषि आए। वह प्रणाम और स्वागत के लिए चला पर धरती पर चींटियाँ थीं बचा-बचाकर आया। चींटियों को हटाकर दण्डवत् प्रणाम किया। नारद जी के आशीर्वाद से पापों से छूटकर वैकुण्ठ को गया। नारद जी ने कृपा करी उसका उद्धार किया। जय जय श्रीराधारानी।

१०.–जब भगवत् स्मरण को छोड़कर संसारी चिंतन करने लग जाते हैं वह समय अच्छा नहीं कहा जाता है। उससे भी कष्टप्रद वह समय है जब हमको प्रिय वियोग होता है। संसारी संपर्क का यह कष्ट विवेक के द्वारा त्यागा जा सकता है, परन्तु जब कभी भावुक भक्त से वियोग होता है तो वह भुलाए नहीं भूलता है। उसे याद रखने में भक्ति की साधना है क्योंकि वह संत स्मरण है। संत स्मरण कर्त्तव्य है। **'संत मिलन सम सुख जग नाहीं।'** संत मिलने के समान दूसरा सुख नहीं है और संत वियोग के समान दूसरा दु:ख नहीं है पर इसका सच्चा अनुभव संत हृदय ही करेगा। इस संबंध में रामायण का वाक्य याद आता है। सन्त असन्त दोनों ही दु:खप्रद हैं। भेद यह है कि-

'मिलत एक दारुन दुख देहीं। बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं।।'(मानस-बाल० ४/४)

११.–अपना सौभाग्य यह है कि भक्तमाल के ग्राहक भक्तजन आते हैं तो उनका दर्शन हो जाता है। अनेकों भक्त ऐसे भी हैं जिनसे साक्षात्कार नहीं हुआ है। नाम से परिचित

हैं, वे मिलते हैं तो प्रसन्नता होती है। **'संत मिलन सम सुख जग नाहीं।'** (मानस-उत्तर १२०/१३) सबसे बड़ा सुख संत मिलन है। संत मिलते हैं पर मन में सन्त के प्रति भक्ति का अभाव है इसलिए हम कृतार्थ नहीं होते हैं। जितनी भक्ति संत में होगी उतना ही सुख संत मिलन से होगा। प्रभु कृपा करें तो संत में प्रेम हो, सन्त कृपा करें तो प्रभु श्रीकृष्ण में प्रेम हो। परस्पर अन्योन्याश्रय है। संत श्रीकृष्ण प्रेम के और श्रीकृष्ण संत प्रेम के आधार है। जीवन में कोई भजन आराधन नहीं बना पर श्रीकरपात्री जी, पंडित श्री भक्तमाली जी, मामा जी, श्री मथुरादास जी, पं० श्रीगयाप्रसाद जी, श्रीठाकुरदास जी आदि-आदि संतों के दर्शन हुए, यही सौभाग्य रहा। जीवन जन्म का लाभ मिला, इसी से मन में संतोष है। जय राधे।

१२.—भगवान की पूजा का स्थल तीर्थ के समान होता है। पूजा करने वाले, सत्संग करने वाले, सज्जन संत हैं। उनका दर्शन-स्पर्श उनकी सेवा करने से श्रीकृष्ण प्रसन्न होते हैं। उन वैष्णवों के प्रति सद्भावना बनाए रखना चाहिए। घर के गाँव के वैष्णवों को छोड़कर अन्य की सेवा बाद में करनी चाहिए। पहले गाँव घर के वैष्णवों की सेवा करनी चाहिए।

केवल कण्ठी तिलक देखकर, नामोच्चारण करते देखकर उसमें श्रद्धा करने वालों को ही भक्ति मिली। जिसमें श्रद्धा है वह भक्ति के संग को देखकर प्रसन्न हो जाता है। जिसमें वैष्णवों के प्रति प्रेम नहीं है वह भगवान की ओर अपने मन को नहीं ले जा सकता है।

१३.—सत्संग से प्राणी सज्जन बन जाता है और कुसंग से दुष्ट बन जाता है। सज्जन के साथ रहना, उनसे वार्तालाप करना, उन्हीं से विवाद करना, उन्हीं से मित्रता करनी चाहिए अर्थात् लौकिक व्यवहार भी सज्जन मनुष्यों के साथ ही करना चाहिए। सज्जन के समीप वातावरण शान्त रहता है। किसी प्रकार का भय नहीं रहता है। लोहा पानी पर तैर नहीं सकता है पर यदि उसे एक बड़ी लकड़ी का साथ मिल जाय तो लोहा भी पानी में नहीं डूबेगा। उसी प्रकार संत के साथ साधारण पुरुष भी भवसागर से तर जाता है। सज्जन मनुष्य संसार में रहते हुए भी संसार से अलग रहते हैं। भक्त सबका होता है।

१४.—भक्त की प्रसन्नता अपने में होती है। वह संसार की चीजों से नहीं सत्संग से प्रसन्न होता है। भगवत् कथा से, सेवा से प्रसन्न होता है। स्वाती नक्षत्र के जल की बूँद

केले के संग में पड़कर कपूर बन जाती है वही बूँद सीप में पड़कर मोती बन जाती है, वही बूँद सर्प के मुख में पड़कर विष बन जाती है। इसी तरह नीच के संग पड़कर प्राणी विषयी नीच बन जाता है। मध्यम श्रेणी के संग में कपूर की तरह कीर्तिमान बनकर लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। उत्तम सत्संग में रहकर मनुष्य सच्चा मोती अर्थात् भक्त बन जाता है। मोती का मूल्य घटता नहीं है। भक्त लोक में रहकर सबका भला करता है।

१५.—सत्संग से देवता दैत्य सभी कृतार्थ होते हैं अत: यत्नपूर्वक सत्संग करना चाहिए। भक्तों की वाणियों का पठन-श्रवन भी सत्संग है। भक्त के पास बैठना उससे बोलना भी सत्संग ही है।

१६.—आज इस युग में भी संतों की महिमा है, संतों से भारत भारत है। पशु पक्षियों में भी संत होते हैं। पूर्व जन्म के प्रभाववश उनमें शांति एवं संतोष रहता है। कहीं एक स्थान पर भागवत की कथा आरंभ हुई, एक सर्प आया लोग डरे, पंडित जी ने निर्भय होकर बैठने को कहा। सात दिन तक नित्य चौकी के नीचे बैठकर कथा सुनी, कथा समाप्त हुई साँप मर गया। अनुमान से जाना गया कि वह पूर्व जन्म का संत था, क्रोधावेश में शरीर त्यागने से सर्प योनि मिली पर भजन का प्रभाव था अत: अन्त में सद्‌गति पाई। पंडित जी ने कहा एक बन्दर था वह निडर होकर मेरी गोदी में बैठता, छेड़ने पर भी किसी को काटता नहीं था। गिरिराज तरहटी में उसने शरीर छोड़ा। साँप और बन्दर अपनी मौत मरते नहीं देखे जाते हैं। अन्त में वायुमय शरीर होने से आकाश में उड़ जाते हैं पर दुर्घटना या किसी के द्वारा मारे जाने पर उन साँप-बन्दरों के मृतक शरीर मिलते हैं। वृद्ध होकर मरते नहीं दीखते हैं पर उक्त साँप और बन्दर ने शरीर त्यागा, अत: विलक्षण जीव थे।

१७.— **देव यात्रा मूकयात्रा तीर्थ यात्रा पानी।**
संत यात्रा सफल यात्रा सुनिये अमृत बानी॥

× × × × ×

हरि रीझै मुक्ती को देत। संत रीझै हरि ही को देत॥

१८.—सन्त संग की महिमा इसलिए है कि वहाँ संसारी वार्ता नहीं है। भगवच्चरित्रों से श्रद्धाहीन को भी श्रद्धा मिल जाती है। जिसकी जितनी श्रद्धा है उसको उतना लाभ है। पूर्ण श्रद्धा हो, सात्विकी हो तो पूर्ण लाभ होता है।

१९.—संत संग की प्राप्ति में कारण भगवत् कृपा है। कृपा बिना संत मिलते नहीं, उनमें भक्ति नहीं होती है। गुरु शरणागति के बाद गुरु के उपदेशानुसार यदि चलें तो जीव इस शरीर से प्रभु को प्राप्त कर कल्याण का भागीदार होता है। गुरुदेव की आज्ञा के विरुद्ध अपने मन से धन-जन का संग्रह करके माया के लोभी को अनेकों जन्मों में भी ज्ञान, भक्ति की प्राप्ति नहीं होती है।

२०.—भगवान श्रीराम ने लीलाकाल में संतों की सहायता हर काम में ली। प्रभु सर्वज्ञ हैं। सर्व समर्थ हैं उन्हें किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं थी, पर संतों की महिमा बढ़ाने के लिए संतों का आश्रय लिया। उनसे पूछ-पूछकर कार्य किया। सबसे पहली भक्ति संतों का संग है- **'प्रथम भगति संतन्ह कर संगा'** (मानस-अर० ३४/८) कहकर प्रभु ने संत महिमा बढ़ाई। प्रभु ने सातवीं भक्ति बताई कि सर्वत्र प्राणियों में समभाव, संसार को मुझमय देखना और **'मोते संत अधिक करि लेखा'** (मानस-अर० ३५/३) मुझसे अधिक सन्त को सन्मान देना। वशिष्ठ-विश्वामित्र से विद्याएं ग्रहण कीं। सन्त को गुरु माना। विश्वामित्र द्वारा विवाह हुआ। वन गमन के समय प्रयाग में भरद्वाज जी का दर्शन-वन्दन कर, उनसे वन में जाने का मार्ग पूछा। उनके बताए मार्ग से चले और महर्षि बाल्मीकि आश्रम में पहुँचे तो उनसे रहने का स्थान पूछा, आज्ञा पाकर चित्रकूट में रहे। चित्रकूट लीला करके चले तो श्रीअत्रि अनुसूया का दर्शन किया। उनके उपदेश सुने। सुतीक्ष्ण अगस्त्य आदि से मिले। अगस्त्य जी से विजय का उपाय पूछा। आशीर्वाद के साथ विजय कंकण प्राप्त किया। आदित्य हृदय स्तोत्र अगस्त्य जी से प्राप्त किया। अपने श्रीमुख से संतों के लक्षण वर्णन किये। संत लक्षण श्रुति शेष शारदा नहीं कह सकते हैं अनन्त बताया। सीता जी की खोज भक्तवर हनुमान जी से कराई। भक्तराज विभीषण से समुद्र पार करने का उपाय पूछा। रावण वध के समय भी विभीषण से उपाय जानकर उसका वध किया। राज्याभिषेक के बाद ऋषियों से हनुमान जी के चरित्र का श्रवण किया। अपने भ्राता भरत के पूछने पर संतों के लक्षणों का वर्णन श्रीराम जी ने किया। भक्तों की ओर अति आकृष्ट रहे, कृतज्ञ रहे। सन्तों का सब प्रकार से सन्मान करके उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाकर मानव मात्र को सन्तों में श्रद्धा-भक्ति का उपदेश दिया। भक्तों के महान भक्त श्रीराम जी थे। (इसका वर्णन बहुत विस्तृत है। ऊपर सूत्रों से संकेत है।) जय श्रीराम।

२१.—भगवान के चौबीस अवतारों में सर्वत्र सत्संग की प्रधानता है। मीन भगवान के चरित्र पर ध्यान दें तो स्वयं भगवान भक्त के हाथ में आ गए। भक्त ने नहीं समझा। मीन को फिर जल में डाल दिया। अत्यन्त तुच्छ मछली के रूप में थे। राजा सत्यव्रत ने नहीं पहचाना। तब भगवान ने मनुष्य की वाणी में कहा–राजन्! तुम शरणागत रक्षक हो, भयभीत को अभयदान देने वाले हो। संसार में बड़े लोग छोटों को निगल जाते हैं। इस समुद्र में बहुत बड़े-बड़े मगर, मत्स्य आदि हैं, वे मुझे खा जायेंगे। मैं अत्यन्त भयभीत हूँ। दीन वाणी सुनकर दयालु सत्यव्रत राजा ने उस छोटी सी मछली को उठाकर अपने कमण्डल में रख लिया। थोड़ी ही देर बाद भगवान मत्स्य कमण्डल में भर गये और राजा से बोले राजन्! मेरे रहने के लिए कोई लम्बा चौड़ा स्थान दीजिए। जिससे मैं सुखपूर्वक रह सकूँ। मछली के कष्ट को देखकर राजा ने एक बड़े बर्तन में पानी भरकर उसमें रक्खा। वहाँ समाए और बढ़ते ही गये। राजा ने बार-बार बर्तन बदले, सरोवर में नहीं समाए तो प्रभु को समुद्र में ही डाल दिया। भगवान का दिव्य भव्य कलेवर सोने के समान चमक रहा था। पुनः मत्स्य भगवान ने कहा राजन्! भय लग रहा है, यहाँ बड़े जीव मुझे खा जायेंगे। उस समय भगवान का शरीर चार लाख कोस का लम्बा चौड़ा हो गया था। देव वाणी सुनकर राजा आश्चर्य से चकित हो गये और पहचान गऐ कि ये मेरे प्रभु हैं। मुझ पर कृपा करने के लिए ही प्रकट हुए हैं। राजा ने कहा भगवन्! हम अज्ञानी जीव आपको नहीं जान सकते हैं, अतः प्रभो! आप हमको अपना सेवक मानकर के आज्ञा दीजिए। तब भगवान ने अपना परिचय प्रकट किया। अभी तक अपने को मछली (स्त्री) ही कहते रहे। आज्ञा दी कि समस्त बीजों का संग्रह कर लो, एक बड़ी नाव बनवाओ। उस पर सप्त ऋषियों को बैठा लो। आज से सात दिन के बाद सारा जगत जलमग्न हो जायेगा। उस प्रलय कालीन जल में मैं तुम्हारी नाव को अनन्त समुद्र जल में खींचता रहूँगा। तुम्हारे और सप्त ऋषियों के प्रश्नों के उत्तर देता रहूँगा। इस प्रकार जब तक ब्रह्माजी की रात रहेगी तब तक हमारा तुम्हारा सत्संग होता रहेगा। जब ब्रह्मा की रात्रि समाप्त होगी तब मैं उस दैत्य को मारुँगा जिसने शयन काल के समय ब्रह्मा जी से निकले वेदों का अपहरण किया है। वेद और वेद ज्ञान ब्रह्मा को देकर उन्हें पुनः सृष्टि के आरंभ की आज्ञा दूँगा। अपने दिव्य वर्षों से ब्रह्मा जी की आयु १००वर्ष की होती है। मत्स्य भगवान ने अति दीर्घकाल तक सत्संग

प्रदान कर सप्त ऋषियों को उपदेश दिया। सृष्टि में सप्त ऋषियों ने उस भगवत् प्रदत्त ज्ञान-भक्ति को जगत को दिया। सप्त ऋषि प्रधान थे। इस प्रकार इस अवतार का उद्देश्य था कि कथा कहकर अपना सानिध्य प्रदान कर ऋषियों को फिर उनके द्वारा सारे जगत को दिव्य ज्ञान का उपदेश दूँ। इस अवतार में सत्संग की ही प्रधानता रही।

२२.—जीवों को किस प्रकार शरण में जाना चाहिए। यह अपनी लीला के द्वारा बताया। अहंकार हीन अति तुच्छ बनकर शरण में जाना चाहिए। प्रभु बढ़ गये। बढ़ने पर भी उनके भाव में परिवर्तन नहीं हुआ। दैन्य ही दिखाते रहे। तात्पर्य कि शरण में पहुँचकर यदि ऐश्वर्य की प्राप्ति हो जाय तो भी दैन्यता का त्याग नहीं करना चाहिए। आज भी मत्स्य भगवान श्रीरमणक द्वीप में विराजमान हैं। राजा सत्यव्रत मनु उनकी सेवा करते हैं, विनय करते हैं। भगवान अपने दर्शन-सत्संग से रमणक द्वीप वासियों पर परम अनुग्रह करते हैं। यदि स्वयं ईश्वर अपनी प्राप्ति का, उपासना का मार्ग न बतावें तो जीव भक्ति-मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता है। इसलिए उपदेश देकर, सन्मार्ग पर चलकर, प्रभु सन्मार्ग पर चलना, भजन करना सिखाते हैं। दयामय हैं। प्रभु जीव को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं।

२३.—प्रश्न :-सत्संग की और नाम की अनन्त महिमा है फिर भी हम लोगों को सत्संग या नाम जप का कोई लाभ और अनुभव नहीं होता है। मन जैसा था वैसा ही लगभग बना है? क्या करें निराशा सी होने लगती है।

उत्तर :-जो कुछ आप पूछते हो वह प्रश्न हमारा भी है। इस संबंध में संतजन साधकों को जैसा उत्तर देकर समझाते हैं मैं उसी का सारांश सुनाता हूँ। सत्=सज्जन, संग अर्थात् आसक्ति। हमारी आपकी सज्जनों में और सत्संग के विषय में, भगवद् चरित्र में आसक्ति नहीं हुई। हम लोग सत्संग में कुछ क्षण कभी-कभी बैठकर कुछ सुन लेते हैं, वहाँ से आने पर जैसे के तैसे फिर हो जाते हैं। अभी हमारी आसक्ति नहीं हुई। सत्संग व्यसन नहीं बना। जब सत्संग के बिना रहा न जाय सब कामों से हटकर मन उसमें लगे जैसे क्षुधा या तृषातुर को भोजन जलपान के अतिरिक्त कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। इस प्रकार आसक्ति से मन द्रवित होकर शुद्ध होगा, उसमें से विकार दूर

होंगे। इस स्थिति को लाने के लिए बलात् मन को सत्संग में लगाना ही उपाय है। नैसर्गिक भक्ति जिनमें हैं वे तो जन्मजात सत्संग प्रेमी होते हैं पर जिनके संस्कार अन्यथा हैं, जन्म-जन्मांतर से मन विषयाभ्यासी है उनके लिए अभ्यास की जरुरत है। बचपन के, युवा अवस्था के कुसंस्कार भी प्रौढ़ावस्था तथा वृद्धावस्था में पीछा नहीं छोड़ते हैं। नाम में, सत्संग में सुन्दर रस है। जो मधुरिमा है, उसका स्वाद हमें नही मिलता है। पित्त रोगी को मिश्री कड़वी लगती है धीरे-धीरे मिश्री चूसते-चूसते पित्त दोष का शमन होगा, मिश्री की मिठास लगेगी, मिश्री की महिमा समझ में आयेगी।

२४.—संत वे है जिनमें अहंकार, दंभ, क्रोध, लोभ आदि नहीं है। जो अपनी पूजा नहीं चाहते, जिनका आचरण पवित्र है, ऐसे संतों से वर्तमान में सम्पर्क, संबंध, सत्संग करना चाहिए। यदि वे भगवत् धाम चले गये हैं तो उनका स्मरण करके उन्हें नमस्कार करना चाहिए। इससे मन में शांति होती है। प्रभु की ओर झुकाव होता है।

२५.—सत्संग का लाभ मिलता है तो धीरे-धीरे मन में शांति आती है अन्यथा प्रत्येक प्राणी तन, मन, धन और जन से दु:खी दिखाई पड़ता है। संसार के सारे काज किसी के भी अनुकूल नहीं होते हैं। एक न एक प्रतिकूलता रहती है। अपने इष्टदेव में दृढ़ विश्वास रखने वाला जो शरण में है और जो सन्मुख है वही निश्चिन्त और सुखी है। सत्य, दया, क्षमा, अस्तेय (चोरी न करना) आदि धर्म सभी वर्णों के धर्म हैं अत: उक्त कर्त्तव्यों का पालन करना मानव धर्म है। जो दूसरों के व्यवहार से परेशान नही होते और अपने व्यवहार से किसी को परेशान नही करते हैं वे ही संत है। तन, मन, धन से उपकार करने वाले गृहस्थजन महान हैं। मन शुद्धि और लोगों के साथ व्यवहार शुद्ध होने से लोक परलोक में पूर्ण निर्भयता प्राप्त होती है। संतों के ऐसे स्वभाव होते हैं।

२६.—पुत्र की कामना से आत्मदेव वन में जाकर संत की शरण में पहुँचे। फल मिला उससे गोकर्ण हुए। गोकर्ण ने उपदेश देकर आत्मदेव का कल्याण कर दिया। सकाम शरणागति थी, संत के स्वभाव से वह अन्त में निष्काम फल प्रभु को प्राप्त कराने वाली बन गई। धुंधली पत्नी माया थी आत्मदेव के ज्ञान पर अपना अधिकार रखती थी, पत्नी पतिव्रता नहीं थी आज्ञाकारिणी नहीं थी, अत: अन्त में उसकी दुर्गति हो गई, धन देकर

बहन के पुत्र को खरीदा, पति से छिपाकर कपटकर, अतः पुत्र ने कल्याण नहीं किया। पुत्र प्राप्ति का लाभ नहीं हुआ उससे पितृ ऋण दूर नहीं हुआ। स्वयं पुत्र और माता दोनों का अमंगल हुआ, गोकर्ण के हृदय में सद्भाव था अतः भागवत की कथा कहकर दोनों का कल्याण किया। एक भक्त कुल का उद्धारकर्ता बन गया।

२७.—जीव अपने कर्मों के अधीन सुख दुःख का भोग करता है। यह सामान्य नियम है। विशेष शरणागत भक्त प्रभु कृपा के अधीन रहते हैं। प्रभु की इच्छा में संतुष्ट रहते हैं। प्रभु जैसे रक्खे उसी प्रकार रहने में सुखी रहते हैं। संसारी सम्पत्ति के संग्रह में अति प्रयास नहीं करते हैं जो कुछ प्रभु कृपा से प्राप्त हो जाय उसी में संतुष्ट रहते हैं। शरीर में कोई कष्ट आ जाय तो सुखपूर्वक उसे सहन करते हैं। ऐसे संत लोक में अपनी ख्याति नहीं चाहते हैं। लोकमान्यता अग्नि के समान है तपस्या रूपी वन को जला देती है। बिना चाहें प्रभु इच्छा से सन्मान अपमान जो मिलता है उस से विश्व का कल्याण करते हैं। ऐसे संत वाणी से उपदेश न भी दें तो आचरण उपदेश बन जाता है। उनका शरीर जब तक रहता है वायुमंडल शुद्ध होता रहता है। शरीर न रहने पर भी प्रजा में उनकी चर्चा होती रहती है उसे सुनकर लोग लाभान्वित होते हैं।

२८.—भगवान, भगवान के भक्त, भगवान के नाम, भगवान के धाम, वृन्दावन, द्वारका, अयोध्या आदि और आचार्य श्रीरामानुज, रामानंद आदि उक्त सब एक हैं। विशिष्ट संत ही गुरुदेव हैं। भगवान ही गुरु रूप में प्रकट होकर जीव को शरण में लेते हैं। भक्ति मार्ग का उपदेश देते हैं। यदि आचार्य हमको भगवत् तत्व का ज्ञान न करावें तो हम भगवान को नहीं जान सकते हैं। जीव उसे कहते है जो माया को, अपने को तथा ईश्वर को न जाने। कभी हर्ष कभी विषाद कभी ज्ञान और कभी अहंकार में डूबा रहता है। आचार्य उसे ज्ञान देते हैं तब उसे अपने कर्त्तव्य का, धर्म का ज्ञान होता है और प्रभु की शरण में जाकर भक्ति का आचरण करता है। जिनके गले में तुलसीमाला और मस्तक पर तिलक है वे भगवान के चलते फिरते मंदिर हैं। गाँव-गाँव घर-घर जाकर दर्शन देते हैं। भगवान और भगवान के नाम दोनों एक हैं। जिसने नाम का आश्रय लिया उसे भगवान का आश्रय मिल गया। नाम और नामी में भेद नहीं है। नाम के अधीन नामी रहता है। नाम की महिमा को प्रभु जानते तो हैं पर पूरी महिमा का वर्णन नहीं कर सकते हैं। अपने धाम में भगवान सदा निवास करते हैं।

२९.–प्रयाग में कुम्भ मेला है यह संतों का मेला है। सभी सम्प्रदायों के संत एकत्र होते हैं। पर्व पर त्रिवेनी स्नान, अक्षय वट का दर्शन करके श्रद्धालुजन पापों से मुक्त हो जाते हैं। संत समाज चलता फिरता प्रयाग सबको सुलभ है। प्रयाग में जाने पर कुछ अपराध भी बन सकता है, पर संत समाज में सत्संग करते समय कोई अपराध संभव नहीं है। सत्संग में कथा सुनकर आनन्द में गोता लगाना जंगम प्रयाग में स्नान है। आप उसी में स्नान करके प्रभु की कृपा का अनुभव करें। मंगल कल्याणमस्तु।

३०.–भगवान का जैसा स्वभाव होता है वैसा ही स्वभाव भगवान के भक्त का हो जाता है। भगवान का चिंतन करते-करते हृदय में भगवान विराज जाते हैं। तब भगवान के से गुण भगवान का सामर्थ्य भक्त में आ जाता है। भगवान और भक्त दोनों एक रूप हो जाते हैं। किसी भी जीव का आदर भगवान की भक्ति है। किसी भी जीव का अपमान भगवान का अपमान है। इसलिए जीवों पर दया, भगवान के नामों में प्रेम और वैष्णवों की सेवा, उनके साथ सत्संग करना यही वैष्णवों का सर्वश्रेष्ठ धर्म है। वर्ण और आश्रमों के धर्म इसी में आ जाते हैं। घर के हो या बाहर के हो सबके प्रति सद्‌भाव बनाये रखना चाहिए। इससे अपने मन में सदा शान्ति बनी रहेगी। सभी का कल्याण हो, सभी सुखी सम्पन्न हों।

३१.–समर्थ स्वामी रामदासजी ने अपने दासबोध ग्रंथ के एक अध्याय में भगवत् चरित्र के सुनने वालों की प्रसंशा एवं वंदना की है। सत्संग में आने वाले सज्जन धन्य हैं। सत्संग से लाभ होता है और कुसंग से नुकसान होता है, यह बात सभी इतिहास पुराणों में तथा सभी संतों के श्रीमुख से भी सुनी जाती है। सज्जन का संग थोड़ी देर में लाभ और दुष्ट का संग हानि पहुँचाता है। सज्जन का खान-पान, आचार-विचार, सदाचार है। दुष्टों का खाना-पीना, बोलना-चालना दुराचार कहा जाता है। क्षणभर का सत्संग भी सबसे बड़ा खजाना है। अजामिल कुसंग से पतित हुआ। साधु दर्शन से उसका उद्धार हुआ। सत्संग को नारदजी ने अपने भक्तिसूत्र में दुर्लभ बताया है। यदि मिल जाय तो वह व्यर्थ नहीं जाता है। जब सत्संग में प्रेम होगा तो भगवत् कथा में भी विश्वास, प्रेम होगा। तब भक्ति हृदय में प्रकट होगी और दृढ़ होगी। जैसे पानी का कोई आकार नहीं है जैसे पात्र में रखों वैसा ही उसका आकार बन जावेगा। सफेद कपड़े को जैसे रंग में रंग दो वैसा ही वह हो जायगा, इसी तरह मनुष्य जैसे का साथ करता

है वैसा ही बन जाता है। स्वाती नक्षत्र में गिरे पानी की बूँद केले में कपूर, सीपी में मोती, सर्प के मुख में विष बन जाती है, ऐसे ही उत्तम मनुष्य, नीच का निर्माण सत्संग कुसंग से होता है। जप, पाठ, पूजा, सत्संग का तुरंत ही लाभ वा चमत्कार प्राप्त करने की इच्छा मत करो। करते-करते जो कुछ आवश्यक है वह सब कुछ हो जावेगा। हमको अपने कर्तव्यों का पालन करना है। फल या अनुभव प्रकट करना यह सब ठाकुरजी का काम है, वे करेंगे।

३२.–संतों की, गुरुजनों की सेवा से भगवान संतुष्ट होते हैं। यह बात सुदामा चरित्र में श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने श्रीमुख से कही है।

३३.–एक बार फोगला आश्रम के समीप भागवत की कथा पंडित जी (श्रीजगन्नाथ प्रसाद भक्तमालीजी) कह रहे थे। मैं (दीनबन्धुदास) भी साथ-साथ आता जाता था और कथा सुनता था। एक दिन कथा सुनते-सुनते मुझे नींद आ गई, सहसा आँख खुली तो मैंने देखा कि व्यासासन पर पंडितजी के स्थान पर एक रास बिहारी स्वरूप कथा कह रहे हैं। मेरा मन कथा की ओर नहीं गया कि क्या कह रहे हैं? मेरे मन में चिन्ता हुई कि मैं सो गया पंडितजी कथा कह कर चले गये। उसके बाद कोई रास बिहारी बालक कथा कह रहा है। पंडितजी अकेले चले गये, मेरे ऊपर नाराज होंगे, मुझे निद्रा आ गई ठीक नहीं हुआ। कुछ देर के बाद मेरा ध्यान फिर व्यासासन पर गया तो क्या देखता हूँ कि मुखारविंद पर मुकुट नहीं है चेहरा पंडितजी का सा हो गया, धीरे-धीरे पूरा रास बिहारी स्वरूप पंडितजी का स्वरूप हो गया। पंडितजी कथा कह रहे हैं मैं आश्चर्य से चकित रहा। फिर कथा का विश्राम होने पर साथ-साथ घर आया। अवसर पाकर मैंने बात बताई तो पंडितजी हँस गये और बोले बात सच्ची यही है। भगवान अपनी कथा स्वयं किसी संत के मुख से कहते हैं नहीं तो जीव भगवान की कथा क्या कहेगा।

३४.–दयामय शक्ति श्रीकृष्ण हैं। श्रीकृष्ण अपनी शक्ति का प्रयोग करते हैं तब जीव का कल्याण होता है, उसका तामस नष्ट हो जाता है। दैत्य हिंसक अपनी शक्ति से दीनों गरीबों को कष्ट देता है। फलस्वरूप हिंसक भी स्वयं संकट में पड़ जाता है। हिंसक अपने ही पाप से नष्ट हो जाता है। परोपकारी सज्जन अपनी सज्जनता से बच जाते हैं। सज्जनों का अपमान करने से आयु, बल, बुद्धि और पुण्यों का नाश हो जाता

है। अपने इष्ट के स्वभाव से प्रभावित होकर भक्त भी इष्ट के गुणों को धारण करके भगवान को प्रसन्न करता है।

३५.–सत्य, दया, क्षमा, ब्रह्मचर्य, सदाचार आदि गुण नित्य अखण्ड अनन्त रूप से भगवान में रहते हैं। भक्त जब भगवान को अपने हृदय में लाता है तो वे सत्य आदि गुण भक्त में भी आ जाते हैं। पूर्णरूप से प्रभु हृदय में आवेंगे तो वे गुण भी पूर्णरूप से आवेंगे। जैसे जैसे प्रभु का ध्यान दृढ़ होगा वैसे वैसे सद्गुण आकर निवास करेंगे।

३६.–नित्य भगवान की कथा सत्संग चर्चा जहाँ होती है वहाँ कलियुग का प्रभाव नहीं होता है क्योंकि वहाँ प्रह्लाद आदि भक्त वैष्णव रहते हैं। श्रद्धापूर्वक भगवान की पूजा करने वाले इस लोक में भी भगवद् धाम में हैं। शरीर को त्यागकर अंत में भी हरि धाम में वास करेंगे। जो काम, क्रोध, मोह आदि के वश में होकर मर्यादा का उल्लंघन करते हैं, दूसरों की पीड़ा पहुँचाते हैं ऐसे विमुख लोग यहाँ नरक में हैं और मरने के बाद भी वे लोग नरक में कष्ट भोगेंगे। भक्तजन भगवान की इच्छा में अपनी इच्छा को मिला देते हैं और जो कुछ हुआ, जो कुछ होगा, जो हो रहा है वह सब भगवत् की इच्छा से हो रहा है और ठीक हो रहा है। हमारे प्रभु सच्चे पिता-माता हैं और उनका प्यार हमारे ऊपर है। उसी प्रकार दूसरे प्राणियों पर भी भगवान का प्यार है। अतः हम भी दूसरे प्राणियों के साथ उचित दयामय व्यवहार करें। किसी भी बात का मन में चिंतन करें तो वास्तविकता समझ में आ जायगी।

३७.–एक बहुत बड़ा दुष्ट था एक दिन उसने एक संत को बिना अपराध के ही बहुत मारा पर संत के हृदय में क्रोध नहीं आया। मेरे शरीर में चोट लगी है तो यह मेरे किसी प्रारब्ध का फल है। दूसरे दिन उस दुष्ट को हैजा की बीमारी हो गई। उल्टी दस्त होने लगे। गंदगी के कारण कोई पास नहीं जाता। कई दिन हो गए, मरणासन्न हो गया। जब उस सन्त ने सुना तो उसे दया आई। उसने जाकर मकान को तथा उसके शरीर को धोया। चिकित्सा करवाई स्वस्थ हो गया। तब दुष्ट के मन में श्रद्धा हुई कि जिस संत को मैंने मारा उसी संत ने मेरी सेवा की। संत बोले आश्रम में आया करो संतों का सत्संग किया करो। वह दुष्ट जाता, कुछ सुनता भी पर उसके मन में यही आता कि ये बाबा लोग भोले भाले लोगों को बहकाकर उनसे पैसा ठगते हैं। इनकी बातों में कोई सार नहीं है। कुछ दिन बाद उस दुष्ट की मृत्यु हुई। यमराज के दूतों ने

उसे नरक में डालना चाहा, पर उसका केस जब सामने आया तो यह प्रश्न हुआ कि मरते समय इसने किसका स्मरण किया? उसकी चित्तवृत्ति कहाँ थी? तो बताया गया कि जिस बाबा (संत) जी ने इसकी सेवा की थी उसमें इसका मन लगा था। बस फिर क्या था वे संत कहाँ हैं? वे वैकुण्ठ में हैं। वैकुण्ठवासी संत का स्मरण किया तो यह भी वैकुण्ठ का अधिकारी है। **'अन्ते मतिः सा गतिः।'** अन्त में जिसका मन जहाँ लगा होता है वही गति होती है। उसे वैकुण्ठ वास मिला। दुष्ट ने संत सेवा नहीं की थी, संत ने दुष्ट सेवा की थी इसलिए दुष्ट की श्रद्धा संत में थी उसी से उसे संत की याद आई। यह संत की महिमा है।

३८.—भगवान के अर्चा विग्रह अति सुलभ हैं। वे भक्तों के अधीन रहते हैं। भक्त पुजारी जन उन्हें जगाते हैं, स्नान कराते है, खिलाते पिलाते तथा शयन कराते हैं। पूर्णरूप से भगवान के अधीन सारा संसार है पर भगवान अर्चा विग्रह को स्वीकार करके भक्तों के अधीन हो जाते हैं, मैं भक्त के अधीन हूँ दुर्वासा के प्रति कहे गये इस वाक्य को सत्य करते हैं। अर्चा विग्रहों का, गो ब्राह्मणों का, संतों का, गुरुजनों का पूजन-दर्शन करने वालों को प्रभु प्रेम की, प्रसन्नता की प्राप्ति होती है। भक्त भगवत् का गुण गान करके प्राणी कृतार्थ हो जाता है। जिनके संकल्प विचार दुष्ट हैं वे भक्तों की निंदा करते हैं, उनसे द्वेष करते हैं फलस्वरूप आवागमन एवं नरकों में पड़ते हैं। अपने घमण्ड में चूर मनुष्य भक्त महिमा को नहीं जान सकते हैं। भोगों को भोगकर पुण्यों को निष्काम कर्म करके भक्तजन मुक्त हो जाते हैं। प्रारब्ध के सुख दुःखों से भी अलग हो जाते हैं। भगवान की भक्तों के साथ हुई एक एक लीला का चिंतन करने से उसमें मन डूब जाता है।

३९.—गोसाईं श्रीतुलसीदास जी ने संत समाज को तीर्थराज प्रयाग बताया। यह चलता फिरता प्रयाग स्थावर=एक जगह स्थिर रहने वाले से श्रेष्ठ है क्योंकि स्वयं लोगों के गाँव-घर पहुँचकर उन्हें पवित्र कर देता है। इसमें राम भक्ति गंगा की धारा है। ब्रह्म के स्वरूप का विचार ही सरस्वती है। विधि कर्तव्य और निषेध अकर्तव्य का वर्णन ही यमुनाजी हैं। विश्वास ही अक्षयवट है। इसमें स्नान करके पवित्र होना अर्थात् सत्संग करना ही मंगलदायक है। इसमें कष्ट नहीं है। भौम तीर्थ प्रयाग में जाना-आना कष्टप्रद

है, वहाँ प्रमादवश अपराध भी बन सकता है पर संत समाज प्रयाग में, सत्संग में कोई कठिनाई नहीं है। अपराध की भी संभावना नहीं है (विशेष रामायण में देखिए)।

४०.—भूमि के तीर्थ फलदायक तब होते हैं जब मन के तीर्थो में स्नान किया जाय। उनका सेवन किया जाय। सत्य, दया, क्षमा, अहिंसा, अस्तेय आदि मानस तीर्थ हैं, इनके बिना भौम तीर्थ पूर्ण फल प्रदान नहीं करते हैं अतः मानस तीर्थों का सेवन कर मन को शुद्ध करना अति आवश्यक है। इनके साथ भौम तीर्थ विशेष फलदायक हैं।

४१.—भागवत में सबसे श्रेष्ठ भक्त ब्रज गोपियों को कहा गया है। वे घर छोड़कर कभी तपस्या करने नहीं गईं। अपने घर पर गाय दुहते समय, दही मथते समय, झाड़ू लगाते समय, चौका लगाते समय, रोते हुए बालकों को चुप कराते भगवान के नाम-गुणों का कीर्तन करती रहती थीं। घर का काम भी करना और भगवान के नाम गुणों का कीर्तन करते रहना इसी से भगवान उनके ऊपर प्रसन्न हो गये। उन्हें अपना प्रेम प्रदान किया, उनके अधीन हो गये।

४२.—रामायण में सर्वश्रेष्ठ भक्त शबरी को माना गया क्योंकि उसके मन में जाति, विद्या, रूप, धन आदि का किसी प्रकार का अहंकार नहीं था। निरंतर नाम जप करती हुई जंगल से लकड़ी बीन करके संत सेवा में पहुँचाती थी। इस गुप्त संत सेवा से भगवान प्रसन्न हो गये। नित्य प्रातः झाड़ू लगाकर मार्ग साफ करती थी, कोई ऋषि जरा छू गये अपने को अशुद्ध मानकर नहाने गये तो उनके इस अपराध से कुण्ड का जल अशुद्ध हो गया। शबरी को छूकर पवित्रता का अनुभव करना चाहिये था। भगवान ने शबरी के पदरज से तीर्थ जल को शुद्ध कराया। अहंकार का न होना ही सर्वश्रेष्ठता है। अहंकारी अशुद्ध होता है। शुभं भूयात् इति शम्।

४३.—**'संत विसुद्ध मिलहि परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही॥'**(मानस-उत्तर ६८/७)

संत समागम राम कथा का द्योतक है। श्रीराम ने जब कृपा की तभी श्री अयोध्या के संत का दर्शन हुआ। भगवान श्रीराम जी को महर्षि वाल्मीकिजी ने आज्ञा दी है उसे भगवान कभी टाल नही सकते हैं। आज्ञा-

राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही॥ (मानस-अयो० १३०/४)

श्रीराम जी के भक्त जिसे प्रिय लगें उसके हृदय में आप निवास कीजिए। आप लोगों को संत-भक्त प्रिय लगते हैं, आप उनकी सेवा करते हैं अतः वाल्मीकि की

आज्ञानुसार आप सबके हृदय में श्रीराम जी निवास करेंगे। आप लोग अपने हृदय में भगवान का अनुभव कीजिए, विश्वास कीजिए कि मेरे हृदय में प्रभु हैं, अब वहाँ अन्य विकारों को स्थान नहीं मिलेगा।

४४.—शरीर, समय, परिस्थितियाँ भगवत् स्मरण भजन के योग्य नही हैं पर जिस पर संत-भगवन्त की कृपा है वे सत्संग पाकर साधन सम्पन्न हो जाते हैं। यदि संत गुरुदेव की कृपा न हुई तो यद्यपि साधक साधन करता है फिर भी उसे साधन का फल श्रीकृष्ण प्रेम दुर्लभ ही रहता है।

४५.—एक बार श्रीनारद जी ने भगवान के समीप जाकर सत्संग की महिमा पूछी। भगवान ने कहा कि अमुक वन में एक सरोवर है, उसके तट पर बैठा एक पक्षी भजन कर रहा है, तुम उससे जाकर पूछो। नारदजी ने जाकर उस पक्षी से पूछा तो उसने उसी क्षण शरीर छोड़ दिया। इससे नारदजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने आकर समाचार बताया कि उस पक्षी ने महिमा न बताकर शरीर ही छोड़ दिया। भगवान ने कहा कि इस बार आप पृथ्वी लोक में जाइयेगा तो अमुक ग्राम में अमुक ब्राह्मण की गाय के बछड़े से पूछियेगा, वह बतायेगा। कुछ दिन बाद घूमते फिरते नारदजी ने उस बछड़े से जाकर पूछा तो वह भी और कुछ न कहकर शरीर छोड़कर चला गया। आश्चर्य चकित नारदजी ने आकर भगवान से कहा महाराज!आपकी आज्ञा से मैंने बछड़े से पूछा तो वह भी मर गया। अब आप ही सत्संग की महिमा बताइये, इधर उधर क्यों भटकाते हैं? भगवान ने कहा इस बार आपको अवश्य ही सत्संग की महिमा का ज्ञान हो जायगा। अमुक नगर के राजकुमार से जाकर पूछो। नारदजी ने जाकर राजकुमार से जैसे ही प्रश्न किया तैसे ही वह शरीर त्यागकर विष्णु पार्षद रूप हो गया और नारदजी से बोला कि मैं चौरासी लाख योनियों में भटककर पक्षी योनि में आया था, उस समय आपने मुझे दर्शन दिया। क्षणिक सत्संग से मेरे पाप नष्ट हो गये और मैंने गो योनि प्राप्त की। वहाँ भी आपने दर्शन दिया तो आपके संग से पुनः पुण्यों की प्राप्ति हुई और यह मनुष्य शरीर मिला। इस बार भी प्रभु कृपा से आपका सत्संग मिला इससे तो अब मैं पार्षदत्व प्राप्त कर वैकुण्ठ को जा रहा हूँ, यह आपके संग का फल है।

श्रीनारद जी ने समझा कि मैंने कुछ भी उपदेश नहीं दिया, केवल मेरी उपस्थिति मात्र से इतना लाभ हुआ। अतः सत्संग की महिमा अपार है।

४६.–यदि संत कुछ भी उपदेश न करें या न करते हो तो भी उनकी सेवा से लाभ है। उनकी साधारण चर्चा पुराण कथा के ही समान है।

सामीप्य से सन्त या असन्त का अपने ऊपर प्रभाव पड़ेगा चाहे वह मूक ही रहें। अदृष्ट परमाणु सन्त शरीर से निकलकर प्रभाव डालते हैं। ऐसे ही असन्त का प्रभाव भी पड़ता है परन्तु जिसके परमाणु बलवान होंगे उसका प्रभाव विजयी रहेगा। संत संग का प्रभाव सन्त बना देगा अथवा असन्त का असन्त बना देगा। भगवान की सेवा करने पर अभीष्ट सिद्धि में संदेह हो सकता है पर संत सेवा में कोई संदेह नहीं है। अभीष्ट सिद्धि अवश्य होगी।

४७.–ब्राह्मण के धरना देने पर भगवान शंकर ने विचार करके देखा तो उसके भाग्य में नेत्र सुख नहीं था अतः कहा कि अब तुम्हें नेत्र ज्योति नहीं मिल सकती है। कई बार यह सुनकर एवं समझकर ब्राह्मण निराश नहीं हुआ और अपने हठ पर अड़ा रहा तो **'याको हठ सार देखि शिव पिघलाने हैं।'** ब्राह्मण कहता था कि **'भाविउ मेटि सकहि त्रिपुरारी।'** (मानस-बाल० ६९/५) आप चाहें तो विधि विधान के विपरीत भी हमें नेत्र दान कर सकते हैं। अन्ततोगत्वा उसके विश्वास पर शिव द्रवीभूत हो गए पर वे कह चुके थे कि ये नेत्र अब फिर नहीं होंगे। अतः उन्होंने सोंचा कि अब यदि मैं देता हूँ तो पिछले कई बार के मेरे वाक्य मिथ्या होंगे अतः शिवजी ने उचित समझा कि किसी भगवद् भक्त के पास भेजकर इसको नेत्र दिलाऊँ तो मेरे वाक्यों की अवहेलना न होगी और इसे नेत्र प्राप्त हो जायेंगे।

यहाँ यह सिद्ध हुआ कि जो भगवान न कर सकें उन्हें उनके प्यारे भक्त कर सकते हैं।

४८.–एक बादशाह का पुत्र मर गया था, कबीर ने पहुँचकर कहा कि परमात्मा के हुक्म से जी उठ, नहीं जीवित हुआ तो एक ठोकर मारकर कहा–मेरे हुक्म से उठ। ऐसा कहने पर वह जीवित हो उठा। विधि विधान से भगवदाज्ञा ऊँची है और भक्त आज्ञा–इच्छा उससे भी ऊँची है।

'चारौं युग चतुर्भुज सदा भक्त गिरा साँची करन।'

अपने प्रिय भक्त की वाणी सत्य करके, उनके महत्व को प्रकट करके उनकी कीर्ति का विस्तार करते हैं, इससे भक्त प्रियत्व प्रमाणित है। शिव ने भी भक्त महिमा का विस्तार किया।

४९.–भगवद् भक्ति, भगवद् पद कमल भक्ति और भगवद् पादत्राण भक्ति, उत्तरोत्तर श्रेष्ठत्व है।

'मोरें सरन रामहि की पनही।' (श्रीभरतजी)

चौदह वर्ष की अवधि के लिए अबलम्व माँगने पर श्रीराम ने–

'प्रभु करि कृपा पाँवरीं दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥
चरनपीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के॥'

(मानस–अयो० ३१५/४–५)

'माँगि माँगि आयसु करत।' पादुकाओं को सिंहासन पर बिठाकर उनका पूजन करते और उनकी आज्ञा माँगकर सारा राज कार्य करते।

५०.–**'सुमिरि राम पद पंकज पनहीं।**
भाथीं बाँधि चढ़ाइन्हि धनहीं॥'(मानस–अयो० १९०/४)

निषाद राज ने राम के पाद त्राण को स्मरण कर धनुष चढ़ाया और तरकश बाँधा। भरत से लड़ने के लिए तैयार हो गए। प्रभु पादत्राण को रक्षक माना। इस प्रकार भक्त पादत्राण की महिमा है। भगवान की अपेक्षा भक्त की भक्ति का महत्त्व है ऐसे ही भगवत्पादत्राण की अपेक्षा भक्त पादत्राण की महिमा है। तुलसीदासजी का भाव है–

'तुलसी जाके मुखन से धोखेहु निकसत राम।
ताके पग की पगतरी मोरे तनको चाम॥'

स्वयं भक्त के चरण का जूता अपनी खाल से बनाना चाहते हैं। नाभाजी के भंडारे में संत के पादत्राण में खीर लेने के लिए तैयार हो गए। श्रीनाभा जी कहते हैं, **'निमि अरु नव योगेश्वरा पादत्राण की हौं शरण।'** भक्त पादत्राण की शरण ग्रहण कर रहे हैं।

५१.–श्रीसूरदास मदनमोहनजी–**'संतन की पानही को रक्षक कहाऊँ मैं।'** इनका भाव है कि प्रभु पादत्राण की सेवा तो किसी भरतजी सरीखे भक्त के भाग्य में हो सकती है। भगवान की अपेक्षा सुलभ और श्रेष्ठ भक्त पादत्राण का मैं रक्षक कहलाऊँ। भक्त पाद की सेवा के योग्य नहीं हूँ अत: पादत्राण की सेवा चाहता हूँ। उनमें भी सच्चाभाव मेरे लिए दुर्लभ है तो भक्त पादत्राण का रक्षक कहलाऊँ। लोग कहें कि यह भक्त पादत्राण का रक्षक है। इसी से मेरा कल्याण हो जायगा। इसमें दैन्यता की पराकाष्ठा है। जो जितना दीन है वह उतना बड़ा प्रेम का पात्र है। परीक्षा लेने पर आप सच्चे सिद्ध हुए। संत पादत्राण

सेवा करने लगे। मंदिर में हो रहे कीर्तन में गोसाईंजी ने बुलाया पर भक्त पादत्राण सेवा को छोड़कर नहीं गए। इस सेवा को 'सेवासार' माना।

५२.–सभी अंगों की अपेक्षा चरण वंदनीय होते हैं। चरणों की अपेक्षा पादत्राण विशेष वंदनीय हैं, सभी अंग ऊपर है। सबसे नीचे चरण हैं। सम्पूर्ण अंगों के सेवक व वाहक है। अतः श्रेष्ठ हैं। चरणों से पादत्राण श्रेष्ठ है क्योंकि चरणों के सेवक हैं तात्पर्य जो सबसे छोटा बनकर सेवा करता है वह सबकी अपेक्षा वंदनीय है। भक्त के अधीन भगवान हैं इसी सिद्धान्त से पादत्राण के अधीन चरण है। चरण इधर उधर घूमघाम कर वहाँ ही आवेंगे जहाँ पादत्राण है।

५३.–**शंख चक्रांकित तनुः शिरसा मंजरीधरः।**
गोपी चन्दन लिप्तांगो दृष्टश्चेत्तदघं कुतः॥ (स्क०पुराण)

शंख-चक्र की छाप जिसके शरीर में है, जो तुलसी मंजरी को सिर पर धारण करते हैं, जिनके शरीर में गोपी चन्दन लगा है, ऐसे भक्त के दर्शन हो गये तो फिर पाप कहाँ रहेगा?

५४.–**येषां संस्मरणात्पुसां सद्यः शुध्यन्ति वै गृहाः।**
किं पुनः दर्शन स्पर्श पादशौचासनादिभिः॥ (भागवत प्रथम १/१९/३३)

जिन महात्माओं के स्मरण मात्र से ही गृहस्थों के घर तत्काल पवित्र हो जाते हैं, फिर उनके दर्शन, स्पर्श पाद प्रक्षालन और आसन दानादि का सुअवसर मिलने पर तो कहना ही क्या?

५५.–वृन्दावन में भक्तमाली श्री पंडित जगन्नाथप्रसादजी और गोवर्धन में पंडित गयाप्रसादजी लोकोत्तर आदर्श सिद्ध संत थे।

५६.–सभी आराधनाओं में विष्णु की आराधना श्रेष्ठ है परन्तु उससे भी श्रेष्ठ है वैष्णव भक्त की आराधना। जो कोई भक्त को भोजन कराता है तो उससे प्रभु तृप्त होते हैं। तीर्थ के दर्शन से देर में पवित्रता प्राप्त होती है पर संत का दर्शन करने मात्र से प्राणी पवित्र हो जाता है।

बाल्मीकि रामायण में श्रीराम जी को अगस्त्यजी ने एक कंकण दिया। प्रभु ने पूछा तो बताया कि श्वेतार्थ राजा थे उन्होंने बहुत दिनों तक राज्य किया। धन, धरती, हाथी, घोड़ा, मकान आदि का बहुत दान दिया। मरकर स्वर्ग गए तो ब्रह्मा जी ने उनके

पुण्य के फल के अनुसार एक अति सुंदर दिव्य भवन उन्हें दिया। उसमें सारी सुविधाएँ थी पर वहाँ खाने की कोई चीज नहीं थी। राजा को भारी भूख लगी थी। ब्रह्माजी ने कहा कि तुमने किसी संत को भोजन नहीं कराया है। यहाँ तो वही वस्तु मिलती है और हजार गुना ज्यादा मिलती है जिसका धरती पर दान किया जाता है। भूख मिटाने के लिए अपने ही शरीर के मांस को खाओ। राजा दिव्य देवशरीर धारण किए विमान पर बैठकर आता, सरोवर में पड़े अपने शरीर को खींच उसका मांस खाता और फिर चला जाता। ब्रह्माजी ने कहा था जिस दिन तुम्हें किसी संत का दर्शन हो जायगा उस दिन तुम्हारी भूख मिट जायगी। तुम्हारी लाश भी नष्ट हो जायगी। एक दिन श्रीअगस्त्य जी विचर रहे थे। राजा को मांस खाते देखकर पूछा। उस देवता ने अपना चरित बताया। ब्रह्माजी के कथनानुसार अगस्त्य का दर्शन कर पाप मुक्त हो गया। उसी राजा ने यह कंकण हमें भेंट किया यह विश्व विजयी है। अगस्त्य के दर्शन मात्र से पाप दूर हो गया।

५७.–जिन-जिन ऋषि मुनियों को भगवान के दर्शन हुए वे धन्य हैं। हम लोग केवल उन भक्तों के और भगवान के चरित्रों का स्मरण करें उनके नामों का कीर्तन करें हमारा कल्याण इतने से ही हो जायगा।

५८.–सत्संग का अच्छा शुभ योग है। कोई पूछ सकता है कि सत्संग की इतनी महिमा है और हम लोग सत्संग करते हैं उसका हमको कुछ लाभ मिला ऐसा अनुभव नहीं होता है। ऐसा क्यों? सत्=सज्जन। संग=आसक्ति। सत्संग अर्थात् सज्जन संतों के संग में आसक्ति, कथा में आसक्ति। जिसे आसक्ति हो जाय, सत्संग के बिना रहा न जाय तब लाभ होता है। संग में आसक्त माता-पिता की बात न मान, सजा का डर न मान कर कुसंग में जाता है। उसी तरह सबका तिरस्कार कर, किसी के रोकने पर भी न रुककर सत्संग में वही जाता है, जिसकी आसक्ति होती है। **'आसा बसन व्यसन यह तिनही।'**(मानस-उत्तर० ३१/६) व्यसनी अपने व्यसन को छोड़ नहीं सकता। न मिलने पर मरने लगता है ऐसे प्रेम की प्राप्ति भी सत्संग करते-करते होगी।

५९.–प्रेम का एक सिद्धान्त है कि प्रेमी के प्रेमी से भी प्रेम करना। यदि हम किसी प्रेमी से प्रेम करते हैं और उसके प्रेमी से द्वेष करते हैं तो हमारा प्रेमी हमसे संतुष्ट

नहीं रह सकता है। माता को पुत्र में प्रेम है यदि कोई उस पुत्र में प्रेम करता है तो वह माता की कृपा प्राप्त कर सकता है।

इस सिद्धान्त से भगवान से प्रेम करने वालों को चाहिए कि भगवान के प्रेमी भक्तों से प्रेम करें। भक्त से प्रेम, उसकी सेवा से भगवान शीघ्र ही संतुष्ट हो जाते हैं और यदि कोई भक्त से बैर करता है, संत को बिना कारण ही सताता है तो वह भगवान के क्रोध से जल जाता है।

'जो अपराधु भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥' (मानस-अयो० २१७/५)

प्रमाण है दुर्वासा का चरित्र।

'सुर साधु चाहत भाव सिंधु कि तोष जल अंजलि दिये।'

६०.—सबके साथ परम उपकार की भावना से ईश्वर प्रसन्न होता है। परोपकार ही संत का स्वभाव होता है। परोपकार ही सच्ची भक्ति है उसी से सब प्रकार का कल्याण होता है।

६१.—संतों का परधाम गमन शोक योग्य नहीं होता है क्योंकि नश्वर देह को त्याग कर धाम में अखण्ड सुख प्राप्त करते हैं। संसारी विमुख लोगों का मरण शोचनीय होता है। मेरी आँखों से ओझल होकर वे निकुंजों के परिकर में प्रवेश करके परम सुख प्राप्त कर रहे होंगे। उनके उपदेश दर्शनों से वंचित हो गये यह दुःख है।

६२.—ईश्वर ने संसारी जीवों को निष्पाप करके उन्हें पुण्यमय, धन्य बनाने के लिए दो नदियों को त्रैलोक में प्रवाहित किया है। एक में तो भगवान का निज चरण कमल जल प्रवाहित है। ब्रह्मा को श्रीचरण प्रक्षालन का सौभाग्य मिला। फिर कालान्तर में तीन धाराओं में विभक्त होकर श्रीगंगा जी तीनों लोको में प्रवाहित हैं। उनके दर्शन स्पर्श से प्राणी कृतार्थ होते हैं। दूसरी कथा सुधा सरिता भगवद् भक्तों के सात्विक शरीर में श्रीमुख से सदा प्रवाहित रहती है। उस गंगा से इस कथा सुधा सरिता की महिमा विशेष बड़ी कही जाती है। पादोदकी गंगा विलम्ब से पवित्र करती है, पर सन्त समाज में सर्वदा एक रस प्रवाहित कथा सुधा तत्क्षण ही पवित्र कर प्रभु प्रेम प्रदान करती है। कथा प्रसंगो से भक्ति उत्पन्न होती है और पुष्ट भी होती है। अतः सत्संग सभा में नित्य कथा सुधा का पान करना चाहिए। भगवान कथा रूप से हृदय में प्रवेश करके मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार सब

कुछ को पवित्र कर देते हैं। आप लोग सत्संग करें। आपका सत्संग में प्रेम हो। जिस कार्य को श्रद्धा विश्वास के साथ किया जाता है उसका लाभ शीघ्र होता है। सत्संग करते करते सत्संग में प्रेम होगा। सत्संग को प्राप्त करने की इच्छा सभी ऋषि, देव, ब्रह्मा, शिव आदि करते हैं।

६३.—श्रीहनुमान जी भक्तिदेवी जानकी जी की खोज कर रहे थे। विभीषण को राम की खोज थी। प्रातः नाम स्मरण के प्रभाव से विभीषण को हनुमद्दर्शन हुआ। हनुमानजी ने परिचय देकर जानकी जी के दर्शन की लालसा बताई और रामजी के स्वभाव का वर्णन करके उनको शरणागति की प्रेरणा दी। श्रीविभीषण ने युक्ति बताई तो उससे हनुमानजी अशोक वाटिका में जा सके। एक ने दूसरे की सहायता की तो दोनों का काम बना। इस प्रकार परस्पर भक्तों से मिल जुलकर सहायता लेकर तथा सहायता देकर इष्ट की सिद्धि करनी चाहिए।

६४.—शास्त्रों में अनेक प्रकार के ज्ञान, वैराग्य, योगादिक का वर्णन पाया जाता है। उसकी साधना हम सरीखे लोगों के लिए कठिन है। हमको तो गुरुदेव ने आज्ञा दी है कि भक्त और भगवान के नाम, रूप, गुणों का कथन–श्रवन करो, बस इसी से कल्याण होगा। अपने लिए दूसरी साधना दुर्गम है। जितना समय श्रवण–कथन में बीतता है, उतनी देर मन में किसी प्रकार का विकार नहीं आता। इतना अनुभव तो सत्संग में बैठने वाले सभी प्रेमी करते हैं। सत्संग में सुनी बात को मन में धारण करना चाहिए। एक बात को बार बार मन बुद्धि में लाकर उसे स्वीकार करने से, उसके महत्व को मान लेने से हृदय पवित्र होता है। प्रथम मौखिक ज्ञान ही सबको होता है, बाद में वह अनुभव में आता है।

६५.—दुर्भाग्य से तामस की वृद्धि से कभी कभी सत्संग में बाधा का अनुभव होता है। परन्तु इस अवसर पर भी अपने में विशेष खिन्नता नहीं होनी चाहिए। भगवदिच्छा मानकर संतुष्ट रहना चाहिए। दूसरे लोग नहीं आते हैं या कम आते हैं इसकी चिन्ता न करके जो भी हो उनके बीच उनके साथ सत्संग करना चाहिए। कोई न हो तो अकेले ही रामायण, भागवत, भक्तमाल के किसी प्रकरण को पढ़कर उसका मनन करना व समझने का प्रयास करना चाहिए। जब कुछ पढ़ने अथवा कहने लगोगे तो दिव्य श्रोता अपने आप आ जावेंगे। भक्तमाल के श्रोता भगवान, रामायण के श्रोता

हनुमानजी आदि, भागवत के श्रोता उद्धव आदि आ जाते हैं। उन्हें आसन देकर बैठने की, कथा सुनने सुनाने की प्रार्थना करके पठन-प्रवचन करो। ये सब लोग उपस्थित हैं इस बात का पूर्ण विश्वास रखना चाहिए तब किसी के न आने का अभाव नहीं खटकेगा।

६६.—श्रीपृथु रूप से स्वयं भगवान ने भक्त का आदर करना सिखाया, सत्संग किया। वे कहते हैं कि मंगल मूर्तियों! सनकादिकों! आपका दर्शन योगियों के लिए भी दुर्लभ है। मुझे जो आपका दर्शन मिला उससे मुझे आश्चर्य है कि मैंने ऐसा कौन सा पुण्य किया था अर्थात् आपका दर्शन मेरे पुण्य का फल नहीं है वह तो आपकी कृपा का फल है। जिस पर आप लोग प्रसन्न होते हैं उस पर ब्रह्मा, विष्णु, शिव भी प्रसन्न हो जाते हैं उसे इस लोक या परलोक में कोई वस्तु दुर्लभ नहीं रहती। आप सारे लोकों में विचरते हैं पर संसारी आपको देख ही नहीं पाते हैं जैसे सर्वत्र स्थित आत्मा को अहंकारी नहीं देख पाता है। तात्पर्य यह है कि भक्त संतों का विचरण सदा होता है पर अभक्त की दृष्टि में वे नहीं आते। देखकर भी उन से अश्रद्धा के कारण उनको मान्यता नहीं देता है। वे निर्धन गृहस्थ भी धन्य हैं जिनके घरों में आप जैसे संतजन, जल, भूमि, आसन, गृह, स्वामी, नौकर आदि किसी भी पदार्थ को स्वीकार करते हैं। जिनके घरों में भक्त चरणोदक के पवित्र छींटे नहीं पड़े वे ऋद्धि-सिद्धि से भरे घर भी त्याज्य हैं, जैसे सर्पों के रहने से वृक्ष। तात्पर्य जहाँ भक्तों का यातायात रहता है वहाँ भक्ति का वातावरण रहता है वहाँ जाना चाहिए। जहाँ कोई भक्त आता जाता नहीं वहाँ पर नहीं जाना चाहिए। विमुखता के कारण संसार के दोष वहाँ भरे रहते हैं वे साँप से भी भयंकर हैं, जिस वृक्ष पर सर्पों का निवास होता है उसकी छाया, पत्र, पुष्प, फल आदि का कोई सज्जन उपयोग नहीं कर पाते हैं वह त्याज्य है। तात्पर्य यह कि भक्त सम्पर्क ही भक्त होने का प्रमाण है।

६७.—सत्संग में आना ही उत्तम है। कुछ दिन आते जाते रहने से किसी दिन की चर्चा से हृदय द्रवीभूत हो जाता है तब उस पिघले हृदय में जो विचार पड़ते हैं बाद में हृदय के कुछ कठिन होने पर भी वह वस्तु फिर निकल नहीं पाती है। अतः कुछ सत्संग अवश्य ही करना चाहिए।

६८.—नारदजी उत्तम भागवत हैं। उत्तम भागवत परोपकारी होते हैं। प्रमादी नलकूबर मणिग्रीव अशुद्ध लौह थे, पर पारस ने उन्हें भी स्वर्ण बनाया। अश्रद्धालु को

भी दर्शन मात्र से शुद्ध बना दिया। प्रथम तो परोपकारी वृक्ष योनि मिली, यमलार्जुन रूप से ब्रजवास मिला फिर साक्षात् श्रीकृष्ण के दर्शन हुए जो बड़ी से बड़ी तपस्या, साधन से दुर्लभ है।

६९.–तपस्वी श्रीदुर्वासा जी उत्तम भागवत नहीं थे। इन्द्र में पूर्ण श्रद्धा नहीं थी। परिणाम यह हुआ कि दुर्वासाजी से श्री नाश का शाप मिला। **''दर्शनादेव साधवः''** नहीं हुआ। दुर्वासाजी ने माला देने के साथ माला में श्रद्धा नहीं दी, प्रसाद की महिमा का बोध नहीं कराया। दर्शनीय और दर्शक में एक भी उत्तम श्रेणी का हो तो तत्काल फल मिल जायगा।

७०.–श्रीअम्बरीष की छोटी रानी पिता के घर में थी। नारदजी का दर्शन हुआ। नारदजी ने भक्त अम्बरीष की महिमा सुनाई। एकबार के ही दर्शन–श्रवण से कल्याण हो गया। उसी दिन अम्बरीष को समर्पित हो गई। तत्काल लाभ हुआ। **'दर्शनादेव साधवः'** सिद्ध हुआ। दोनों ही उत्तम श्रेणी के थे।

७१.–लंका में विभीषण और श्रीहनुमानजी का मिलन परस्पर लाभदायक हुआ। दुष्ट के दर्शन से ही हानि होती है। कपट मृग के दर्शन मात्र से प्रभु वियोग हुआ यह श्रीजानकी जी ने दिखाया।

७२.–श्रद्धा प्रेम रहता तो सभी संतों में है परन्तु **''प्रकाशते क्वापि पात्रे''** कभी किसी विरले कृपा पात्र में प्रकाशित होता है। प्रेम के लक्षण शरीर और वाणी में दिखाई पड़ते हैं। संत में श्रद्धा विश्वास होने पर ही दर्शन, दर्शन हैं अन्यथा भक्त भगवन्त मेरे निकट होंगे पर पूर्ण लाभ नहीं होगा।

७३.–तीर्थ यात्रा करने वाले यात्रा में कष्ट उठाते हैं कुछ दानादि भी करते ही हैं अतः भगवत् कृपा के भागीदार होते हैं। बाहर के किये पाप तीर्थ में नष्ट हो जाते हैं। सत्य, दया, क्षमा आदि मानस तीर्थों के साथ जो लोग भौम तीर्थ का सेवन करते हैं, तीर्थ वासी संतों के साथ सप्रेम सत्संग करते हैं उन्हें तीर्थ पूर्ण फल देते हैं। शास्त्र की जितनी यज्ञ दानादि की विधियाँ हैं उन सबके साथ सत्संग की विधि है और कुसंग का निषेध है।

७४.–जब हमारा मन पाप वासना, विषय सुख को पाने के लिए लालायित हो, हम उसे न रोके तो अपने ही भीतर कुसंग हो जाता है। मन भजनपरायण, सत्संग का इच्छुक हो हम उसकी पूर्ति करें तो भीतर ही सत्संग हो जायगा।

७५.–**'बिनु सतसंग न हरि कथा, तेहि बिन मोह न भाग।**
मोह गएँ बिनु राम पद, होइ न दृढ़ अनुराग॥' (मानस-उत्तर० ६१/०)

बिना सत्संग के भगवत कथाओं का, ऐश्वर्य माधुर्य का ज्ञान नहीं होता है। बिना इसके मोह दूर नहीं होता है जो सब अनर्थो की जड़ है। मोह के दूर हुए बिना, अहंता ममता गए बिना प्रभु चरणों में शुद्ध अनुराग नहीं होता है। बिना अनुराग के कितना ही योग-जप किया जाय पर भगवत् प्राप्ति नही होती है अतः श्रद्धापूर्वक सत्संग नित्य ही कर्त्तव्य है।

७६.–प्रेम पूर्वक की गई सेवा के द्वारा संत भगवान का आशीर्वाद स्वतः बिना माँगे मिलता है। आपकी सेवा से मेरा रोम रोम प्रसन्न है। भक्त का विश्वास ही पाषाण को परमेश्वर बना देता है उसी प्रकार आप लोगों ने मुझे संत बना दिया, सत्संग देकर कृतार्थ किया। अन्यथा मैं न संत हूँ और न सेवा के ही योग्य हूँ। प्रभु सब पर कृपा करें।

७७.–आज भी ऐसे लोग हैं जो शबरी की तरह गुप्त संत सेवा करते हैं। सेवा के बदले सेव्य संत भगवन्त से बड़ाई नहीं चाहते हैं। चढ़ाव में एक सेठ तीन सौ बोरी चावल लाया और रामबालकदास जी से बोला कि यह तीन सौ बोरी चावल लाया हूँ। उसके स्वर में उन्हें अहंकार की गंध आई। उन्होंने कहा कि जल्दी बाहर ले जाओ, यहाँ जरुरत नहीं है इस प्रकार इन्कार कर दिया, ऐसे सन्त विरले होते हैं। निष्कामता आदि दुर्लभ है।

७८.–संत लक्षणों का वर्णन करने से मन में श्रद्धा होती है। बार-बार नित्य जिस विषय का श्रवण, वर्णन, भजन होगा, उसका संस्कार मन पर अवश्य पड़ेगा। अतः सन्त भगवन्त के गुणों का भूरि भूरि वर्णन करना चाहिए। मन-वाणी को उसमें रमण कराना चाहिए। इस प्रकार चित्त से चिन्तन करते करते भक्त भगवन्त के सद्गुण उसमें अवश्य आ जाते हैं। यद्यपि कराल कलिकाल है परन्तु भक्तों की भक्ति में समय बाधक नहीं होता है।

७९.–भक्त का कदाचित् पतन हुआ तो भी अन्त में उसका कल्याण होता है। क्योंकि उसके पतन का कारण भी शुद्ध होता है। उदाहरण के लिए भरतजी को मृग शरीर मिला वे साधन से च्युत हो गये, पर यह पतन भी मंगलमय हुआ। क्योंकि उसके

मूल में दया थी। यदि मृग के शिशु की रक्षा न करते डूब जाने देते तो पाप होता। उसमें आसक्ति हो गई जीव का यह स्वभाव है। मृग शरीर से भी उन्होंने भजन किया। प्रथम भक्त शरीर से उतना लोक लाभ संभव न था, केवल वे अपना ही कल्याण कर पाते। द्वितीय जड़ भरत शरीर से उन्होंने काली के समक्ष बलि हेतु जाकर काली के भक्तों को पुनः जीवित कर दिया जिन्हें देवी ने मार डाला था। उन्हें सद्बुद्धि हुई, रहूगण राजा को माध्यम बनाकर ऐसे दिव्य उपदेश दिये जो आज कोटि कोटि साधक सिद्धों के लिए कल्याणकारी हैं। **'रहूगणेतत्तपसा न याति न चेज्यया** भा० ५/१२/१२' इस वाक्य में महापुरुषों के चरणों के रज की महिमा कही।

यह प्रेम ज्ञान, तपस्या, यज्ञ, वर्ण-धर्म का पालन करने से, अग्नि, सूर्य आदि की उपासना करने से नहीं मिलेगा, बिना संत चरण रज का अभिषेक, बिना संत सेवा के नहीं मिल सकता है। प्रेम भक्ति के लिए संत सेवा को प्रधान बताया। पिता ऋषभदेव ने भी यही बताया था। तात्पर्य जड़ भरत का पतन हिरन (रहूगण) के उद्धार का कारण बना, अनन्त उपदेश देने वाला बना।

८०.-गीता के नवें अध्याय में श्रीकृष्ण का कथन है कि कोई दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त होकर मुझे भजता है तो वह साधु मानने योग्य है, क्योंकि उसने निश्चय कर लिया है कि भगवद् भजन के समान कुछ दूसरा नहीं है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और परम शांति को प्राप्त कर लेता है। अर्जुन! तुम निश्चय पूर्वक जानो कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता है। शरणागत नाम का आश्रय लेता है तो पिछले पाप नष्ट हो जाते है। फिर उससे पाप कर्म नहीं बनते, अतः वह साधु ही है। संसार में उत्कृष्ट प्रेम कहीं भी हो जाये तो वहीं से भगवत् प्राप्ति की शिक्षा मिल जाती है। जैसे बिल्वमंगलजी को चिंतामणि से उपदेश मिला। प्रभु में भक्ति होने से सभी उत्तम गुण भक्त में आ जाते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दैन्य, अभय, अद्रोह, तितिक्षा, शम, दम, सत्संग, प्रेम, विनय, सेवा, दान, तप, अमानिता, क्षमा आदि। भक्तिहीन मनुष्य में उक्त गुणों के विपरीत अवगुण आ जाते हैं। हृदय में भगवान के आने से सारे गुण आ जाते हैं। माया मोहित हृदय में सभी दोष आ जाते हैं।

८१.-संसार में यत्र-तत्र सर्वत्र अशान्ति दिखाई पड़ती है पर भक्तजनों के हृदय में प्रभु विराजमान है उन पर कोई प्रभाव नही पड़ता है।

८२.–जिनके मन में परोपकार की भावना रहती है वे भगवान के भक्त, भगवान के कृपापात्र हैं। मन–वाणी–शरीर से दूसरों के साथ उपकार करना यह सज्जन का सहज स्वभाव है। सज्जन के मन–वाणी और कर्म में एकता होती है जैसा मन से सोचता है, वैसा ही कहता और वैसा ही करता है।

भक्त के घर के प्राणी पशु आदि भी भक्त ही होते हैं इसलिए भक्त और भक्त का परिकर वंदनीय है।

८३.–संसारी कामनायें त्याग करने के योग्य हैं उन्हें त्यागकर भक्त भगवान निष्काम है। भक्त भगवान की कामना करते हैं और भगवान भक्त की कामना करते हैं अत: दोनों सकाम होते हुए भी निष्काम है। आवागमन के चक्र से रहित हैं। दोनों मुक्त हैं। प्रभु में बद्ध मुक्त की कल्पना नहीं है।

८४.–जीव का सबसे उत्तम लाभ यही है कि सज्जनो, भक्तों से सम्पर्क–मित्रता। जो जैसा होता है उसकी वैसे ही लोगों से मित्रता होती है। सन्मार्ग का उपदेश देने वाले मित्र ही सच्चे मित्र हैं। संसारी मौज शौक के लिए मित्रता शत्रुता के समान है। हम साथ साथ ईश्वर की आराधना करें साथ साथ उन्नति के लिए पुरुषार्थ करें साथ–साथ भगवत् प्रसाद प्राप्त करें। संगठित होकर अपने धर्म की, देश की, कुल की रक्षा करें। जो स्वयं को सुधार लेता है वह दूसरे का सुधार कर सकता है। अत: अपने को सुधारने की चेष्टा करनी चाहिए। जो बड़ों की आज्ञा नहीं मानता है, उसे छोटों की आज्ञा के अधीन रहना पड़ता है। प्रभु सबका कल्याण करें।

८५.–प्रारब्धवश प्राणी इतस्तत: भ्रमण करता है पर भक्त भगवत् कृपा से प्रभु लीला का अनुभव करता हुआ शांत चित्त रहता है। अज्ञानी की तरह सभी कामों को करता दिखाई पड़ता है पर मन से सेवा सत्संग में मग्न रहता है। किसान हल चला रहा था, मालिक ने देखा कि इसका मन कहीं अलग है, ठीक से काम नहीं कर रहा है। एक थप्पड़ मारा तो सहसा दही की मटकी गिरी, फूट गई। दही फैल गया। तब रहस्य खुला कि मानसी सेवा में मन था। मानसी प्रत्यक्ष हो गई। किसान पर प्रभु कृपा हो गई। मालिक भी भक्त बन गया।

८६.–**'वैष्णवानां त्रयं कर्म जीवेषु नारद।**
श्रीगोविन्दे पराभक्तिस्तदीयानां समर्चनम्॥'

वैष्णवों के तीन कर्म मुख्य हैं। सभी जीवों पर दया, हर जीव के साथ दयामय व्यवहार। भगवान में अनन्य भक्ति और विष्णु भक्तों की सेवा। सेवा का तात्पर्य अन्न-वस्त्र दान ही नहीं है। वैष्णवों के साथ सत्संग कथनोपकथन ही उत्तम सेवा है। इसमें दोनों के हृदय प्रेम से द्रवीभूत हो जाते हैं, भक्ति पुष्ट होती है। परस्पर सद्भाव बढ़ता है।

८७.–**'करोमि यद्यत् सकलं परस्मै।'** भक्तजन जो जो कुछ करते हैं वह परोपकार के लिए और परमात्मा के लिए ही करते हैं।

८८.–जिनके दर्शन मात्र से परमानंद की अनुभूति होने लगे उसी को भगवान और भगवान का सच्चा भक्त समझना चाहिए। मानव शरीर धारण कर वैष्णवता प्राप्त किए बिना आवागमन रूप कर्मबंधन से मुक्ति नहीं होती है। अतः प्रभु नाम का आश्रय लेकर सात्विक जीवन बिताना चाहिए।

इति शुभम्



श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्री हनुमते नमः श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः

❋ संसार में कैसे रहें? ❋

१.—जो धर्म का अर्थात् अपने कर्तव्य का नाश करता है यानी त्याग करता है उस प्राणी को नष्ट हुआ धर्म नष्ट कर देता है। जो धर्म का, कर्त्तव्य का पालन करते हैं पालन किया गया धर्म उस पालक की रक्षा करता है। तात्पर्य यदि हम धर्म का नाश करेंगे तो वह हमारा नाश कर देगा यदि हम धर्म का पालन करेंगे तो वह धर्म हमारा पालन करेगा। आज संसार में जो अशान्ति है उसका कारण यही है कि लोग अपने धर्म का पालन नहीं करते हैं। पति-पत्नी दोनों स्वधर्म का पालन करें तो अशान्ति नहीं होगी। इसी तरह पिता-पुत्र, राजा-प्रजा, भाई-भाई यदि धर्म का पालन करें तो कभी अशान्ति नहीं होगी। कठिनाई यह है कि कुछ दैत्य स्वभाव के लोग हैं कुछ देव स्वभाव के हैं। इसलिए एक का धर्म ही दूसरे का अधर्म बन जाता है। अतः जो सात्विक सज्जनों, भक्तों का मार्ग है उसी पर चलना चाहिए। तामसी लोगों से, तमोगुणी कर्मों से बचना चाहिए।

२.—मन में भक्ति रहने से संतोष रहता है। पूर्ण संतोष जिसके मन में है उसके लिए कोई उत्तम वस्तु अप्राप्य नहीं रहती है। आवश्यक वस्तु को भगवान देते हैं फिर रक्षा भी करते हैं। **'योगक्षेमं वहाम्यहम्।'** मैं योग क्षेम का वहन करता हूँ, यह प्रभु की प्रतिज्ञा है। परमात्मा सत्यसन्ध हैं अपनी प्रतिज्ञा का सदा ही पालन करते हैं। हम जीव ही अपनी प्रतिज्ञा को भूल जाते हैं और संकट में पड़ जाते हैं। किसी न किसी प्रकार से प्रभु को याद रखना चाहिए। संबंध को दृढ़ रखना चाहिए। हम दास हैं अपने स्वामी की आज्ञा के अधीन हैं। प्रेमी प्रभु के अधीन होता है तो प्रभु भी प्रेमी के अधीन हो जाता है, यह समझ कर आनन्दित रहना चाहिए। जय श्रीराधे जय श्रीकृष्ण।

३.–यदि सभी अपने–अपने कर्त्तव्यों का पालन करें तो यह मृत्युलोक ही स्वर्ग बन जाय। स्वकर्त्तव्य परायण व्यक्ति अपना और अपने सम्पर्क में रहने वालों का कल्याण करता है। प्रातः उठकर प्रभु को, माता–पिता को प्रणाम अवश्य करें। पृथ्वी हमारी माता है, गाय माता है उन्हें प्रणाम कर स्नान आदि करके थोड़ी देर अपने भगवान के पास रहकर पूजन–प्रणाम करलें उसके बाद अपने व्यवसाय में लगना चाहिए। अर्थ का उपार्जन करके परिवारीजनों का पालन–पोषण करना यह शास्त्र की आज्ञा है। केवल प्रारब्ध के भरोसे अति वृद्ध को रहना है। जब तक शरीर में शक्ति है तब तक कर्म करके ईश्वर को प्रसन्न करना है। उद्योग में मन से प्रभु स्मरण, शरीर से अर्थोपार्जन करना चाहिए। कर्महीन का प्रारब्ध नष्ट हो जाता है। उद्योगी का प्रारब्ध जाग जाता है। उद्योग करते समय इष्ट का आश्रय रखना चाहिए।

४.–दया, क्षमा, सत्य आदि प्रभु के सहज स्वभाव में हैं, उसी प्रकार भक्त के स्वभाव में ये गुण रहते हैं। भक्त जीवों पर दया करके, उनकी भूलों को क्षमा करके और सत्य का त्याग न करके जब संसार में व्यवहार करता है तो उसकी स्थिति वैकुण्ठ में मानी जाती है और मिथ्या कपट द्वेष हिंसा दुष्टता का व्यवहार में प्रयोग करने वाले को यहाँ नर्क में रहना पड़ता है और मरने के बाद भी उसको नर्क में कष्ट भोगना पड़ता है। कष्टों से बचना है तो दूसरों को कष्ट नहीं देना चाहिए।

५.–कई ऋषियों का कथन है कि प्रारब्ध अति बलवान है। विद्या अध्ययन, भजन में उद्योग करना चाहिए। धन के उपार्जन में उद्योग करके भगवान के भरोसे रहना चाहिए। संसारी भोगों की प्राप्ति के लिए कर्म करते हुए प्रारब्ध का भरोसा रखना चाहिए। कर्म का त्याग नहीं करना चाहिए। कर्म करके ईश्वर को अर्पण करें। फल की इच्छा न रहने पर परमात्मा अनन्तगुना फल देता है। सकाम कर्म का फल तुच्छ होता है। निष्काम कर्म से प्रभु प्रसन्न होते हैं। भक्ति की, सत्संग तथा सेवा की कामना लौकिक (संसारी) कामना नहीं है। इस प्रकार की कामनाओं का नाश नहीं करना है।

६.–परीक्षित जी ने कलियुग के रहने के लिए पहले चार स्थान बताये। १. द्यूत, २. पान (मदिरा पान), ३. स्त्रियः दुष्टा (दुराचारिणी स्त्रियों का सम्पर्क), ४. हिंसा (जीवों की हत्या)। कलियुग के माँगने पर पाँचवां स्थान स्वर्ण दिया। स्वर्ण का अर्थ धन है। जो धन छल, कपट, हिंसा करके कमाया जाता है उसमें कलियुग का निवास

रहता है। सच्चाई ईमानदारी से कमायें धन में कलियुग नहीं रहता है। धन के बिना यज्ञ आदि पुण्य नहीं होंगे। दक्षिणा के लिए धन चाहिए। अतः पवित्र धन में कलियुग नहीं रहता है। पाप करके और पाप करने के लिए जो धन कमाया जाता है उसमें कलियुग रहता है। चाहे वह सोना, चाँदी, ताँबा, नोट कुछ भी हो। सबमें कलियुग का अर्थात् पाप का निवास रहता है। अतः इनसे दूर ही रहना चाहिए।

७.—कलियुग के किसी एक स्थान का सेवन करने से सभी आ जावेंगे। जैसे कोई जुआ खेलेगा तो वह झूठ अवश्य बोलेगा। अधिक धन होने पर कुसंगवश मद्यपान करेगा। उससे बुद्धि भ्रष्ट हो जायगी, तो वह कुलटा स्त्रियों का संग अवश्य करेगा। उसमें उसे क्रोध से हिंसा भी करने की आवश्यकता पड़ेगी। अतः चारों स्थानों का त्याग करना चाहिए।

जैसा बन्धन परायी दुष्ट स्त्रियों के संबंध से होता है वैसा बन्धन अन्य कारणों से नहीं होता है। अपनी बुद्धि शुद्ध रहे यह आवश्यक है।

८.—संसार में प्रत्येक प्राणी को सुख-दुःख का अनुभव होता है, इसमें प्रारब्ध को मुख्य कारण बताया जाता है। भक्त लोग भगवान की कृपा को कारण मानते हैं। मनुष्य दरिद्रता के कारण दुःख का अनुभव करता है, सोचता है कि यदि धन मिल जाये तो मैं सुखी हो जाऊँ, मेरी दरिद्रता दूर हो जाय, पर धन के मिलने से दरिद्रता दूर न होगी वह बनी ही रहेगी। जब मन में संतोष आवेगा तब सुख मिलेगा तभी दरिद्रता दूर होगी। सुख का कारण धन नहीं संतोष है। इस बात को समझने का प्रयास करना चाहिए। इसका कारण यह है कि बिना प्रयास के बिना चिन्तन के कोई बात समझ में नहीं आती है। इसका तात्पर्य यह भी नहीं है कि कमाने का प्रयास छोड़ दो। खूब श्रम करके उत्पादन करें, परन्तु मन में संतोष और ईश्वर का भरोसा रखना चाहिए। जो आदमी संसार का, इन्द्रियों का सुख नहीं चाहता है, उसे दुःख नहीं मिलेगा। उसका मन सदा प्रसन्न रहेगा। मन की प्रसन्नता ही सुख है। सत्संग करते रहना चाहिए इसी में लाभ है। सत्संग के साथ ही अपने विचार पवित्र रहने चाहिए। किसी का अहित नहीं सोचना चाहिए। साथ ही समय मिलने पर सत्शास्त्र का चिंतन करते रहना चाहिए। रामचरित मानस आदि का स्वाध्याय करते रहना चाहिए। प्रभु कृपा से सभी का कल्याण हो।

९.–भगवान का कथन है कि ब्राह्मण, गाय, अनाथ, असहाय प्राणी ये मेरे ही शरीर हैं। पापों के द्वारा जिनकी बुद्धि नष्ट हो गई है वे लोग इनको मुझसे भिन्न मानकर इनका अपमान करते हैं। उनको यमराज के दूत सर्प गृद्ध रूप धारण करके नरक में डसते हैं और चोंच से उनका मांस नोचते हैं इससे उन्हें बड़ा कष्ट होता है।

यदि ब्राह्मण भक्त रुठ जाय तो उसे उसी प्रकार मनाना चाहिए, जैसे रुठे हुए पिता को पुत्र मनाता है।

१०.–जिसके हृदय में श्रद्धा है वह सभी प्राणियों का आदर करता है। अश्रद्धालु अपने पिता-माता तथा परमात्मा का भी आदर नहीं करता है। वह कामवश कुलटा स्त्री का आदर करता है। उसके द्वारा अपमानित होने पर भी उसकी खुशामद करता है ऐसे लोग नर्क में गिर कर महान कष्ट भोगते हैं। इसलिए चित्त को स्थिर करके प्राणियों की सेवा तथा सम्मान यथाशक्ति करना चाहिए। सत्संग करते रहने से, भक्त और भगवान के गुण-स्वभाव का बार-बार स्मरण करने से हृदय कोमल एवं शुद्ध हो जाता है। तब उसमें भगवान की झांकी होती है।

११.–राजा से या मालिक से कोई साधारण मनुष्य मिलना चाहे तो उसके मिल पाने में कठिनाई है। यदि वह राजा के सेवक से मैत्री सम्पर्क स्थापित करले, उससे अनुनय विनय करे, उसका प्रेम पात्र बन जाय तो वह राज सेवक किसी न किसी प्रकार राजा से मिला देगा इस प्रकार राजकृपा की प्राप्ति सहज ही हो जाती है। इसी प्रकार ईश्वर प्राप्ति के लिए ईश्वर भक्तों का संपर्क संबंध होना आवश्यक है। हनुमान जी ने सुग्रीव-विभीषण आदि को श्रीराम जी से मिला दिया। जीव मात्र भगवान के सेवक हैं। इनसे सद्भाव रखने पर ही प्रभु की प्राप्ति संभव है।

१२.– **मोक्षमिच्छसि चेत्तात, विषयान् विषवत् त्यज।**
क्षमार्जवं दया शौचं, सत्यं पीयूषवत् पिब॥ (अष्टावक्र)

अर्थ–हे तात! यदि मोक्ष चाहते हो तो संसारी भोगों को विष की तरह त्याग कर दो। क्षमा, सरलता, दया, शौच और सत्य को अमृत मानकर उसका पान करो। साधक को सर्व प्रथम लौकिक इच्छाओं का त्याग करना चाहिए। उसका त्याग किए बिना माया से छूटने की इच्छा नहीं होगी, बल्कि माया का अधिक से अधिक संग्रह हो, अधिक से अधिक सब प्रकार के भोग हमको मिलें, मन में यह वासना जब जमी रहेगी,

तब अपने या इष्ट के रूप का ज्ञान नहीं होगा। हम माया बद्ध है, हमको छूटने का उपाय करना चाहिए। प्रभु हमको माया से छुटावें यह भाव भी मन में नहीं आता है। अत: मोक्ष की अर्थात् माया से छूटने की इच्छा करनी चाहिए। भगवान की प्रसन्नता से, कृपा से, माया से छुटकारा मिलता है। हम भगवान की शरण में हैं। **'श्रीकृष्ण: शरणं मम', 'श्रीराम: शरणं मम।'** का अनुसंधान करने से, जप करने से प्रभु जीव को अभयदान देते हैं। विषय विषवत् त्याज्य हैं। विष जो कच्चा है, उसके खाने से हानि मृत्यु होती है। संसारी भोग इन्द्रियों की पूर्ति, विषय की लोलुपता कच्चा विष है, उसका त्याग करना चाहिए। शोधा हुआ पक्का विष औषध बन जाता है उसके खाने से रोग दूर हो जाते हैं। पक्के भोग वे हैं जो भगवान को अर्पण कर, प्रसाद रूप से, मात्रा से, शास्त्र की विधि के अनुसार निष्काम होकर भोगे जायें। इन भोगों से पुण्य, प्रभु की प्रसन्नता, ज्ञान, वैराग्य की प्राप्ति होती है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि विषयों का सर्वथा त्याग शरीरधारी कर ही नहीं सकता, करने की जरुरत भी नहीं। प्रसाद भोगी माया को जीतता है।

१३.—जिसमें क्षमा नहीं है वह धूप, ताप, वर्षा आदि से पीड़ित होकर देवों को, ईश्वर को भी गाली देता है। अपने ही अपराध से हुए कष्ट का, दोष दूसरे को लगाकर उससे बदला लेने का प्रयत्न करता है अत: आवागमन के चक्र में पड़ता है। क्षमाशील पुरुष अपने प्रति किए अपराध को दूसरे का न मानकर अपना मानता है, बदला लेना नहीं चाहता है अत: आवागमन के चक्र में नहीं पड़ता है। वस्तुत: अमृत अमृत नहीं है। सरलता, दया, पवित्रता, सत्यभाषण, सत्यव्यवहार, सत्य श्रीकृष्ण हैं उनके पावन चरित्र ही सत्य हैं, यही सच्चा अमृत है, पीने योग्य है अर्थात् कहने-सुनने योग्य है। इस अमृत को पीकर अमरत्व प्राप्त होता है। भगवान की उपासना करते हुए जीना ही जीना है, अमृत्व है, विमुख जीवन ही मरण है। विमुखतावश आचरण विष है उसका त्याग करना चाहिए।

१४.—किसी व्यक्ति के साथ मतभेद के समय कटु कठोर शब्दों का प्रयोग करके उसे परास्त कर देना, दबा देना उत्तम नहीं है। स्वयं दब जाना परास्त हो जाना अच्छा है। न्याय का आश्रय लेकर मधुर शब्दों से, उपकार से विपक्षी को परास्त करना चाहिये। हिंसा से, गाली से जीतने की अपेक्षा, मधुर दयामय व्यवहार करते हुए हार जाना अच्छा

है। इसका प्रभाव बाद में पड़ता है। संसार में सभी का काम चलता है। दुष्ट दुष्टता से अपना कार्य चलाता है। सज्जन सज्जनता से अपना काम चलाता है। सज्जनता से कुछ हानि दीखेगी। दुष्टता से लाभ दिखाई पड़ेगा। इतने पर भी सज्जनता से हानि सहन करना अच्छा है दुष्टता से लाभ उठाना अच्छा नहीं है।

१५.–अठारह पुराणों के बीच में वेद व्यास के दो वाक्य मुख्य है। १. पुण्य का अर्जन करने के लिए परोपकार करना चाहिए। २. दूसरे को पीड़ा पहुँचाने से पाप होता है। धर्म का रहस्य सुनो और सुनकर उसे धारण करो। जो अपने प्रतिकूल है वह व्यवहार दूसरों के साथ नहीं करना चाहिए। सुकर्म करने का अभ्यास करना चाहिए। जब कभी अवसर मिले तो निश्चिंत होकर भगवान के भरोसे कर्म करना चाहिए। सभी का कल्याण हो ऐसी प्रार्थना इष्टदेव के सामने करनी चाहिए। जय श्रीहरि:, जय श्रीराधे–जय श्रीकृष्ण।

१६.–**संतोषादनुत्तम लाभः** (पतंजलि योग सूत्र) संतोष से उत्तम लाभ होता है। अगर किसी में पूर्ण संतोष आ जाय तो उसके पास अष्ट सिद्धियाँ अपने आप आ जाएँगी। इस वाक्य में विश्वास करके असंतोष को मन में नहीं आने देना चाहिए।

१७.–जिसके मन में अहिंसा की प्रतिष्ठा हो जाती है उसके पास आकर सिंह, व्याघ्र, सर्प आदि वैर का त्याग कर देते हैं। जो मन–वचन–कर्म से किसी को पीड़ा नहीं पहुँचाना चाहता है, जिसमें अहिंसा दृढ़ हो गई है उसे सब कोई अपना मानता है। देवता, पितर, भूत, प्रेत, राक्षस उसे कष्ट नहीं दे सकते। पुत्र पिता–माता को, भाई भाई को, मित्र मित्र को, पति पत्नी को प्रसन्न रक्खें। और संत सद्‌गुरु यदि प्रसन्न हैं तो समझो ईश्वर प्रसन्न हैं। हम अपने घर के सदस्यों में, पड़ोसियों में, ग्राम वासियों में, देश वासियों में यदि प्रेम नहीं कर सकते हैं तो हम ईश्वर से भी प्रेम नहीं कर सकते हैं। गाय, संत, विप्र आदि जो प्रभु की विभूतियाँ हैं इनमें भक्ति करके ईश्वर की भक्ति की शिक्षा ग्रहण करना चाहिए। इन सबकी भक्ति का आनंद राम–कृष्ण भगवान ने लिया। स्वयं अपने परिवार में, प्रजा में, ऋषियों में, मित्रों में प्रेम करके प्रभु ने हम सबको शिक्षा दी है।

१८.–भक्तों को वही आचारण करना चाहिए जो श्रीकृष्ण को प्रिय हैं। श्रीकृष्ण को प्रसन्न करना ही पुण्य है। जिस आचरण से, कर्म से, धर्म से प्रभु प्रसन्न हों, वही पुण्य है। इसके विपरीत पाप है। खान–पान व्यवहार में भी ध्यान रखना चाहिए कि इस मेरे कर्म से कहीं मेरे प्यारे श्याम सुंदर नाराज न हो जावें। ईश्वर के प्रसन्न होने पर फिर दूसरों की

हमको (कृष्ण भक्तों को) क्या आवश्यकता है। यदि प्यारे कृष्ण मुझसे नाराज हैं तो राजभोग राजमहलों की हमको क्या आवश्यकता है। हमको घर, धन, पशु सब कुछ चाहिए, परिवार भी चाहिए पर श्रीकृष्ण की सेवा के लिए चाहिए। इष्टदेव प्यारे श्याम सुंदर की शरण में हूँ, वे धर्म का, कल्याण का रास्ता सबको बतावें।

१९.—स्वयं ईश्वर बिना कारण के ही सबके साथ उपकार करने वाले हैं। ऐसे भगवान का कोई भक्त बनना चाहे तो उसे भी निष्काम होकर सबके साथ उपकार करना चाहिए। भगवान राम पिता-माता की आज्ञा मानने वाले हैं। अपने भाइयों से प्रेम करने वाले हैं, तो राम भक्त को भी अपने माता-पिता की आज्ञा माननी चाहिए और अपने भाइयों से प्रेम करना चाहिए। भगवान के अनुयायी भक्त को भगवान का सा स्वभाव बनाना चाहिए। भगवान का अवतार केवल राक्षसों का वध करने के लिए नहीं होता है। मनुष्य रूप में अवतार मनुष्यों को शिक्षा देने के लिए है। इसलिए भगवान के चरित्र से शिक्षा लेनी चाहिए। हम लोगों पर थोड़ा सा संकट आ जाता है तो हम व्याकुल होकर धर्म के मार्ग का त्याग करते हैं। इस संबंध में श्रीराम जी के उत्तम पवित्र चरित्र से शिक्षा लेनी चाहिए। राजगद्दी के महोत्सव की थी तैयारी, वनवास हुआ। बड़े भारी संकट की बात थी। वन में सीता का अपहरण हो गया, रावण कुंभकरण सरीखे बलवान से युद्ध करना पड़ा, ये सब बड़े संकट श्रीराम जी ने सहकर मनुष्यों को शिक्षा दी कि संकट में भी धर्म का त्याग मत करो। धैर्य धारण करके संकटों को सहन करो।

२०.—पाण्डवों के पिता बचपन में ही मर गये थे। दुर्योधन ने पाण्डवों को विष खिलाकर लाक्षा के घर में जला दिया। कपट जुआ में उनका राज्य छीना गया। द्रोपदी का भरी सभा में अपमान पाण्डवों के और द्रौपदी के वास्ते घोर संकट था परन्तु भगवान का आश्रय होने से सब संकट दूर हो गये। १३ वर्ष का वनवास कष्ट सहन करके, श्रीकृष्ण की आज्ञा से धर्म युद्ध करके, क्षत्रिय धर्म का पालन किया तो विजय हुई। आज पांचों पाण्डव, द्रौपदी, माता कुंती प्रातः स्मरण के योग्य हैं। अन्याय करने वाले पक्ष का विनाश हुआ। इतिहास और पुराणों में भक्त सज्जनों के गुण गाये जाते हैं। दुष्टों की निंदा की गई। इन सबसे मनुष्यों को शिक्षा मिलती है कि अपने कर्त्तव्य का, धर्म का पालन और भगवान का आश्रय लेना चाहिए। कष्टों से व्याकुल नहीं होना चाहिए।

२१.—कलियुग है ऐसा मानकर असत्य, मिथ्या, हिंसा, कपट नहीं करना चाहिए। कलियुग राजा है उसके अधर्म से बचकर उसमें जो गुण हैं उनकी बड़ाई करनी चाहिए उसका लाभ उठाना चाहिए। नास्तिक दुष्टों के लिए कलियुग बुरा युग है। आस्तिक भक्तों के, भगवन्नाम जपने वालों के लिए यह युग अच्छा है। इसके समान कोई दूसरा युग नहीं है यह बात श्रीभागवत, रामायण आदि में बार-बार कही गई है। ज्ञान-वैराग्य के साथ प्रभु की भक्ति करनी चाहिए। ज्ञान-वैराग्य केवल विरक्त साधुओं के लिए नहीं है। गृहस्थाश्रम में उसकी बड़ी आवश्यकता है। बिना ज्ञान-वैराग्य के गृहस्थाश्रम अति दु:खदाई है। परिवार के जितने सदस्य हैं यह अपने पूर्व जन्म के संस्कारों से मिले हैं अत: उनका प्रेम से पालन करना चाहिए। हमको अच्छा, हमारे मनके अनुकूल यदि कोई पुत्र, स्त्री, भाई आदि नहीं मिले तो उनके दोष नहीं है। वे बुरे नही हैं। हमारी तपस्या पूर्व जन्म का पुण्य ही कम है ऐसा मान कर संतुष्ट रहना चाहिए। आग के बिना, बिजली के बिना हमारा काम नहीं चलता है पर यदि हम चूक जाय तो वे हमारे प्राण ले लेंगे। जिस तरह आग बिजली से बचकर हम अपना काम करते हैं, उसी तरह से पड़ोसी या परिवार के सदस्य से सावधान रहकर काम लेना चाहिए।

२२.—अगर मन में पूरी श्रद्धा नहीं है फिर भी व्यवहार करने में श्रद्धावान की तरह ही व्यवहार करना चाहिए। धीरे-धीरे मन में श्रद्धा दृढ़ हो जायगी। नाम कीर्तन में, सत्संग में, प्रभु पूजन में जब तक श्रद्धा नहीं है, मन नहीं लगता है तो भी इन सब शुद्ध आचरणों को करना चाहिए, क्योंकि शास्त्र के प्रमाण से सब कल्याणकारी हैं। अत: इनका कभी त्याग नहीं करना चाहिए। औषध कड़वी है पर वैद्य कहता है कि यह गुणकारी है तो उसे बिना मन के भी पान किया जाता है। तब रोगों का नाश होता है। हम लोगों पर प्रभु की बड़ी कृपा है। गुरुदेव भगवान का आश्रय है। उनकी कृपा से सत्संग रहता है। नाम, रूप, लीला, धाम का चिंतन रहता है। इसके बाद अब प्रभु की ऐसी कृपा चाहिए कि जिससे हमारा मन पवित्र होकर प्रभु चिंतन में लगे। हम अपने मन और इन्द्रियों के अधीन होकर कुमार्ग में जाना चाहें तो प्रभु कृपा हमको रोके। सर्वेश्वर श्रीकृष्ण ही हमें बचाकर अपनी ओर आकृष्ट करें। उनके रूप का, नाम का, लीला का रस मिले, तब विषयों के रस से मन हटेगा। जिस प्रभु ने यहाँ तक कृपा

की है वे आगे भी कृपा करेंगे। हमको अनुकूल और प्रतिकूल सभी परिस्थितियों में प्रभु कृपा का अनुभव करना चाहिए।

२३.–साधक जीव अपने इष्ट के सामने रहता है उसकी सेवा-पूजा में मन को लगाकर रखता है तब उस भक्त जीव में उत्तम गुण, दया, क्षमा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अहिंसा आदि आ जाते हैं। वह भगवान के तुल्य दिखाई पड़ने लगता है। भगवान की दिव्य शक्ति उसमें आ जाती है फिर वह अपने मन में संतुष्ट रहकर अपना व अपने परिवार का कल्याण करता है। उस भक्त के पास बैठने से उसका स्मरण करने से भी शांति का अनुभव होता है। जीव इस लोक परलोक में कृतार्थ हो जाता है। जो प्राणी संसार के सम्मुख रहता है तो उसके मन में नित्य तरह-तरह की कामनाएं पैदा होती हैं। उन्हें पूर्ण करने के लिए धन की आवश्यकता होती है। धन कमाने में झूठ, चोरी, हिंसा, जुआ आदि का आश्रय लेता है। उस पाप से कारागार नरक का रास्ता बन जाता है। कामनाओं के पूर्ण न होने पर क्रोध, मोह की उत्पत्ति होती है। संसार के दोष मन में इस प्रकार भर जाते हैं कि जन्म जन्मान्तर तक उन पापों के संस्कार नहीं मिटते हैं। इसलिए मन भगवान की ओर रखना संसार में व्यवहार मात्र के लिए मन लगाना, वहाँ आसक्त नहीं होना।

सनमुख होय जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहि तबहीं।। (मानस-सुं० ४३/२)

भगवान कहते हैं कि जो मेरे सन्मुख हो जाता है उसके जन्म जन्मान्तर के पाप नष्ट हो जाते हैं। ईश्वर के नाम-रूप-लीला-धाम की महिमा जानने के लिए ईश्वर के निकट शरण में रहना होगा। संसार के गुण दोषों से बचने के लिए उन्हें समझने के लिए संसार से अलग रहना होगा अर्थात् मन को संसार से अलग रखना होगा।

२४.–सदाचार से हीन मनुष्य पूजा-पाठ से भी पवित्र नहीं हो सकता है। अतः सदाचार का सर्वदा पालन करना चाहिए। हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य ये दुराचार के मूल हैं। इनसे ईश्वर रक्षा करें। सत्यवादी सदाचारी का इस लोक में आदर होता है। सदाचारी पर ईश्वर प्रसन्न रहता है और उसका सर्वदा मंगल होता है। दुष्ट दुराचारी सर्वदा सृष्टि में रहते हैं पर इस कलियुग में उनका बाहुल्य है। शास्त्र में कहा गया, पूर्व पुरुषों द्वारा आचरण किया हुआ, अपनी सद्बुद्धि से किया गया आचरण ही सदाचार है।

२५.–कर्त्तव्यों का पालन करना ही भक्ति है। ईश्वर से प्राप्त शरीर-मन-इन्द्रियाँ सब ईश्वर की सेवा के लिए हैं इसलिए इनके द्वारा ईश्वर की आराधना ही करनी

चाहिए। भगवान का दिया हुआ परिवार भी भगवान का स्वरूप है इन सब में ईश्वर निवास करता है यह मानकर उनकी सेवा करना ईश्वर की भक्ति है। अपने शरीर से जो कुछ हम उपार्जन करते हैं उसके द्वारा शरीर परिवारी लोगों की सेवा करनी चाहिए। इन्द्रियों में मन को भगवान ने अपना रूप बताया है अतः ये मन ईश्वर को छोड़कर कही अलग संसार में पूर्ण रूप से लगेगा ही नहीं अतः मन को ईश्वर में लगाना चाहिए। परिवारीजनों को आपके मन की जरुरत नहीं है वे तो शरीर से उपार्जित अन्न, धन, वस्तु आदि के इच्छुक रहते हैं अतः शरीर से जो कुछ कमाओ उसे परिवारीजनों को दे दो। शरीर से व्यवहार भी उनके साथ करो पर मन को भगवान में लगाकर रखो। आप मन को, शरीर को संबंधी से लगा भी दें तो वे इस बात का अनुभव नहीं कर सकते हैं। चौबीस घंटे मन परिवारीजन से लगाकर रक्खो तो वह नहीं जानेगा किसी ने मुझमें मन लगा रक्खा है। केवल एक परमात्मा ऐसा है कि उससे मन लगाओगे तो वह स्वीकार करेगा। मन को शुद्ध करेगा। जितना मन प्रभु में तुम लगाओगे उतना ही प्रभु आप में मन लगावेंगे। प्रभु भक्त के कुटुम्ब का भी पालन करते हैं इसलिए प्रभु में मन लगाने से अपना और परिवार का सदा मंगल है। भगवान अपने भक्त के परिवार का बहुत ध्यान रखते हैं अतः परिवार के कल्याण के लिए भी भक्ति ही करनी चाहिए।

२६.–इस भूमि पर जो लोग श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रभु की सेवा करते हैं वे लोग शरीर छूटने के बाद भी भगवान की सेवा को प्राप्त करेंगे। जो लोग राग, द्वेष, हिंसा आदि में लगे हैं वे शरीर को छोड़कर निरंतर कष्ट, नर्क का अनुभव करेंगे। अतः प्रयत्नपूर्वक मन को, शरीर को प्रभु की सेवा में नियुक्त करना चाहिए।

२७.–परिवार के छोटे-बड़े सभी जिन्होंने कंठी ली है उन सबका विशेष कर्त्तव्य है कि–

–माता पिता की आज्ञा का पालन करें।
–आपस में सभी के साथ सत्यता का व्यवहार करें।
–झूठ नही बोलें।
–अपने में सहनशक्ति रक्खें।
–छोटी मोटी बातों में क्रोध न करें।

-किसी को गाली न दें।

-सायं प्रातः भगवान के सामने सभी एकत्र होकर स्तुति और भगवान को प्रणाम करें।

-अपना नित्य नियम पालन करें (मंगल कल्याण होता है)।

-अध्ययन करना, पाठ्य पुस्तकों को अच्छी तरह पढ़ना तथा फिर छोटों को पढ़ाना (इसी से अच्छा बोध हो जाता है)।

२८.–प्रातःकाल स्मरण और शयन करते समय भी प्रभु का स्मरण करके शयन करें। सभी व्यक्तियों में व्याप्त अन्तर्यामी परमात्मा रहता है। यदि भीतर परमात्मा न रहे तो हम लोग न चल सकते हैं न बोल सकते हैं। सारी इन्द्रियों को शक्ति देने वाला परमात्मा ही है। परमात्मा की शक्ति से परमात्मा की आराधना अवश्य करनी चाहिए। सभी प्राणियों में परमात्मा है यह बात परम सत्य है। इसे मानने वाले किसी के साथ अन्याय नहीं करते। किसी भी प्राणी का अपमान परमात्मा का अपमान है।

२९.–भगवान से नित्य प्रार्थना करें कि प्रभो! आप हमको वह शक्ति दो जिससे हम अपने कर्त्तव्य का पालन करें। आप हमारे पिता-माता हैं। आप हमारे सर्वस्व हैं। हम आपके हैं और आपकी शरण में हैं। आप मेरी रक्षा करो। श्री हनुमान जी सब संकटों से बचावें।

३०.–बिना सोचे समझे किसी कार्य को नहीं करना चाहिए। अविवेक सब दुःखों का स्थान है। सोच-विचार कर कार्य करने वाले की सभी संपत्तियाँ गुणों पर रीझती हैं और उसके पास स्वयं ही पहुँच जाती हैं।

तिमि सुख संपत्ति बिनहिं बोलाएँ। धरम शील पहिं जाहिं सुभाएँ।।

(मानस-बाल० २१३/३)

३१.–श्री प्रभु जी की प्रसन्नता का फल है कि बुद्धि शुद्ध रहे। विषयों की आशा न रहे। संसारी सम्पत्ति की प्राप्ति रामजी की कृपा का उत्तम फल नहीं है। भक्तजन संसार से विरक्त रहते हैं। प्रभु की इच्छा होती है तो वे लौकिक संपत्ति देकर लोक में भक्त का सन्मान बढ़ाते हैं।

कियौ गोपाल को सब होय।

जो अपनो पुरुषार्थ मानै झूठो है सब सोय॥

× × × × ×

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहि कोई॥ (मानस-बाल० २१७/१)

३२.—जिस प्रकार भक्त का कल्याण हो वैसा ही श्रीराम जी करते हैं। जो जो कुछ प्यारे श्रीराम जी करते हैं, भक्त उसी में संतुष्ट रहता है। तब ऐसे भक्त को जो अच्छा लगे वही श्रीराम जी करते और कराते है।

३३.—उद्योगी पुरुष को ही प्रारब्ध फल पूरा-पूरा मिलता है आलसी का प्रारब्ध भी नष्ट हो जाता है। अतः प्रभु से प्रार्थना करना, राज समाज में उद्योग करना, प्रभु का स्मरण करते रहना। स्मरण करके कार्य आरंभ करने वाले सफल होते हैं।

३४.—यह तो निश्चित ही है कि हम सभी परम पिता परमात्मा श्रीराम जी के पुत्र हैं, दास हैं। दासों पर, पुत्रों पर सभी कृपा करते हैं। श्रीसीताराम जी विशेष कृपा करते हैं। जब श्रीराम कृपा करते हैं तब हम लोगों को चिन्ता नहीं करनी चाहिए। आवश्यक यह है कि हमको एक दास की तरह, एक पुत्र की तरह रहकर प्रभु का स्मरण-भजन करना चाहिए। रामजी का दास सबका, अपने शत्रु का भी कल्याण चाहता है। सबको सुखी शान्त रखने का प्रयास करना चाहिए। संसारी लोग बिना कारण के द्वेष करें तो भी उनके साथ द्वेष और झगड़ा नहीं करना चाहिए। अपने हृदय को शान्त और मन को प्रसन्न रखना चाहिए। प्रभु हृदय के भाव देखकर ही प्रसन्न होते हैं।

३५.—संध्या गायत्री के नियमों का पालन करना चाहिए। ब्रह्मचर्य व्रत धारण पूर्वक अध्ययन करना यह मुख्य कर्त्तव्य है। मनुष्य की आयु १००वर्ष की मानी जाती है उसमें २५वर्ष विद्या अध्ययन के हैं। अध्ययन तपस्या है। तपस्वी जैसे संयम-नियमों का पालन करता है, उसी प्रकार ब्रह्मचारी को स्नान, पवित्रता, शुद्ध सात्विक भोजन आदि के नियमों का पालन करते हुए पढ़ना चाहिए।

३६.—मनुष्य का प्रथम कर्त्तव्य है कि किसी भी कार्य को विचारपूर्वक करे। बिना सोचे विचारे सहसा किसी काम को नहीं करना। कर्म का क्या फल मिलेगा यह पहले सोच लेना चाहिए। हमारे लिये हमारे पूर्वाचार्य गुरुजनों ने जो उपदेश दिए हैं उनके अनुसार लौकिक-वैदिक (पारलौकिक) कर्म करना चाहिए, और सिंहावलोकन भी करना चाहिए। सिंह का स्वभाव है वह कुछ दूर चलता है फिर पीछे घूम कर देखता है। इस प्रकार अब

तक इतने दिनों से जो करते थे उसका मुझको क्या लाभ मिला अथवा उससे क्या हानि हुई इस पर विचार कर, जहाँ अपने व्यवहार में विचार में त्रुटि दिखाई पड़े उसमें दृढ़ता से सुधार करना चाहिए।

३७.–अपने शरीर के आराम के लिए अति अधिक धन का और समय का खर्च नहीं करना चाहिए। संसारी कामों में आमदनी के अनुसार ही खर्च करना चाहिए। अपने से छोटों को शिक्षा देने के लिए अपने आचरण को सदा पवित्र रखना चाहिए।

३८.–संसार के सभी प्राणियों में परमात्मा सूक्ष्म रूप से विराजमान हैं, अतः किसी भी प्राणी का अपमान ईश्वर का अपमान है। प्राणियों का सन्मान ईश्वर पूजा है। पिता-माता आदि का, गुरुजनों का अपमान उनके वध के समान है। अपने मुँह अपनी बड़ाई करना आत्महत्या के समान है। अपने द्वारा हुए पुण्यों का वर्णन तथा अपनी प्रशंसा आत्महत्या के समान है।

३९.–महाभारत के युद्ध में कर्ण के बाणों से घायल युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा-तुम्हारे गाण्डीव को धिक्कार है। इस पर अर्जुन ने झट म्यान से तलवार निकाल ली वे युधिष्ठिर का वध करना चाहते थे। अर्जुन का कहना था कि मेरी प्रतिज्ञा है कि जो मेरे गाण्डीव की निन्दा करेगा उसे मैं मार डालूँगा। श्रीकृष्ण ने कहा प्रतिज्ञा पालन में अपने गुरुजनों की हत्या होगी पर यह महान पाप होगा। अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करने के लिए तुम युधिष्ठिर का तुम-तू कहकर तिरस्कार कर दो यह वध के समान होगा। अर्जुन ने तू कहकर बड़े भाई का तिरस्कार किया, प्रतिज्ञा पूरी हो गयी। युधिष्ठिर और अर्जुन दोनों के मन में दुःख था। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा तुम बड़े भाई का अपमान करके आत्महत्या करना चाहते हो तो अपनी बड़ाई करो वह आत्महत्या के समान होगी। अर्जुन ने ऐसा ही किया। युधिष्ठिर अर्जुन के अपमान से दुःखी हुए तो प्रतिज्ञा का रहस्य समझाकर श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को प्रसन्न किया। दोनों के प्राणों की रक्षा की। तात्पर्य यह कि बड़ों का तिरस्कार नहीं करना चाहिए।

४०.–पाप करके अर्थात् किसी की हिंसा से, झूठ से, कमाया धन अशांति पैदा करता है। पापी पैसा तो जहर से भी भयंकर है। अपने परिवार का पालन आदि करने के लिए भी जब हम पाप नहीं करेंगे तब परमेश्वर हमारी चिन्ता करेगा। हमारा पालन पोषण करेगा। हमारी अपनी चिन्ता हम करेंगे तो हम अपना भला नहीं करेंगे। जब ईश्वर

का चिंतन करेंगे तो उससे हमारा भला स्वयं ईश्वर करेगा। अपने वर्ण का धर्म पालन करते हुए ही सन्तों ने ईश्वर का भजन किया। महाराष्ट्र के गौराई चाचा कुम्हार थे, मिट्टी के बर्तन बनाकर जीविका चलाते थे। नामदेव छीपा थे, दर्जी का काम करके जीविका चलाते थे। सेन भक्त हजामत बनाते थे। श्रीकबीर जी कपड़ा बुनते थे और रैदासजी जूता बनाते थे और भगवान का भजन करते थे, इसलिए सब सिद्ध हुए। सबको ईश्वर की प्राप्ति हुई। जब भजन में मन का लय हो गया शरीर का होश न रह गया तब वर्ण का धर्म छूट गया।

४१.–जब तक मन प्रभु में तल्लीन न हो जाय तब तक अपने कर्म को करते रहना चाहिए। कर्म करने का उद्देश्य प्रभु की प्रसन्नता ही होनी चाहिए। जिस प्रकार प्रभु प्रसन्न हो वही कार्य करना चाहिए। हम जब भगवान के अनुकूल रहेंगे तो भगवान हमारे अनुकूल रहेंगे।

४२.–प्रणियों से द्वेष करने से हृदय मलिन हो जाता है। मेरे साथ किसी ने अपकार किया ऐसी स्थिति में भी अपने मन को शुद्ध रखने के लिए अपकारी के साथ भी द्वेष नहीं करना चाहिए। मेरा ही प्रारब्ध ऐसा था कि मेरी हानि हुई मेरा अपमान हुआ। कोई भी किसी को सुख-दु:ख देने वाला नहीं है। आपने प्रारब्ध से प्राणी को सुख-दु:ख मिलता है।

काहु न कोउ सुख दु:ख कर दाता। निज कृत कर्म भोग सबु भ्राता।। (मानस-अयो० ९२/४)

ऐसा मन से समझ लेने से मन में किसी के प्रति राग-द्वेष पैदा नहीं होगा। मन में राग-द्वेष आवे तो उक्त चौपाई को बार बार पढ़ना चाहिए।

४३.–प्रेम का विस्तार करने के लिये श्रीराम जी सम्मुख आने वाले को देखकर मंद मुस्कराते और स्वयं पहले ही बोलते, प्रणाम आदि करते। अहंकारी चाहेगा कि दूसरा मुझे प्रणाम करें। मुझसे बोले। नहीं बोलता तो दूसरा भी नहीं बोलता है। इस प्रकार द्वेष बढ़ता है। रामजी का अनुकरण करें। प्रेम का पाठ पढ़ना और पढ़ाना चाहिए। जय श्रीराम।

४४.–परिवार में ही शत्रु-मित्र पूर्व जन्म के संस्कारों से बन जाते हैं। **'सो सबु सहिअ जो दैउ सहावा।'**(मानस-अयो० २४५/६) शारीरिक, आर्थिक क्षति के साथ समाज

की निंदा अवश्य होती है पर ऐसे अवसर, ऐसी घटना से शिक्षा ग्रहण कर उसे सहर्ष स्वीकार कर हृदय में सहनशक्ति को बलवती बनाना चाहिए। बड़ों पर बड़े संकट आते हैं। छोटों पर छोटे। शुभं भूयात्।

४५.–जनता जनार्दन की सेवा भी भगवान की सेवा है। निष्काम भाव से की गई यह सेवा कभी-कभी भजन से भी श्रेष्ठ बन जाती है। संकट में पड़े व्यक्ति को अन्न, जल, वस्त्र, औषध आदि के दान से उसमें विराजमान भगवान प्रसन्न हो जाते हैं। इसलिए प्राणी मात्र की सेवा करने वाले का भी उद्धार हो जाता है। भूले भटके को रास्ता बता देना, कुमार्ग से बचाकर सन्मार्ग पर चलाना, हरि भक्ति के पथ पर जीवों को पहुँचाना, ये सब ईश्वर को प्रसन्न करने के उत्तम साधन हैं। सच बात तो यह है कि इन उपकारों के लिए ही यह मनुष्य शरीर मिला है। इसलिए सबकी उन्नति में अपनी उन्नति मानना, दूसरों के विनाश में अपना विनाश समझना यही संत का लक्षण है। मनुष्य का शरीर मिथ्या भोगों को भोगने के लिए ईश्वर ने नहीं दिया है। खान, पान, निद्रा, संतान उत्पन्न करना आदि ये सुख कूकर-शूकर आदि की योनियों में भी सुलभ हैं, केवल विवेक, ज्ञान, भक्ति, पशु योनियों में नहीं है। अतः मनुष्य शरीर से विवेक प्रेम प्राप्त कर ईश्वर की आराधना करनी चाहिए। यही उपदेश दूसरों को देना चाहिए।

४६.–श्रीभक्तमाल में भक्त चरित्रों का वर्णन करने में सबसे अधिक नाभाजी ने परोपकार में विशेषण दिये हैं अर्थात् पर उपकार यह सभी भक्तों के स्वभाव में सहज रूप से रहता है। मन वाणी से उपकार करना यह सबका सहज स्वभाव है।

पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया॥ (मानस-उत्तर० ७/१४)

'परोपकाराय सतां विभूतयः।' सज्जनों की सम्पत्ति परोपकार के लिए ही होती है।

४७.–ईश्वर ने कृपा करके जो सम्पत्ति या वस्तु जीव को दी है उसके द्वारा ईश्वर का, उनके भक्तों का सत्कार सेवा करना चाहिए। जो लोग ऐसा नहीं करते हैं तो फिर दूसरे जन्म में परमात्मा उन वस्तुओं को छीन लेता है। कूकर, शूकर, गर्दभ, बैल आदि की योनियाँ देता है। हाथों से सेवा नहीं की तो हाथ छिन गये, वाणी से कीर्तन कानों से भगवद् गुण श्रवण नहीं किया तो स्पष्ट भाषण-कीर्तन योग्य वाणी नहीं रही। श्रवण करके भी ज्ञान विवेक आदि शक्ति नहीं रही। **'भजन बिनु बैल बिराने ह्वै हौं।'** ऐसा सूरदासजी ने लिखा है। इन्द्रियों से भजन न करने पर पशु योनि में जो

इन्द्रियाँ मिलती हैं वे मात्र भोगों को भोगने के लिए होती हैं। उनका सेवा भक्ति में सदुपयोग नहीं हो पाता है।

४८.–**'रामः सर्वत्र राजते।'** श्रीराम जी सर्वत्र विराजमान हैं। धर्मशील अर्थात् धर्मपालक के पास सभी प्रकार की सुख सम्पत्तियाँ बिना बुलायें ही आ जाती हैं।

तिमि सुख सम्पति बिनहि बोलाएँ। धरमशील पहिं जाहिं सुभाएँ।। (मानस–बाल० २९२/३)

गुणलुब्धा स्वयमेव सम्पदः।

सम्पतियाँ रूप–गुणों पर रीझती हैं। विवेकपूर्वक कर्म करने वाले संकट से बच जाते हैं। बिना सोचे विचारे जो कर्म करता है उस पर अनेक आपत्तियाँ आती हैं। कर्म के आरंभ में परिणाम पर विचार करना चाहिए। मेरे कर्म का क्या फल मिलेगा? मुझे तथा दूसरों को सुख अथवा दुःख होगा? इस कर्म की लोक में प्रशंसा या निंदा होगी? यह कर्म भजन में बाधक है या साधक है इस पर विचार करके ही कोई काम करना चाहिए। इसी प्रकार संत भगवन्त के शुभ आशीर्वाद भी सज्जनों को बिना माँगे मिल जाते हैं। भक्ति का आचरण करने वाले साधु–संतों के स्वयं श्रीहनुमान जी रक्षक हैं। असुर निकंदन हैं। दुष्टता करके फिर हनुमानजी का शुभ आशीर्वाद मिलना कठिन है। प्रभु दीनदयालु हैं वे आप सबों पर दया करें। सत्संग सेवा में रुचि बढ़े।

४९.–बड़े बड़े ऋषि मुनि आत्म कल्याण के लिए निर्जन बनों में कठोर व्रत एवं तपस्या करते हैं। दूसरों की भलाई के लिए कुछ नहीं करते हैं, परन्तु जो परोपकारी भक्त हैं, वे विश्व कल्याण के लिए सब कुछ करते हैं।

५०.–सद्गति को प्राप्त करने के दस साधन बताये गए हैं–मौन, ब्रह्मचर्य, शास्त्र पुराण श्रवण, तपस्या, स्वाध्याय, भक्तिवर्धक ग्रंथों का पठन, स्वधर्मपालन, युक्तियों से शास्त्रों की सही व्यवस्था, एकान्त सेवन, जप समाधि। लेकिन जिसकी इन्द्रियाँ वश में नही हैं उनके लिए ये साधन जीविका चलाने के साधन बन जाते हैं। प्रभु प्राप्ति या सद्गति नहीं होती है। ऐसे दंभियों का जब भण्डाफोड़ होता है तब कलई धुल जाती है। पोल खुलने पर बदनामी होती है। तब वे साधन जीविका निर्वाह करने में भी समर्थ नहीं होते हैं।

५१.—जो कुछ भी हो सच्चाई पूर्वक हो, दीनता पूर्वक हो। प्रभु, पिता-माता अपने बालकों का सर्वदा हित ही चाहते हैं। उन्हीं का आश्रय लेना चाहिए। जय श्रीराम।

५२.—चित्त की एकाग्रता के विरुद्ध अनेक ऐसी परिस्थितियाँ हैं कि मन बहिर्मुख हो जाता है, पर मन, वाणी, शरीर के द्वारा जो भजन का नियम है उससे एक न एक से भजन बनेगा ही। मन के चंचल होने पर वाणी-शरीर भजनरत रहें तो मन अपने स्थान पर फिर आ जायेगा। जो कार्य सरकारी सेवा के, गृहस्थाश्रम के हैं उन्हें निरालस्य होकर श्रद्धा से, सच्चाई से करने पर प्रभु प्रसन्न होंगे क्योंकि प्रभु के दिए हुए कार्य हैं। उन्हें पूर्ण करना प्रभु की सेवा ही है। प्रतिकूल परिस्थिति आने पर भी भगवच्चिन्तन करना चाहिए। धैर्य धारण करना चाहिए। प्रभु सब प्रकार से मंगल के विधाता हैं। अपने भक्त पर उनका विशेष अनुग्रह रहता है। श्रीकृष्णः शरणं मम।

५३.—इस संसार में मनुष्य अपने प्रारब्ध के अनुसार सुख-दुःख भोगता है। जो लोग आराधना, तप, सत्संग में लगे रहते हैं, उनके प्रारब्ध के दुःख कम हो जाते हैं, सुख बढ़ जाते हैं। भक्ति और ज्ञान की पूर्णता पर प्रारब्ध नष्ट हो जाता है। जीव मुक्त होकर ऐसे लोक को जाता है जहाँ से लौटकर आवागमन के चक्र में नहीं पड़ता है। कुछ प्राणी इस लोक में सुख भोगते हैं और परलोक में दुःख। किन्हीं को दोनों ही लोकों में सुख मिलता है। किसी को दोनों लोकों में दुःख उठाना पड़ता है।

जिसके पास अधिक धन एवं सुखों की सामग्रियाँ होती हैं वह उसी के संग्रह में लगा रहता है। उसे इस लोक में सुख मालूम पड़ता है परन्तु परलोक में सुख नहीं मिलता है। जो प्रारब्ध के अनुसार प्राप्त सुखों को भोगता है पर उनकी लालसा नहीं रखता है वह कठिन तपस्या आराधना में शरीर से दुःख उठाता है उसे परलोक में सुख मिलता है। इस लोक में दुःखी दिखाई पड़ता है पर वह मन में सुखी रहता है, क्योंकि मन सहित इन्द्रियों के दमन से उसे शान्ति मिलती है।

५४.—जो लोग धर्म का आचरण करते हैं, धर्मपूर्वक धन का उपार्जन करते हैं, समय से विवाहादि करके स्त्री के साथ यज्ञ-आराधना में धन का उपयोग करते हैं, उनके लिए यह लोक और परलोक दोनों ही सुख के स्थान हैं। जो विद्या, तप, दान,

भजन के लिए प्रयत्न न करके विषयों के क्षणिक तामसी सुखों में, उनकी प्राप्ति में प्रयत्न करते हैं उन्हें दोनों लोकों में दुःख ही मिलता है। बुद्धिमान वह है जो दोनों लोकों को सुधारे।

सत्य, सदाचार, भजन, सत्संग का सुख सबसे श्रेष्ठ है उसे ही प्राप्त करने के लिये इच्छा और प्रयत्न करना चाहिए। धन एवं सुख सामग्रियों का उपार्जन इस प्रकार करना चाहिए कि उसमें पाप न हो। किसी को कष्ट न हो अथवा पाप से बचने का यत्न करने पर भी यदि पाप बन जाय तो उसका प्रायश्चित करना चाहिए।

५५.–श्रद्धापूर्वक किया हुआ दान, हवन, भजन अनन्त फल देता है। जैसे अपरिचित व्यक्ति के हाथ का भोजन लोग नहीं करते हैं उसी प्रकार अश्रद्धालु के किए हुए हवन–पूजन को देवता लोग स्वीकार नहीं करते हैं। वस्तु का महत्व नहीं श्रद्धा–प्रेम का महत्व है।

५६.–पाप और पुण्य ये दोनों छिपाने से बढ़ते हैं। प्रकट होने से, स्वयं अपने मुख से कहने से वे घटते हैं। नष्ट हो जाते हैं। अतः अपने द्वारा हुए पापों को प्रकट करना चाहिए और गुणों को छिपाना चाहिए। जो बात सच्ची है, वह मान लेनी चाहिए। मन से हम जैसा जानते हैं वैसा ही मधुर शब्दों में कह देना सत्य है। सत्य ही ईश्वर है वह सभी में व्याप्त है। उसे स्वीकार करके जो प्राणियों के साथ व्यवहार करता है, वही सत्यवादी है। अन्तर्यामी रूप से ईश्वर सभी प्राणियों में विराजमान है। इस बात को मानकर जो प्राणियों के साथ व्यवहार करता है, वही सत्यवादी है। हम भक्ति, सेवा पूजा संबंधी इच्छाओं को पूर्ण करने का अवश्य ही प्रयत्न करें इसके अतिरिक्त संसारी इच्छाओं को पूर्ण करने का जो प्रयत्न करता है वह न तो भक्त है, न ज्ञानी। उसका प्रेम निर्गुण–सगुण ब्रह्म में नहीं हो सकता है क्योंकि वह भोगों में आसक्त है।

५७.–संसार को उपदेश देने के पहले जो स्वयं अपने को उपदेश नहीं देता है वह कभी भी गुरु नहीं बन सकता है। अपने आप का गुरु जगद्गुरु बन जाता है, **'पर उपदेश कुसल बहुतेरे।'** (मानस–लंका० ७७/२) ऐसे गुरु सच्चे गुरु नहीं है। शास्त्र और गुरु के उपदेश मानकर अपनी लगन से अपना कल्याण हो सकता है। अगर हमारी ईश्वर में लगन नहीं लगी है तो गुरु और शास्त्र क्या करेंगे? सिद्ध संत, सद्गुरुदेव कुपात्र

को सुपात्र बना कर उसका कल्याण करते हैं जैसे पीपाजी ने सिंह का और रसिकमुरारीजी ने हाथी का कल्याण कर दिया।

५८.—प्रत्येक प्राणी संसार में युद्धरत है, संसार के व्यवहार-व्यापार सब एक प्रकार के युद्ध ही हैं। इन्हें करते हुए भी इष्टदेव का स्मरण करना चाहिए। जो लोग उक्त विधि से गीता की आज्ञा से युद्ध करते हैं उनकी विजय होती है। भगवान ने अर्जुन से कहा हमारा स्मरण करो और युद्ध करो। **'मामनुस्मर युद्ध च।'** स्मरण के साथ युद्धकर्ता हारने पर भी जीत का सुख पाता है। गीता में कृष्ण का उपदेश है कि जय-पराजय, सुख-दु:ख, हानि-लाभ में समभाव रखने वाला ज्ञानी सुखी है। कर्त्तव्य है क्षत्री का, अत: युद्ध करो। हार जीत की चिन्ता न करो। धर्म युद्ध में मरकर स्वर्ग या मोक्ष पावोगे और जीत कर कीर्ति व राज्य प्राप्त करोगे। ईश्वर से तो केवल ईश्वर प्रेम की ही याचना करनी चाहिए।

५९.—जो दूसरे का भला सोचता है उसका भला स्वयं होता है। जो दूसरों के साथ अपकार करते हैं वे कभी सुखी नहीं रह सकते हैं। अपने रास्ते को, सज्जनता को नहीं छोड़ना चाहिए। कभी कभी सन्मार्ग पर चलने वाले भी संकट में पड़ते हैं पर वे घबराते नहीं हैं। उनकी परीक्षा हो जाती है। तपे सोने के समान चमक उठते हैं।

६०.—संसार में सभी अमीर-गरीब दु:ख और सुख का अनुभव करते हैं। जो भाग्यशाली हैं वे संसार के कष्टों से ऊबकर प्रभु की ओर जाते हैं। जिन पर कृपा नहीं है वे हजार कष्टों को सहते हुए भी सुखमय भगवान का नाम नहीं लेते है। स्वयं श्रीराम ने अपने जीवन में वनवास आदि का कष्ट सहन करके, धर्म का पालन करके मानव मात्र को शिक्षा दी है कि अपने कर्त्तव्य का पालन करो, धर्माचरण करो, बड़ों का आदर करो। संसार में आसक्त की तरह व्यवहार, व्यापार को करते हुए संसार को नाशवान, दु:खमय मानकर उससे मन ही मन विरक्त रहना चाहिए।

६१.—जो बड़ों का सन्मान करते हैं, उन्हें आदर देते हैं, उनकी आज्ञा का पालन करते हैं उनका कल्याण होता है। अम्बा के प्रसंग में श्रीपरशुराम जी ने भीष्म पितामह से आग्रह किया कि इसके साथ ब्याह करो, ब्याह न करने की प्रतिज्ञा थी अत: इन्कार कर दिया। परशुरामजी ने कहा तो मेरे साथ युद्ध करो। तब भीष्मपितामह ने परशुरामजी के चरणों की

वंदना की। उन्हें विजय को छोड़कर सब आशीर्वाद दिए, परिणाम यह हुआ कि परशुरामजी को हार माननी पड़ी।

६२.—महाभारत युद्ध के आरंभ में कवच, धनुष बाण त्यागकर युधिष्ठिर ने भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और शल्य के चरणों की वन्दना की। सबने कहा पुरुष अर्थ का दास है अर्थ किसी का दास नहीं है। मैं युद्ध कौरव पक्ष से करूँगा पर विजय तुम्हारी होगी मेरा आपको आशीर्वाद है। नित्य तुम्हारी विजय की कामना करूँगा। इस समय यदि तुम हमारे पास न आते तो हम लोग तुमको शाप देते और तुम्हारा अमंगल होता। जाओ तुम मुझसे लड़ो, मेरे ऊपर बाणों का प्रहार करो तुम्हें पाप नहीं लगेगा।

बड़ों को आदर देने से, उनकी आज्ञा से युद्ध करके युधिष्ठिर की विजय हुई। गुरुजनों की हत्या का पाप नहीं लगा। अतः बड़ों का आदर करना चाहिए।

६३.—नियम यह है कि दी गई वस्तु मिलती है। पिछले जन्म में जिसने धन दिया है वह आज धनी है, विद्या दी है तो विद्वान है। यदि दूसरों को सुख देंगे तो हम भी सुखी रहेंगे। दूसरों को दु:ख देने वाले को दु:ख अवश्य मिलता है। थोड़े समय का जीवन है। धनी गरीब सभी मरेंगे। उसके बाद किया गया पुण्य और पाप कर्म जो होगा उसके पीछे पीछे जीव चलेगा। नर्क, स्वर्ग,अच्छी, बुरी योनि पायेगा। इसलिए सत्कर्म का ही अनुष्ठान करना चाहिए।

६४.—शारीरिक दौर्बल्य, अवस्था के अनुसार स्वाभाविक है। जिसका जन्म हुआ है उसका मरण अवश्य होगा। जन्म लेना, बढ़ना, बूढ़ा होना, मरना ये शरीर के धर्म हैं। इनसे घबड़ाना नहीं चाहिए। एक को मरते देख कर समझना चाहिए कि हम भी मरेंगे। यदि मरना है तो सब कुछ यहीं छूट जायगा तो फिर किसी के साथ अन्याय क्यों करें? झूठ क्यों बोलें? दुष्टता क्यों करें? सभी प्राणियों में भगवान को व्याप्त समझकर उनसे प्रेम रखना, दयापूर्वक व्यवहार करना। परोपकार की भावना रखना इसी से प्रभु प्रसन्न होते हैं। मन ही मन विचार करना चाहिए।

६५.—**'ईश रजाय शीश सबही के।'** सब कुछ ईश्वर के अधीन है। ईश्वर की आज्ञा सूर्य, चन्द्र, लोकपाल सभी के ऊपर है। वेद स्मृतियाँ ईश्वर की आज्ञा हैं उनमें लिखे नियमों का पालन करना ही आज्ञा मानना है। सत्य, दया, क्षमा, सदाचार, ब्रह्मचर्य आदि का पालन करने वाले ईश्वर के आज्ञाकारी भक्त हैं। मिथ्या, छल, कपट से जीवों

को दुःख देने वाले अभक्त हैं। विमुख लोग मन में शान्ति का अनुभव नहीं कर पाते हैं। अपने मन को शान्त एवं प्रसन्न रखने से शरीर भी स्वस्थ रहता है। सभी प्राणियों में परमात्मा है यह सत्य है, इसलिए जहाँ तक हो सके किसी को कष्ट नहीं देना चाहिए। भक्त की सेवा से भगवान प्रसन्न होते हैं। हनुमानजी भक्त है उनकी सेवा से रामजी प्रसन्न होंगे। जय श्रीराम।

६६.—जो लोग अपने मन को भगवान में लगाते हैं, वाणी से नाम-गुणों का कीर्तन करते हैं, शरीर से मंदिर में सेवा करते हैं वे भाग्यशाली हैं। इन्हीं कामों को प्रेम पूर्वक करते करते भगवान के रूपों का हृदय में साक्षात्कार कर लेते हैं। संसार में प्राणी निरंतर सुखी नहीं रह सकता है। कभी सुख कभी दुःख प्रारब्ध के अनुसार मिलते हैं। इनसे घबड़ाना नहीं चाहिए। सच्चाई के साथ व्यवहार करते हुए किसी का बुरा नहीं सोचना चाहिए। अपने साथ बुराई करने वाले को भी सज्जन शाप नहीं देते हैं। ऐसे परोपकारी पर भगवान प्रसन्न रहते हैं। कष्ट के समय भक्त की परीक्षा होती है। परीक्षा समझकर बुद्धि को स्थिर करके कष्ट सहन करना चाहिए। इतिहास देखने से पता चलता है कि बड़े बड़े भक्तों को, अवतार काल में परमात्मा को कष्ट सहन करते देखा जाता है। कष्ट काल में भी अपने धर्म का त्याग न करके जो उपकार करता है, वही धन्य है।

६७.—जो करना चाहिए उसे कर्त्तव्य कहते हैं, वही धर्म भी है। अतः शास्त्र एवं बड़ों की सम्मति से जो कर्त्तव्य है उसे तत्परतापूर्वक करना चाहिए। अधिकारी शासक को मालिक बनने की इच्छा नहीं करनी चाहिए। भक्त राजा अपने को राजा नहीं मानते थे। अम्बरीष चक्रवर्ती सम्राट थे पर प्रभु की सारी सेवाएँ अपने हाथ स्वयं ही करते थे। सज्जन तपस्वी स्वयं ही दास होते हैं किसी को अपना दास नहीं बनाते हैं। अधिकारों को भूल ही जाया जाय तो अच्छा है।

६८.—अपना सच्चा धन वह है जो मरने पर भी अपने साथ जावे। सच्चे धन में ममता करके उसे एकत्र करने की कोशिश करनी चाहिए। झूठा धन इस लोक के, शरीर के व्यवहार के काम का है उसमें ममता उतनी ही करनी चाहिए जिससे काम चले।

६९.—आप कुसंग से बचकर सत्संग का आश्रय लें। अपने कर्त्तव्य का पालन करते रहें किसी को अपमानित न करें। स्वयं कष्ट सहकर दूसरे को कष्टों में न डालने वाला सज्जन ईश्वर को प्रिय है। वही सुखी है। उपदेश देने से लेना अच्छा है। पढ़ना नहीं छोड़ना चाहिए। राजा रंक सभी इस दुनिया में चार दिन के मेहमान हैं। अतः ईश्वर का आश्रय लें। यहाँ कष्ट सहने वाला सज्जन परलोक में सुखी रहता है। दूसरों को दुःख देकर जो यहाँ सुखी रहना चाहता है वह परलोक में दुःख पायेगा।

७०.—आयु के प्रथम भाग में मन लगाकर विद्या का अध्ययन करना चाहिए। दूसरे भाग में धन का अर्जन कर्त्तव्य है। तीसरे में धर्म ज्ञान की उपासना करके चौथे में सर्व त्याग करके प्रभु की भक्ति करनी चाहिए। जिन कर्मों को हम बुरा समझें उन्हें छोड़ दें। यदि ऐसा नहीं करते हैं तो अपने को धोखा देते हैं, जान बूझकर गरल (विष) का पान करते हैं।

सत्य सदाचार का पालन अमृत पान है। कुसंग त्यागकर सत्संग में रहने वाला दोनों लोकों में सुखी रहता है। संसार में व्यवहार परोपकारमय रहना चाहिए। सबसे प्रेम रखना ही ईश्वर भक्ति है।

७१.—अपने मन में सबके प्रति सद्भाव बनाये रखना चाहिए। दूसरे लोग मेरे प्रति ईर्ष्या-द्वेष रक्खें तो उससे हमारा कुछ भी न बिगड़ेगा। ईर्ष्या-क्रोध जिसके मन में है उसी की हानि होगी। हृदय अशान्त हो जायगा। क्रोध-ईर्ष्या से हृदय का रोग भी पैदा हो जाता है। मन शांत रहने से शरीर स्वस्थ रहेगा। स्वयं शान्त रहकर दूसरे को शान्त रख सकेंगे। हम क्रोध करेंगे तो दूसरे को भी क्रोध की प्रेरणा मिलेगी।

सभी जीव ईश्वर के अंश है इसलिए सबके प्रति सद्भाव बनाकर रखना चाहिए। इसी से प्रभु प्रसन्न होंगे। यही सच्ची भक्ति है। बिना कारण के उपकार करने वाले दो हैं—१. ईश्वर २. भक्त। शेष सब स्वार्थी हैं।

७२.—संसार के व्यवहार, व्यापार संग्राम के तुल्य हैं। **'मामनुस्मर युद्ध च।'** के अनुसार हरि स्मरण करते हुए जो संसार में संसारी कर्त्तव्य-कार्यो का सम्पादन करते हैं, वे सफल होते हैं। जब कोई अपना वश नहीं रहता है तब हरि स्मरण से मार्ग दिखाई

पड़ जाता है। कठिन कार्य भी सरल हो जाते हैं अतः कर्त्तव्य के पालन में सावधानी चाहिए पर शरीर क्षयकारिणी चिन्ता को हृदय में स्थान नहीं देना चाहिए।

७३.—जो हुआ है ठीक हुआ है और जो होगा ठीक ही होगा।

'कियौ गोपाल को सब होय।

× × × × ×

'राम कीन्ह चाहहि सोई होई। करै अन्यथा अस नहि कोई॥'

राजी हम उसी में हैं जो हो रहा है।

७४.—बालक पढ़ने में लगे रहें जितना कुछ धन-जन प्राप्त है उसमें संतुष्ट रहें। वृद्धि के लिए न्यायपूर्वक यत्न करते रहें। अन्यायपूर्वक वृद्धि करते हुए दुर्योधन का विनाश हो गया।

७५.—मन की स्थिति का प्रभाव शरीर पर पड़ता है अतः मन से प्रसन्न रहो। मन को आराधना उपासना में सायं-प्रातः थोड़ी देर जरुर लगाओ। ईश्वर मंगलमय है और अपने भक्त का मंगल विधान करते हैं।

७६.—भगवत् कृपा ही कुशल है। जो लोग संसार में मर्यादापूर्वक रहते हुए यथा समय, यथा शक्ति दूसरों की भलाई करते हैं, भगवान के भरोसे रहते हैं, उनका जीवन ही जीवन है। अपने परिवारी सभी प्राणी हैं, क्योंकि सभी का पिता परमात्मा है। किसी जीव को दुःख देने से परमात्मा को ही दुःख पहुँचता है। अतः अकारण किसी को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिए। दुःख देने से दुःख और सुख देने से सुख प्राप्त होता है। जिसकी पवित्र कीर्ति संसार में फैली है वह प्राणी स्वर्गवासी होता है। जिसकी बदनामी इस संसार में फैलती है वह अन्त में नरकवासी होता है। अतः अपकीर्ति से बचने का प्रयास सदा करना चाहिए।

७७.—काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, मत्सर इन्हें षट् विकार कहते हैं इन्हीं में फँसकर पाप होते हैं। चौरासी चक्र में जीव पड़ता है। अपने कर्मो से दुःख भोगता है। **'जो जस करिइ सो तस फल चाखा।'** इनसे बचने का उपाय यह है कि उत्तम विचारों को अभ्यास के द्वारा मन में दृढ़ करना जैसे-

१. इस संसार को छोड़कर हमको जाना पड़ेगा। अन्त में सब कुछ छूटेगा इसलिए मन से आसक्त न होकर व्यवहार का निर्वाह करना चाहिए।

२. सगे संबंधी सभी स्वयं काल के कलेवा हैं वे हमारी रक्षा नहीं कर सकते अतः प्रभु की शरण लेना चाहिए। बड़े बड़े सेठ, राजा, शूरवीर भी बिना शरणागति के चौरासी चक्र में पड़ जाते हैं। चार दिन की चाँदनी है।

७८.–प्रारब्ध में जो कुछ सुख-दुःख होंगे वे अवश्य मिलेंगे। इसलिए अपने कर्त्तव्य कर्मों का आचरण करते रहना चाहिए। मन में प्रभु चरण चिन्तन, नाम जप एवं कोई भी लीला, रूप के वाक्य का कीर्तन करते रहना चाहिए। जिसको पाना चाहता है वह नहीं मिलता है जिसे नहीं चाहता वह मिल जाता है प्रारब्धवश। अतः मन को प्रभु में लगाने का यत्न करना चाहिए।

७९.–जिस घर में बड़ों का, बालकों का, माता-बहनों का आदर होता है वहाँ देवता रमण करते हैं। पारस्परिक सद्‌भावना बनाये रखने के लिए सहनशीलता होना आवश्यक है। हम देवताओं से, संतों से बार बार आशीर्वाद माँगते हैं यह ठीक है। माँगना चाहिए परन्तु आशीर्वाद प्राप्ति के साथ ही पात्रता अत्यावश्यक है। वस्तु उत्तम है पर कुपात्र में अशुद्ध हो जाती है, अतः पात्रता मिलनी चाहिए। हमें पात्रता प्राप्ति के लिए मानसिक शुद्धि के लिए नाम रूपादि की शरण लेनी चाहिए।

८०.–संसार में विरक्त ज्ञानी-भक्त को छोड़कर कोई दूसरा सुखी नहीं है। संसार जैसा आज है ऐसा ही पहले था और आगे भी रहेगा। दुःखमय संसार है सुख का आभास मात्र है। संसार से मन को हटाकर संसार के रूप को समझा जा सकता है। ईश्वर में मन लगाकर ईश्वर को समझा जा सकता है। संसार से हटे बिना मन रामजी में नहीं लगेगा। रामजी में मन लगे बिना संसार नहीं छूट सकता है। धीरे धीरे नाम, रूप, लीला, धाम में मन लगाना चाहिए। भक्त का संसार भगवन्मय होता है अतः वह संसार परिवार में सुखी रहता है।

८१.–दिल्ली का बादशाह तख्त को नहीं छोड़ रहा था। बूढ़े बाप को जेल में बन्द करके बेटा राजा बन बैठा। यह काम कंस ने भी किया। वृद्ध को चाहिए कि घर

के लोगों को अपने अनुशासन में वहीं तक रक्खें जहाँ तक वे रह सकें। इसके बाद उन्हें स्वतन्त्र कर देना चाहिए। यदि पूछे तो सलाह देना चाहिए। यदि पूछे नहीं, माने नहीं तो उन्हें सलाह भी नहीं देनी चाहिए। वे स्वयं बुद्धिमान हैं जिसमें उन्हें अपना भला दिखाई पड़े उसे वे स्वयं करें।

८२.–सोलह वर्ष के बाद पुत्र को पुत्र न मानकर मित्र मानना चाहिए। मधुर शब्दों में शिक्षा देनी चाहिए। यदि वे न माने तो नाराज नहीं होना चाहिए। मन में प्रसन्न रहना चाहिए। प्रार्थना करनी चाहिए कि रामजी सबको सद्‌बुद्धि प्रदान करें। जिससे सब रामजी की भक्ति करें। वृद्ध, निर्बल, निर्धन की कोई नहीं मानना चाहता है, अतः वृद्ध को मौन रहना चाहिए। जैसे वन में रहा जाता है, ऐसे ही घर में रहना चाहिए।

८३.–जीवन उन्ही का धन्य है जो भगवान के सम्मुख हैं। विमुख व्यक्ति धन, जन, सम्मान से सम्पन्न होकर भी व्यर्थ है। उसका जीवन कीट-पतंग की तरह है जो केवल मरने के लिए ही पैदा होते हैं। थोड़ा सा भजन-पाठ सच्चे हृदय से जो होता है उससे जीव का कल्याण हो जाता है।

८४.–बड़ों से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और छोटों को शिक्षा देनी चाहिए। अध्ययन करते समय भी अध्यापन करना चाहिए। तृण रहित प्रदेश में गिरकर आग शांत हो जाती है। ऐसे ही जिसमें क्रोध नहीं है उसे अपमानित करने पर भी वह शान्त ही रहता है।

८५.–सूर्योदय से पूर्व ही स्नान उत्तम है। संध्या आदि नियम भी सूर्योदय से पूर्व ही करना चाहिए उसके बाद अन्य कार्य करें। नियमपूर्वक तुलसी चरणामृत ग्रहण करें। अशुभ चिंतन न करें इससे बुद्धि शुद्ध रहेगी। हर काम में सफलता मिलेगी। अपने से बड़ों का आदर सम्मान करने से आयु और मंगल की वृद्धि होती है। यथा समय नित्य सत्संग में उपस्थित होने से ज्ञान-भक्ति की वृद्धि होती है। सारे प्राणी ईश्वर के अंश है यह बात याद रखने की है। प्रणियों के साथ दया, क्षमा, सत्यपूर्वक व्यवहार ही सच्ची भगवद् भक्ति है। स्वयं सर्वदा संतुष्ट एवं प्रसन्न रहना। अपने व्यवहार, सदाचार से दूसरों को भी प्रसन्न रखना। इससे लोक-परलोक दोनों में सुख की प्राप्ति होगी। नाशवान शरीर से अविनाशी प्रभु को प्राप्त करना ही श्रेष्ठ व्यापार है। सर्व व्याप्त ईश्वर को अपने

हृदय में अपने सामने प्रकट कर लेना ही सर्व श्रेष्ठ ज्ञान-विज्ञान है। भौतिक विज्ञान के चकाचौंध में मन चंचल हो जाता है अत: टी० वी० आदि का दर्शन सीमित करना चाहिए। सत्प्रेरणा मिले तो उसे देखो, दुष्प्रेरणा मिले तो देखना बंद कर दो।

८६.–प्रभु कृपा से बुद्धि शुद्ध सात्विक रहे। परस्पर प्रेम बनाये रहें। किसी से कोई भूल हो तो उसे क्षमा करें। जिसके ऊपर क्रोध किया जाता है उसकी हानि नहीं होती है जो क्रोध करता है उसका रक्त जलता है। क्रोध करने से बुद्धि का ह्रास होता है। विकास की गति मंद हो जाती है। क्रोध से हिंसा के और बदला लेने के भावों का उदय होता है। उससे बार बार जन्म मरण होता है। जन्म लेना है सत्संग भजन के लिये, बदला चुकाने के लिए नहीं।

८७.–आयु का चौथाई भाग विद्या के अध्ययन में ही बिताना चाहिए। विद्याध्ययन तपस्या है। संयम, नियम, अनुशासन का पालन करते हुए अध्ययन करना चाहिए। अध्ययन काल में जो छात्र अच्छी तरह से अध्ययन नहीं करते हैं, पीछे से उनको पछताना पड़ता है। बिना अध्ययन के अज्ञानी मनुष्य अंधे के समान है। पढ़ा लिखा ज्ञानी ज्ञान विवेक रूप नेत्रों से सम्पन्न रहता है। इसलिए उसका जीवन सुखी होता है। स्वयं पढ़ना चाहिए और अपने से छोटों को पढ़ाना चाहिए। घर में जो बड़े है, वे बालकों को घर में पढ़ावें, केवल विद्यालय के अध्ययन में छात्र का अध्ययन पूरा नही होता, अत: घर पर अध्ययन अवश्य करना चाहिए।

८८.–शुद्ध सात्विक कमाई संत सेवा में लगकर आनंद मंगल की वृद्धि करेगी। शास्त्र सम्मत गृहस्थाश्रम की कामनाएँ भजन में बाधा नहीं पहुँचाती है। परन्तु दुष्ट दुर्वासनाएँ जब मन में उदित होती हैं तब वे अशान्ति पैदा करती हैं। अधूरी और पूरी दोनों प्रकार की वासनाएँ दु:ख देने वाली हैं। शुद्ध शुभ कामनाएँ आती हैं तो उसी क्षण से मन में प्रसन्नता होती है। उनके पूर्ण होने पर तो भगवत् कृपा का साक्षात्कार हो जाता है। निष्काम का अर्थ यह नहीं है कि प्रभु दर्शन प्रेम की भी कामना न हो। जो भक्ति की भी प्राप्ति की इच्छा नहीं करते ऐसे नीरस ज्ञानी को दूर से ही प्रणाम करना चाहिए। ये राम-रावण, कृष्ण-कंस दोनों को समान मानते हैं। ऐसे लोगों की बात नहीं सुननी चाहिए। इष्ट, मन और अपना मत जिससे मिले उसी से सत्संग करना चाहिए।

८९.–**'सकल भुवन मध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्याः।'** वे निर्धन भी धन्य हैं जिनके हृदय में हरि भक्ति का निवास है। भक्ति जहाँ होगी वहाँ भगवान अवश्य रहेंगे। आनंदमय प्रभु के सानिध्य से दोष दुःख समीप नहीं आ सकते हैं। बुद्धि, विवेक, श्रद्धा, सत्य, दया, क्षमा और भक्ति के धनी ही सच्चे धनी हैं। उन्हें ही सच्चा सुख मिलता है। धन को ही सर्वस्व मानकर उसी के संग्रह में दिन-रात लगे रहने वाले सच्चा सुख नहीं पा सकते हैं। उपार्जित धन से उपकार करके, दूसरों को सुखी बनाकर स्वयं भी सुखी रह सकता है। धन के बिना लौकिक व्यवहार सिद्ध नहीं होते हैं। धार्मिक सामाजिक कृत्यों में भी अर्थ की प्रधानता है अतः सात्विक वृत्ति से धन उपार्जन करके देव, साधु, ब्राह्मण, गौ के साथ अपना एवं अपने परिवार का पालन करना चाहिए। विवेकी सज्जन का धन लोक-परलोक को बनाता है। अविवेकी दुष्ट का धन लोक-परलोक को बिगाड़ता है। इस बात को जानकर व्यवहार करना चाहिए।

९०.–संसार के व्यवहार-व्यापारों को करते हुए भी भगवान से संबंध जोड़ा जा सकता है। संबंध के अनुरूप भाव का उदय होता है। भगवान मेरे हैं, मैं भगवान का। जिसके मन में ऐसा भाव दृढ़ है वह तो कुछ भी करेगा वह भगवत् सेवा ही होगी। अपना संबंध भगवान से कैसे हो, यह अपनी रुचि के ऊपर निर्भर है परन्तु सहज भाव से प्रत्येक जीव दास है भगवान स्वामी हैं। अन्य संबंधों में भी दास्य प्रधान रहता है। संबंध को अपने मन के द्वारा स्थापित करना चाहिए। माता-पिता का शिशु में सहज ही वात्सल्य रहता है। गोद लिए हुए पराये बालक में भी वात्सल्य उमड़ पड़ता है। ईश्वर से संबंध तो नित्य है। संसार के अनित्यों में संबंध शोक मोह प्रदान करता है। किसी में भी भगवान के संबंध से अपना संबंध जोड़ना है।

९१.–इस संसार को भक्त लोग राममय देखते हैं। वे संसार में संसार से कष्ट का अनुभव नहीं करते है। ज्ञानी लोग संसार को दुःखमय मानते हैं। इसलिए संसार की आसक्ति का त्याग करते हैं। संसार से विरक्त भी दुःखी नहीं होते हैं। शेष प्राणियों को जगत दुःखदायक है। जिस वस्तु से जितना संसारी सुख मिलता है उसी वस्तु से उतना ही दुःख प्राप्त होता है। शरीर और शरीर से संबंध रखने वालों को संसारी सुख मिलता है। परिणाम में दुःख भी मिलता है। दुःख के दो कारण हैं– एक दिखाई देने वाला,

दूसरा न दिखाई पड़ने वाला। दिखाई देने वाले दुःख का कारण पाप है। प्रारब्धवश दुःख मिलता है। पाप को दूर करने के लिए **'श्रीकृष्णः शरणं मम'** इस मंत्र का जप स्वयं करना चाहिए। स्नान आदि करके शुद्ध होकर जप करना चाहिए। मन ही मन हर समय जप किया जा सकता है।

९२.—दीनबन्धु प्रभु शरणागत मन के कष्ट दूर करते हैं। प्रत्यक्ष लौकिक उपाय जो संभव हो उन्हें करके संकट से बचना चाहिए। मन ही मन शत्रु का चिंतन करके उससे मित्रता करके उसे सज्जन मानकर क्षमा याचना कर शत्रुता को समाप्त कर अपना और शत्रु का मंगल मनाना चाहिए। शत्रुता समाप्त हमको करना हैं वह करे चाहे न करे।

९३.—जो लोग नित्य दूसरों की मंगल कामना करते हैं उनका मंगल श्रीसर्वेश्वर भगवान करते हैं। जो शिक्षा हम दूसरों को देते हैं उसे हम स्वयं ग्रहण करें, तभी शिक्षा देने के अधिकारी होंगे।

९४.—सात्विक आहार ही पथ्य है। निरंतर सात्विक आहार से मनुष्य में सात्विकता आती है। निरंतर तामसी आहार करने से मनुष्य राक्षस बन जाता है। तामसी आहार कुसंग है, सात्विक आहार सत्संग है। जब तक आहार शुद्ध न होगा तब तक मन-बुद्धि पवित्र नहीं होंगे। अपवित्र मन-बुद्धि से आत्म-कल्याण के साधन नहीं बनते हैं। आहार शुद्ध होने से शरीर में रोगों की उत्पत्ति नहीं होती है। सप्ताह या मास का उपवास उदर विकारों को दूर कर देता है।

९५.—चौरासी लाख योनियों में केवल मनुष्य ही ऐसे हैं जिनमें विवेक शक्ति है और उत्तम कर्म करके आत्म-कल्याण कर लेने के योग्य हैं। भगवान ने कृपा करके शरीर दिया, इससे यदि आत्म-कल्याण न हुआ, प्रभु को प्रसन्न न किया तो पछताना और चौरासी लाख योनियों में जाना ही होगा।

एक दीन हीन दुर्बल लकड़हारा को राजा ने देखा तो उसके मन में दया आ गई। उसने लकड़हारे को चंदन का बगीचा दे दिया। सोचा कि चंदन बेचकर के धनी-मानी सुखी हो जावेगा। पर उस लकड़हारे ने चंदन की महिमा न जानकर उसे साधारण लकड़ी माना और पहले की तरह चंदन काटकर उसको जलाकर कोयला बनाकर अपनी जीविका चलाता रहा। चंदन के बगीचे के तीन भाग उसने कोयला करके बेच डाले। संयोगवश एकदिन लकड़हारा कोयला बेचने जा रहा था तो उसे राजा ने

देखा कि यह तो पहले ही की तरह दु:खी और गरीब है। राजा ने पूछा–अरे! मैंने बहुत कीमती चंदन का बगीचा दिया, उसे तुमने क्या किया? काटकर बेचने से नित्य बड़ी आमदनी करके तुम सुखी और धनी क्यों नहीं हुए? उस लकड़हारे ने कहा–महाराज! मैं नहीं जानता था चंदन कीमती है। मैं उसे काटकर जलाकर कोयला बनाता था उसी से अब तक जीविका चलाई। अब चौथाई बगीचे में थोड़े से पेड़ बचे हैं। मैं अज्ञानी बड़ा अभागा निकला जो आपकी कृपा का और उससे प्राप्त चंदन वृक्षों का महत्व नहीं जाना। मुझसे बड़ी भूल हुई। रोते हुए लकड़हारे को राजा ने समझाया। अब नित्य चंदन की लकड़ी को बेचने लगा। उसी दिन से सुखी हो गया गरीबी दूर हो गयी। जीवों पर दया करके भगवान के द्वारा दिया गया मनुष्य शरीर चंदन के समान कीमती है। अज्ञानी जीव लकड़हारा उससे संसारी विषयों को भोगता है। भोग कोयले के समान तुच्छ हैं। जीव को संत भगवन्त समझाते हैं, मनुष्य शरीर की, समय की महिमा बताते हैं। उसे मानकर बची हुई जो आयु उसमें यदि हम ईश्वर का भजन करें तो हम सुखी हो सकते हैं। मनुष्य जीवन की सफलता हो सकती है। स्वयं की प्रसन्नता रहे और दूसरे लोग भी प्रसन्न रहें ऐसे कर्म सात्विक होते हैं उन्हें करना चाहिए। कुत्सित कर्म करके मन कभी प्रसन्न नहीं होता है।

९६.–दान करने की, भजन करने की इच्छा हो तो समझो कि श्री प्रभु की कृपा है। बिना कृपा के सत्कर्म जीव नहीं कर पाता है। भगवान की कृपा से यह पुण्य कर्म हुए हैं ऐसा मानने पर कर्म का अहंकार नहीं होगा। मनुष्य नाशवान जड़ वस्तुओं से प्रेम करता है कि ये हमको सुखी करेंगे, पर उनसे सुख नहीं मिलता है, इसलिए प्रभु से ही प्रेम करना चाहिए।

९७.–श्रीब्रह्मा जी ने प्रियव्रत को समझाया कि केवल गृहत्याग करके वन में वास मात्र से सिद्धि नहीं मिलती है। वन में चिड़िया के बीट करने पर, बिच्छू के डंक मारने पर क्रोध होगा। वहाँ भी काम को पैदा करके मोहित करने वाली सामग्री मिलती है। इन्द्रियों को अपने अधीन करके गृहस्थ धर्म का पालन करो। पहले जगत को देखो कि यह कैसा है। मन जगत में न लगे। भजन में बाधा हो तब त्याग करना। गृहस्थाश्रम काम, क्रोध आदि को जीतने के लिए किले के समान है। इन छः शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके विचरण करो। नारदजी ने भी ठीक है ऐसा कहा।

९८.—भगवान की भक्ति का आरंभ अपने घर से ही होता है। घर के बड़े-बूढ़े, पिता-माता में श्रद्धा रखना, उनकी सेवा करना। घर के परिवार के लोगों में जो निष्काम प्रेम करेगा वही भगवान की भक्ति कर सकेगा। संबंधित लोगों से ईर्ष्या-द्वेष रखने वाले भगवान के भक्त नहीं हो सकते, अतः सृष्टि को भगवान की मान करके उससे प्रेम करना चाहिए। मायामयी तामसी सृष्टि से दूर रहना चाहिए।

९९.—मनुष्य का पवित्र कर्त्तव्य यही है कि ज्ञान-भक्ति के द्वारा स्वयं प्यारे प्रभु की आराधना करे और दूसरों से कराकर जगत में स्वयं सुखी रहते हुए दूसरों को सुखी बनाने की चेष्टा करे। मूर्ति पूजा प्राणियों के लिए कल्याणकारी है। हृदय के उत्तम प्रेम भाव से दूसरों में भी ईश्वर व्याप्त है, यह भावना दृढ़ होगी और फिर मन में सुख संतोष का राज होगा। 'सर्वे सन्तु निरामया:' सभी निरोग हों।

१००.—जब असुविधा दूर होगी तब भजन करूँगा, यह विचार सत्य नही हैं। जब सुविधा मिलेगी तब शरीर ही काम के योग्य नहीं रहेगा। सुविधा असुविधा जैसी भी अपनी स्थिति है उसी में भजन करो। प्रभु सब चिंता दूर करेंगे। सुख की आशा से कर्म किया जाता है, मिलता है दु:ख। यही इस संसार का स्वरूप है। साहस और धैर्य के साथ कर्त्तव्य का पालन, भजन, सेवा, सत्संग करो। ईश्वर किसी को दु:ख देना नही चाहता है। अपनी भूल से हम संकट में पड़ गये हैं। प्रभु अवश्य रक्षा करेंगे। रामजी ने वनवास और सीता हरण सरीखे संकट को सहन किया, घबड़ाये नहीं, उनसे शिक्षा लेना है।

१०१.—जब तक सत्य-सदाचार का, परोपकार का आश्रय न लिया जाय तब तक प्रभु प्रसन्न नहीं होते हैं। कोई खूब माला जपे और चोरी तथा हिंसा करें तो उससे प्रभु प्रसन्न नहीं होगें। भजन कम हो पर सत्य भाषण करें, सदाचार सम्पन्न हो तो वह प्रभु का सच्चा भक्त है। संसार के प्राणियों के साथ उपकार करने से प्रभु प्रसन्न होते हैं क्योंकि उन प्राणियों में प्रभु ही विराजमान हैं। यह भाव मन में आ जाय तो उसका कल्याण ही कल्याण है। जय राधे श्याम।

१०२.—अपने में प्रेम सद्भाव रखकर जो सभी लोगों के साथ व्यवहार करता है उसे जनता जनार्दन का तथा भगवान का प्रेम प्राप्त होता है। दूसरों से अकारण शत्रुता और द्वेष करते करते मनुष्य बहुत से लोगों को अपना शत्रु बना लेता है। स्वयं संकट में पड़ जाता है। प्रेम देव श्रीकृष्ण जिसके हृदय में पहुँच जाते हैं तो उसे कोई अपना

शत्रु नहीं दिखाई पड़ता है। कदाचित् कोई शत्रुता का व्यवहार करता है तो उसे भी शत्रु न मानकर उसके साथ प्रेम का व्यवहार करने वाले महान संत होते हैं। भगवान हमको ऐसी बुद्धि दें कि हम सबसे प्रेम करना सीखें।

१०३.—आप सानन्द पिता-माता की सेवा में उपस्थित रहें, यही राम भक्ति है। पिता, माता, ब्राह्मण, गुरु और गाय की सेवा से रामजी प्रसन्न हो जाते हैं। अपने परिश्रम से, भाग्य से जो कुछ प्राप्त होवे उसी में संतोषपूर्वक निवास करना चाहिए।

१०४.—संसार स्वार्थी है। पर स्वार्थियों के साथ अपने को परमार्थ करना है। स्वार्थी के साथ स्वार्थी बनने पर अशान्ति होगी। अपने को सबके साथ परमार्थ ही करना चाहिए, यही भक्त का लक्षण है। उन स्वार्थियों में भी परमात्मा निवास करता है। दुष्टों के साथ भी सज्जनता का व्यवहार करने से मन शान्त होगा, प्रभु प्रसन्न होंगे। सच्चे सज्जन की दृष्टि में सब सज्जन ही है। स्व=अपना, अर्थी=मतलबी। अपना स्वार्थ परमार्थ ही है। स्वार्थ में अपना हित हो वही स्वार्थ है। दूसरे को ठगने से अपना स्वार्थ नही बना। अतः सच्चा स्वार्थ परमार्थ ही है।

'स्वारथ सांच जीव कहुँ एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा।।' (मानस-उत्तर० ९५/२)

प्रभु चरणों में प्रेम सच्चा स्वार्थ है। संसार जैसा है वैसा ही रहेगा। अपने को सुधारने की आवश्यकता है। भगवान की कृपा है, आगे भी रहेगी।

'मन क्रम बचन छांडि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई।।'(मानस-बाल० ९९/६)

भजन करने से प्रभु कृपा होगी।

१०५.—शरीर द्वारा किए गए कार्यों के अनुसार दुःख सुख मिलता है। इस मृत्युलोक के निवासी शुभाशुभ कर्म फल दुःख-सुख भोगते हैं। मनुष्य सुख प्राप्त करने के लिए कर्म करता है पर उसे भी दुःख मिलता है। मिथ्या अहंकार से प्रेरित होकर प्राणी कर्म करता है। अपने को कर्ता भोक्ता मानता है। ज्ञानी लोग अनासक्त भाव से प्रभु की प्रेरणा से कर्म करते हैं और उसे ईश्वर को अर्पण कर देते हैं। ईश्वर समर्पित कर्म से शुद्ध बुद्धि मिलती है। वह दुःख से घबड़ाता नहीं है। दुःख पाकर ईश्वर को भूलता नहीं है। सुख दुःख आने जाने वाले हैं, सदा एक से नहीं रहते हैं, अतः सुख और दुःख दोनों में ईश्वर का नाम लेता है। मन में प्रसन्न रहता है, सबके साथ भलाई करता है।

१०६.—अपकारी के साथ उपकार करने वाले भक्त होते हैं। सच्चे अनन्य भक्त हर परिस्थिति में प्रभु की कृपा का अनुभव करते हैं। शरीर में बहुत बल था, पास में बहुत साधन था तो अहंकारवश हम दूसरों को कष्ट देते थे तब प्रभु ने कृपा करके शरीर में रोग दे दिया और धन नष्ट कर दिया तब हम दीन हीन हो गए। प्रभु का स्मरण करने लगे। दीनों पर प्रभु कृपा करते हैं। दैन्य ही भक्ति का कारण है। भक्ति के बिना प्रभु प्रसन्न नहीं होते हैं अतः प्रभु को दीनानाथ कहा गया है। प्रभु सबके ऊपर दया करते हैं किसी को कष्ट नहीं देते हैं। शरणागत भक्त विभीषण को लंका का राज्य दे दिया। शत्रुता करने वाले रावण को मारकर उसे मोक्ष दे दिया दोनों पर कृपा की।

१०७.—सभी प्राणियों में ईश्वर विराजमान हैं, अतः प्राणियों की सेवा ईश्वर की सेवा है। प्राणियों के साथ द्वेष करना ईश्वर से द्वेष करना है। यह समझकर सेवा और उपकार करना चाहिए। अपने साथ कोई अपकार करे तो उसका बदला लेने की इच्छा नहीं करनी चाहिए। बदला लेने की भावना से बार बार जन्म लेना पड़ेगा। अपने ऊपर किसी का कर्जा नहीं रखना चाहिए, नहीं तो कर्ज चुकाने के लिए बैल घोड़ा आदि बनना पड़ेगा। दूसरों के कटु शब्द सुन लेना चाहिए पर स्वयं कटु वचनों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

१०८.—संत विभीषण का रावण ने अपमान किया। श्रीविदुर जी संत थे उनका दुर्योधन ने तिरस्कार किया तो प्रभु ने रावण और दुर्योधन का नाश कर दिया। द्वार पर आए भिक्षुक का और गाय का सत्कार करना चाहिए। अपने पास कुछ न हो तो हाथ जोड़कर प्रणाम करना चाहिए। गाली दे कर भगाना नहीं चाहिए। घर में तुलसी का वृक्ष लगाकर सींचना, प्रणाम, परिक्रमा करना चाहिए।

१०९.—अपना मन जिसे पाप माने उसका त्याग करना चाहिए, जिसे पुण्य माने उसका अनुष्ठान करना चाहिए। कर्म को करने के बाद यदि ग्लानि हो तो वह पाप है, यदि प्रसन्नता हो तो वह पुण्य है।

इति शुभम्

❋

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्री हनुमते नमः श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः

❋ कुसंग से बचें ❋

१.—बचपन का सत्संग जीवन भर के लिए लाभदायक होता है। इसी तरह बचपन का कुसंग भी जीवन को बिगाड़ देता है। दिन भर सत्संग में रहो, एकक्षण भी यदि कुसंग मिल गया तो सत्संग का प्रभाव नष्ट हो जायगा। व्यक्ति के संग का, वेषभूषा का, खान-पान का कुसंग भी हानिकारक है।

जे राखे रघुवीर ते उबरे तेहि काल महुँ। (मानस-बाल० ८५)

प्रभु ही सत्संग देने वाले हैं और कुसंग से बचाने वाले हैं। अतः **'हरिः शरणं हरिः शरणं।'** मैं भगवान की शरण में हूँ, मैं भगवान की शरण में हूँ, बार-बार कहना चाहिए, स्मरण रखना चाहिए।

२.—बानरराज को अपार बल देकर श्रीराम जी की सेवा के लिए पृथ्वी पर भेजा गया था और वे इन्द्र के अवतार थे। प्रमाद में कर्त्तव्य को भूल गये। रावण बालि को परास्त करने आया पर बालि ने पकड़कर उसे अपनी काँख में दबाया। सभी समुद्रों में संध्या करने के बाद देखा तो रावण अधमरा और लज्जित था। रावण ने बालि से मित्रता कर ली इसी कुसंग से बुद्धि भ्रष्ट हो गई। शरणागत सुग्रीव का सर्वस्व छीनने के बाद भी उसे मार डालना चाहता था अतः श्रीराम ने छिपकर बहेलिए की तरह उसे मारा। उसने दर्शन किया तो श्रीराम भक्ति का उदय हुआ। रावण से उसे मित्रता नहीं करनी चाहिये थी। मित्रता से मित्र के पाप अपने में आ जाते हैं। अतः अभक्त से मित्रता नहीं करनी चाहिये।

३.—श्रीप्रियादास जी ने अपनी टीका के अन्त में भगवान श्रीकृष्ण से प्रार्थना की है कि मेरे कुछ अपराध हों तो आप उनका फल मुझको अवश्य दीजिए। आग में जलाओ, पानी में डुबा दो, शरीर को तीखी नोकदार अनी से बेध दो, शूली पर चढ़ा दो, साँपों और बिच्छुओं से कटवाओ, सिंह के आगे डलवा दो, इन कष्टों को सहन करुँगा परन्तु जो

भगवान से विमुख हैं उनसे हमारा किसी प्रकार का सम्पर्क संबंध तो नहीं ही हो। उनका मुख भी हमको दिखाई न पड़े अर्थात् अभक्त के सामने हम न पड़ें, मेरे सामने कोई अभक्त न आवे। मेरी स्मृति में कोई भक्त विमुख प्राणी न आवें, यही वर दीजिए।

४.–जीवन में सज्जन पुरुषों का सम्पर्क वैकुण्ठ है। विषयी, कामी, संसारी पुरुषों का संबंध ही नरक है। संसार में संसारी पुरुषों से उतना ही सम्पर्क रखना चाहिए जितना लोक व्यवहार में अति आवश्यक हो। मन में उन संसारी लोगों को स्थान नहीं देना चाहिये। उनकी उपेक्षा करनी चाहिए। भगवान में, भक्ति में मन–बुद्धि लगाना चाहिए।

५.–सत्संग कर्त्तव्य है, इसका लाभ तब होगा जब कुसंग का त्याग हो। श्रीराम का सम्पूर्ण परिवार साधु था, पूर्ण सत्संग था अतः आपस में बड़ा प्रेम था। प्रगट में कैकेयी को मंथरा का कुसंग मिला उससे इस प्रकार कैकेयी की बुद्धि बिगड़ी कि किसी के सुधारे नहीं सुधरी। वह कहती है कि **'परउँ कूप तुअ बचन पर सकऊँ पूत पति त्यागि'** (मानस–अयो० २१) मंथरा मैं तेरे कहने से कूप में गिर सकती हूँ, पुत्र और पति का भी त्याग कर सकती हूँ क्योंकि तू मेरे हित की बात कहती है। ये राम को अपना पुत्र मानती थीं उनका और पति का त्याग ही नहीं किया उनके प्राण भी ले लिए। ऐसे आदर्श सभ्य परिवार में कुसंग इतना प्रभाव कर सकता है तो साधारण की क्या बात है। यह शिक्षा है।

६.–जिस पर विश्वास नहीं है उसके साथ रहना ठीक नहीं है। त्याग में ही शान्ति है, **'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्'** (गीता)। श्रीकृष्ण का कथन है कि यथोचित त्याग के बाद शांति होती है। त्याग शब्द का अर्थ है छोड़ देना, किसी प्रकार का संबंध न रखना, उस व्यक्ति या वस्तु के संबंध में कुछ न सोंचना। जो अपनी नहीं है उसके संबंध में कोई चिन्ता नहीं करता है। दुष्ट स्वभाव वाले का त्याग कुसंग का त्याग है। सत्संग में रहना चाहिए, उसमें आसक्ति रखनी चाहिए और कुसंग का सर्वथा त्याग करना चाहिए। दुष्ट व्यक्ति, गंदी वस्तु जिसमें राग द्वेष भरे हैं, उसका त्याग करना चाहिए। जैसे मल, मूत्र, कूड़ा आदि का त्याग करके उससे ममत्व को हटा लिया जाता है। भक्तजन संसारी विषयों को मलवत् त्याग करते हैं। श्री करमैती जी ने संसार के सुखों को वमन की तरह त्यागा। त्याग के बाद उसको देखा नहीं, उसकी याद नहीं की। त्याग शब्द का

अर्थ दान भी होता है। अपनी प्रिय वस्तु अन्न-धन आदि त्याग अर्थात् योग्य पात्र को दान करके फिर उसमें आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। इसी से शान्ति प्राप्त होती है।

७.-संसार दु:खमय है। संसारी संबंध दु:खदायक हैं। संसार से जब हमारा संबंध ही नहीं रहा तो फिर दु:ख क्यों होगा? संसार अनादि काल से ऐसा ही रहा है। जिनके गृहस्थ आश्रम में प्रभु की आराधना होती है, अतिथि, अभ्यागतों का स्वागत होता है, उनके गृहस्थाश्रम बंधन कारक नहीं हैं। इस संबंध में-

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिए ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही।। (विनय पत्रिका)

इस पद का बार-बार अध्ययन-पठन और मनन करना चाहिए। गुरु, पिता, माता, भाई, पत्नी एवं पति के त्याग से लोक में निंदा, परलोक में नरक होता है। पर यदि ये राम भक्ति में बाधक हैं तो इनका त्याग कुसंग का त्याग है। इसमें कोई दोष नहीं होता है। भक्ति विरोधियों को त्याग देना धर्म है। उनसे सम्पर्क रखने से नई-नई विपत्तियों का जन्म होता है अत: विधिपूर्वक दृढ़ त्याग करना चाहिए।

८.-**'संसर्गजा दोष गुणा भवन्ति।'** व्यक्ति में कुसंग से दोष और सत्संग से गुण आ जाते हैं। परन्तु जिसका मन लगातार प्रभु में लगा रहता है उनके ऊपर कुसंग का यद्यपि असर नहीं पड़ता है फिर भी उन्हें कुसंग से बचना ही चाहिए।

९.-पाप से बचाने वाला, सन्मार्ग पर चलने की शिक्षा देने वाला ही मित्र है। इससे भिन्न कुमित्र हैं। द्रोण, द्रुपद की मैत्री गुरुकुली थी पर राजा बनने पर द्रुपद भूल गये, उन्होंने द्रोण का अपमान किया। द्रोण ने अर्जुन के द्वारा परास्त कराकर आधा राज्य छीन लिया। द्रुपद ने यज्ञ करके द्रोण को मारने वाले धृष्टद्युम्न को प्रकट किया। मित्रता पूर्ण शत्रुता के रूप में बदल गई। एक ने दूसरे के हित का ध्यान नहीं रक्खा। अपमान नहीं सह सके। बदले की भावना दोनों में रही। कुमित्रता इसे कहते हैं। ऐसी मित्रता नहीं करनी चाहिए।

१०.-मध्यम श्रेणी के मित्र कर्ण, दुर्योधन थे। दुर्योधन ने अंग देश का राज्य कर्ण को देकर अपने समान बना लिया। कर्ण ने अपना तन-मन-प्राण दुर्योधन को सौंप दिया। युद्ध में प्राण दे दिए। इस मित्रता से पारलौकिक हित नहीं हुआ। लोक में भी सुयश की प्राप्ति नहीं हुई। कर्ण ने पाप पथ पर चलने से दुर्योधन को नहीं रोका। सती साध्वी

पतिव्रता द्रोपदी का अपमान करके दुर्योधन को प्रसन्न करने की इच्छा की। यह सब प्रभु इच्छा से हुआ। अंत में कर्ण ने पश्चाताप भी किया। दानवीर कर्ण, महान धनुर्धर कर्ण ने दुर्योधन को सत्पथ पर लाने का प्रयास नहीं किया, स्वयं कुसंग में मग्न हो गया। ऐसी मित्रता भी त्याज्य है।

११.—आदर्श मैत्री कृष्ण सुदामा की है, वस्तुतः मित्रता भगवद् भक्तों से ही होनी चाहिए। वे अपने मित्र को अपना सरीखा बना लेना चाहते हैं।

श्रीकृष्ण ने मित्र उद्धव को इतना सन्मान दिया कि तुम्हारे समान मुझे कोई प्रिय नहीं है। जीव अनेकों के साथ मैत्री करके उसे निभा नहीं सकता है परन्तु ईश्वर अनन्त भक्तों के साथ एक साथ मित्रता को निभा सकता है। अतः जीव को एक मात्र भक्त भगवान के साथ ही मैत्री करनी चाहिये।

इति शुभम्

❋



श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्री हनुमते नमः　　　　श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः

❋ साधकों के लिए ❋

१.—मन की एकाग्रता कठिन है अतः चंचल मन से ही नाम जप, पाठ आदि करना चाहिए।

२.—**"तप ते अगम न कछु संसारा।"** तप से कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता है। शरीर को कष्ट देना या नष्ट कर देना तप नहीं है। मनुष्य की जन्म से जो बुरी प्रवृतियां हैं लोभ, मोह, काम, क्रोध, भय आदि इन पर नियंत्रण करके इन्हें ही श्रीकृष्ण की ओर लगाना तप है। वाणी से मिथ्या भाषण न करके सत्य भाषण करना यह वाणी का तप है। अशुभ रूप न देखकर प्रभु रूप देखना दृष्टि का तप है। कानों से मंगलमय शब्द सुनना, अभद्र शब्द न सुनना श्रोत्र का तप है। चित्तवृत्तियों को असद् पदार्थों से हटाकर प्रभु में, रूप में लगाना मन का तप है। इसी तप से शान्ति और शुद्धि प्राप्त होती है तब भजन-साधन में मन लगता है। परोपकार और भजन के लिए शारीरिक सुख छोड़ने पड़े तो छोड़ देना चाहिए।

३.—भगवान श्रीकृष्ण की सेवा, स्त्रोत पाठ, भजन, कीर्तन और लीला चिन्तन, नाम स्मरण, सत्संग ये सब सेवाएँ हैं। गंदे विचारों से, लौकिक विषयों के चिंतन से, दूसरों को कष्ट पहुँचाने से, कुसंग से अन्तःकरण मलिन हो जाता है। अतः इन दोषों से बचना चाहिए। शरीर परमात्मा का मंदिर है, इसलिए दुःखी प्राणियों की सेवा भगवान की सेवा है। असहाय की सहायता, भूले हुए को भक्ति मार्ग पर लगाना यह श्रीकृष्ण की सेवा है।

४.—हमारे प्रिय श्रीकृष्ण हमको जैसे भी रखें हमको उसी में प्रसन्न रहना चाहिए। सब कुछ श्रीकृष्ण का है, हम भी और दूसरे भी भगवान के ही हैं। ऐसा विचार मन में आते ही अभिमान का नाश हो जाता है। अभिमान ही सब अनर्थो की जड़ है। अभिमानी में ममता रहती है, उसी से प्राणी दुःख पाता है।

५.–सब कुछ को करके श्रीकृष्ण को प्रसन्न करना है। जिस भी कार्य को करें उसी से श्रीकृष्ण की प्रसन्नता हो। इस स्थिति में मन के दु:ख दूर हो जाते हैं। हम लोग अपने को मशीन समझें इसको चलाने वाले प्रभु ही है। इस प्रकार का भाव-विश्वास हो जावे तो गुण और दोषों से मुक्ति मिल जाती है।

६.–मन को स्थिर करने के लिए वैराग्य और भजन के अभ्यास की आवश्यकता है। जब तक संसार में आसक्ति है तब तक मन स्थिर नहीं हो सकता है। मन लगे या न लगे नाम जप, पाठ आदि नित्य नियमपूर्वक करना ही चाहिए।

७.–जगत के लोगों की, घर वालों की, अपने शरीर की सेवा भगवत संबंध से करनी चाहिए। यदि भोगों के संबंध से जगत का सेवन होगा तो उससे दु:ख होगा। भोग जगत दु:ख का घर है, इसमें संदेह नहीं है।

८.–श्रीराधाकृष्ण के गुणानुवादों का श्रवण सभी प्रकार के दु:खों को दूर करता है। भवरोग की सच्ची दवा श्रीकृष्ण चरित्र श्रवण ही है। कब कौन सी स्थिति आ जायेगी यह निश्चित नहीं है। अत: सत्संग, नाम स्मरण में सावधान रहना चाहिए। अपने में दैवी सम्पत्ति की स्थापना करते रहने से भक्ति की वृद्धि होती रहती है। जिसमें हिंसा नही है, पराये धन तथा परायी स्त्री की ओर जिसका मन नहीं जाता है, जो दूसरों की निन्दा नही करता है, वह दैवी सम्पत्ति वाला है। जो बुद्धिमान वाणी-मन, क्रोध, भूख के वेग को सहता है, अपनी निंदा सुनकर भी जिसे क्रोध या दु:ख नहीं होता है, वह दैवी सम्पत्ति वाला है। दुष्टजन या माया ऐसे भक्तों का कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकती है। संसार चाहे नित्य है चाहे अनित्य है। हमको भगवत् स्मरण करते रहना चाहिए।

९.–**''मैं अरु मोर तोर तैं माया।''** (मानस-अर० १४/२) इसीने सभी जीवों को अपने वश में कर रक्खा है।

मैं=मैं उत्तम जाति का हूँ, रुपवान, बलवान, धनवान हूँ, श्रेष्ठ हूँ, मैं विद्वान हूँ, इस प्रकार का अहंकार माया है। अज्ञानी जीव इसी भाव में मोहित होकर संसार में व्यवहार करता है। माया से बचा जीव अपने को भगवान का दास मानकर सारे जगत को ईश्वर का स्वरूप मानकर उसका सत्कार करता है।

तैं–तू मूर्ख है। तुच्छ है। नीच है। दूसरों को इस भाव से मानकर उनका अपमान करने वाला माया से मोहित है। माया से बचा जीव जानता है कि ये जीव ईश्वर के अंश है इनमें माया नहीं है, अन्तर्यामी रूप से परमात्मा इनके भीतर है। मैं ईश्वर का हूँ, दूसरे भी ईश्वर के हैं, मेरे भाई है, मित्र हैं। इनका सत्कार ईश्वर का सत्कार है, इन जीवों का तिरस्कार प्रभु का तिरस्कार है। ऐसा समझने वाला भक्त प्रभु का कृपा पात्र है। उसे प्रभु कृपा का अनुभव होगा।

१०.–**मोर**–शरीर मेरा है, धन परिवार मेरा है, घर मेरा है, यह मान्यता माया से मोहित प्राणी की है। शरीर प्रभु का दिया है। प्रभु की सेवा के लिए शरीर मिला है। घर, धन, परिवार सब कुछ ईश्वर का है। यह मान्यता भक्त की होती है।

११.–जो निंदनीय कर्म नहीं करता है। कदाचित् दुष्ट लोग निन्दा करते हैं, वह भाग्यशाली है। जो निन्दित कर्मो को करता है, धनी-मानी है, अहंकारी है, उसकी चापलूस बड़ाई करते हैं और वह उससे प्रसन्न है तो वह अभागा है। विश्व का कल्याण हो, जय श्रीसीताराम, जय श्रीराधेश्याम।

१२.–प्राय: मनुष्यों की आसक्ति अपने द्वारा उपार्जित धन में होती है। जिसमें आसक्ति हो जो वस्तु अपने को अति प्रिय हो उसी वस्तु को अपने इष्ट को अर्पण करना चाहिए। शरीर, परिवार अति प्रिय होता है। इसीसे उसे अर्पण करने पर राम राघव प्रसन्न हो जाते हैं। ''**दाता ग्रहीता**'' (अर्थात् लेने वाला) इस संबंध में राजा बलि और वामन भगवान का स्मरण करना चाहिए। वामन भगवान ने छल कपट किया। छोटे रूप से माँगा। नापते समय विशाल हो गये। सर्वस्व लेकर भी गरुड़ के द्वारा नागपाश में बाँध दिया पर बलि ने धैर्य नहीं छोड़ा। भगवान में दोष नही देखा। हमने सर्वस्व दान कर दिया। इसका अहंकार नहीं किया। पुण्य का अहंकार करने पर पुण्य नष्ट हो जाता है। राजा ययाति स्वर्ग में पहुँचे वहाँ देवताओं ने पूछा आपने कौन-कौन से पुण्य किये थे जिसके फलस्वरूप आपको स्वर्ग मिला। राजा ने अपने सब यज्ञों का अपने मुख से वर्णन किया। इससे राजा का पुण्य नष्ट हो गया। स्वर्ग से पृथ्वी पर गिर गये। अत: अपने मुँह से अपने पुण्य का वर्णन नहीं करना चाहिए।

१३.–जब हम किसी के साथ अन्याय करके अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं तब हमारा मन बिगड़ जाता है। मन–बुद्धि का अशुद्ध हो जाना बहुत बड़ी हानि है। उस मन में ईश्वर के गुण–रूपों का दर्शन नहीं होता है।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।। (मानस–सु० ४३/५)

निर्मल मन में श्रीकृष्ण विराजते है।

१४.–मनुष्य शरीर शव तुल्य है। इसके द्वारा भोगा जाने वाला सुख तो नरक तुल्य कूकर शूकर योनियों में भी मिल जाता है। जो लोग विषय सुख के लिये लोलुप हैं। समझ लो कि वे माया के द्वारा ठग लिए गए। प्रभु की आराधना करके तुच्छ संसारी सुख की चाहना करना भूल है।

१५.–काल, स्थान, निमित्त ये दान में विशिष्ट पुण्य दायक हैं। काल समय गुरु पूर्णिमा है। स्थान श्रीधाम वृन्दावन है। निमित्त संत सेवा है। पात्र वैष्णव हैं। ऐसे दान की ही शास्त्र में प्रशंसा है।

१६.–साधु–संत का अर्थ सरल सभ्य सज्जन भक्त परोपकारी है। फिर वह चाहे गृहस्थ हो या विरक्त हो। सन्यासी हो या वैरागी। ब्राह्मण हो या शूद्र। वह प्रभु को प्रिय है। कृतार्थ है। भक्त सभी का प्रिय होता है। प्रभु जिसका आदर करते हैं उसका निरादर कोई नहीं कर सकता है। प्रभु जिसका निरादर करते हैं फिर उसका आदर कोई नहीं करता है। इन्द्र का, जो देवराज हैं उनका निरादर करके भगवान ने गोवर्धन जो पर्वत है उसकी पूजा कराई। तो आज तक गोवर्धन गिरिराज सबके द्वारा पूज्य हैं। प्रतिवर्ष और नित्य ही पूज्य हैं। इन्द्र की पूजा बन्द हो गई तो आज तक बंद ही है। भगवान ने इन्द्र के अहंकार का नाश करके उनके ऊपर असीम कृपा की। प्रभु का स्वभाव है कि वे जीवों के विशेषकर अपने भक्तों के अहंकार को नष्ट कर देते हैं यह इसलिए कि अहंकार के रहने पर भक्ति नहीं रह सकती है।

१७.–संतोष से उत्तम लाभ होता है। जितना अधिक संतोष मन में होगा उतनी ही संपत्ति बिना बुलाये आवेगी। संपत्ति भी सात्विकी, राजसी, तामसी तीन प्रकार की होती है। सात्विकी संपत्ति संत–भगवन्त की सेवा में, दान में, उपकार में लगती है। राजसी सम्पत्ति संसारी भोगों में जाती है। तामसी सम्पत्ति का व्यय पाप में जुआ आदि में होता है।

१८.—सत्संग के बाद जब भी मन को अवकाश मिले तो उस मन से भगवान के नाम, रूप, लीला का चिंतन करना चाहिये। बिना कारण के क्रोध नहीं करना चाहिए। क्रोध की परिस्थिति आवे तो उसे मन में ही शान्त कर लेना चाहिए। यदि किसी के प्रति क्रोध द्वेष आदि विकार मन में आवें तो मन ही मन उस व्यक्ति का ध्यान करके उससे क्षमा माँगनी चाहिए। आप भगवान के अंश हैं भक्त हैं मेरे अपराधों को क्षमा कीजिए। प्रेमपूर्वक उसके सद्‌गुणों का स्मरण करना, दोषों की ओर ध्यान न देने से कुछ दिन बाद उस व्यक्ति के साथ मित्रता हो जायगी। प्रयास यह करना चाहिए कि सब लोग प्रसन्न रहें अपना अपमान या अपनी हानि होने पर भी क्षमा करना चाहिए। क्षमा पृथ्वी माता का रूप है। क्षमा के बिना शांति नहीं होती है। जयति श्री हरि:। जय श्रीकृष्ण:।

१९.—गुजरात की घटना भुलाने से नहीं भूलती है। संसार सदा दुखदायी रहा है। इसके स्वरूप को समझने के लिए इससे अलग होना पड़ेगा। प्रभु के स्वरूप को समझने के लिए प्रभु के निकट जाना होगा। मायामय जगत अपनी दुखमयी घटनाओं से ईश्वर को भुलाना चाहता है। आप भी कई लोग कहते होंगे कि धार्मिक प्रदेश की रक्षा नहीं हुई। ईश्वर को कैसे माना जाय। जीव स्वार्थी है। उसे अपने क्षणिक संसारी सुखों की परवाह है ईश्वर की नहीं। ईश्वर को सभी की परवाह है कौन सी घटना किस कारण घटी है यह समझ पाना हम जीवों के वश की बात नहीं है। अपना कर्त्तव्य यह कि हम ईश्वर में श्रद्धा भक्ति बनाये रक्खें, धैर्य का त्याग न करें। ईश्वर समर्थ है उसकी क्रिया कलापों को देख सुनकर उसे धन्यवाद दें उसे दोषी न बतावें। जीव जगत अज्ञानी है, उसे दूसरे को दोषी बताने की आदत है। इसी आदत के अनुसार वह काल को, कर्म को, ईश्वर को दोष लगाता है। मिथ्या दोष लगाकर अपने को निर्दोष मानकर संतोष करता है पर भक्त या ज्ञानी की समझ ऐसी नहीं होती है। वह तो **''गुन तुम्हार समुझइ निज दोषा।।''** (मानस-अयो० १३०/३) गुण अच्छाइयां जो हैं प्रभु की हैं दोष सब हमारे हैं। ऐसा मानकर दैन्य में निमग्न रहता है। दैन्य ही भगवान की कृपा का कारण है। जो चिरजीवी हैं वे बार बार जगत का प्रलय देखकर ईश्वर की महिमा का गान करते हैं। एक दिन ऐसा भी होगा कि सारी सृष्टि का विनाश होगा। **काकभुशुण्डि** को अपने आश्रम में रहते हुए **'बीते कलप सात अरु बीसा।'** (मानस-उ० ११३/१०)

शेषभगवान के मुख से ऐसी अग्नि की ज्वाला निकलती है कि संसार जल जाता है। सूर्य पोषक है पर एक दिन ऐसा तपता है कि सारा जगत अग्निमय हो जाता है। तात्पर्य यह है कि हम लोग कीट-पतंग की तरह मरने के लिए ही पैदा हुए हैं यह संसार क्षणभंगुर है। यह मानकर भक्ति को दृढ़ करना चाहिए।

२०.—जैसे घड़े में एक छोटा सा छेद होने पर भी धीरे-धीरे सारा पानी निकल जाता है उसी प्रकार साधक में छोटा सा दोष भी साधना को व्यर्थ कर देता है अतः पाप को छोटा नहीं कहना चाहिए। जहाँ भी कहीं शिक्षा मिले, उपदेश मिले, भगवन्नाम मिले, भगवत्कथा मिले उपदेश मिले वहाँ से ही ग्रहण करना चाहिए। नीच जाति से कोई विद्या नहीं लेनी चाहिए। किन्तु भगवन्नाम, चरित्र का गान कोई भी कर रहा हो तो उसे श्रवण करना चाहिए।

बड़े राजा के समीप पहुँचकर २०० ग्राम आटा की भीख मांगना मूर्खता है। इसी प्रकार राजाधिराज श्रीराम, सर्वेश्वर श्रीकृष्ण के समीप जाकर ज्ञान-भक्ति का वरदान न माँगकर लौकिक सिद्धियों को मांगना बुद्धिमानी नहीं है। वहाँ तो प्रभु का प्रेम प्राप्त कर कृतार्थ होना चाहिए।

भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए प्रभो! आप ऐसी कृपा करें कि हमारा मन और हमारी वाणी में एकता हो। हम जो कुछ वाणी से कहें उसे मन से भी करें। इस प्रकार हृदय की प्रार्थना पर प्रभु कृपा अवश्य प्राप्त होगी।

२१.—श्रीधाम के दर्शन सौभाग्य से ही होते हैं। पातक जिससे युद्ध नहीं कर सकते हैं वह अष्टचक्रा-नव द्वारा अयोध्या है। मानव शरीर में भी आठ चक्र हैं जिनका भेदन योगी लोग करते हैं। नव द्वार मानव शरीर में प्रसिद्ध ही है। अतः मनुष्य शरीर रूप अयोध्या में श्रीराम जी रमते हैं। मानव शरीर ही अयोध्या है। यह समझ लेने पर पाप मानव शरीर से युद्ध नहीं कर सकता है। पापों से बचाने वाला साधन सम्पन्न मानव शरीर है।

'नर तन सम नहि कवनिउ देही॥' (मानस-उ० १२०/९)

मनुष्य शरीर के समान दूसरा शरीर नही है। देव, भूत, प्रेत, पितर, यक्ष, गंधर्व, नाग आदि से मानव शरीर श्रेष्ठ है। इसमें सहज साधन सम्पन्न हो जाता है।

भगवन्नाम, भगवद् भक्ति को छोड़कर संसारी पदार्थो में मिलावट आ गई है। शुद्ध घृत, दुग्ध, जल, फल, अन्न आदि दुर्लभ हैं। शुद्ध प्रभु का प्रेम-नाम सुलभ है।

२२.—संसार में किसी आदमी से जब हम मिलना चाहे तो सबसे पहले उसके घर की तलाश करनी होगी। वह वहीं मिलेगा। घर का द्वार बंद हो तो द्वार पर बैठे रहो कभी न कभी वह मिलेगा। प्रेमी तो घर के चक्कर लगाता है। गली के चक्कर लगाता है, जहाँ-जहाँ जाता पता लगाकर पीछा करता है।

राम+अयन=रामायन। राम का निवास स्थान रामायन है। भागवत के माहात्म्य में लिखा है कि उद्धवजी श्रीकृष्ण के साथ ही धाम जाना चाहते थे तो प्रभु ने अपना सम्पूर्ण तेज-प्रभाव भागवत में स्थापित कर दिया यही कारण हैं कि भागवत श्रीकृष्ण की वाङ्गमयी मूर्ति है। भागवत में नाम, रूप, लीला, धाम सब कुछ है। अत: रामायन-भागवत का आश्रय लेना। भगवान का आश्रय लेना है। **''वेद रसिकन की वाणी''** भक्तों के लिए रसिको की वाणी ही वेद है क्योंकि वेद का तात्पर्य भागवत-रामायन में है और भागवत-रामायन का तात्पर्य ही रसिक भक्तों की वाणी में है। अत: वाणी से भगवान बहुत प्रेम करते हैं। यही कारण है कि गीत गोविन्द, कृष्णकर्णामृत, भक्तमाल आदि प्रभु को प्रिय है। वर्ण्य विषय प्रिय है भक्त मुख से निकला है अत: और अधिक प्रिय है। अत: विश्वासपूर्वक रामायण, भागवत, भक्तमाल का, सन्त वाणियों का आश्रय लेना चाहिए। **''समुद्र पान श्रद्धा करै कह चिरि पेट समाय।''** एक छोटा सा पक्षी समुद्र पान की इच्छा करे तो वह उसके पेट में नहीं समा सकता है। परन्तु भक्त यदि उक्त ग्रंथों को श्रद्धापूर्वक हृदयङ्गम करे तो मन-बुद्धि में इतना अवकाश है कि उसके अन्दर सब कुछ समा जायेगा। जब स्वयं सर्वेश्वर समा जाते है तो उनका नाम, रूप, लीला, धाम चाहे जितना बड़ा हो सब भक्त के हृदय में समा जाता है। अत: श्रद्धापूर्वक पठन, श्रवन, मनन ही कर्तव्य है।

२३.—जीव का अपना कुछ है ही नहीं। सगे संबधियों को, गृह-संपत्ति को लौकिक व्यवहार की सिद्धि के लिए अपना सरीखा मानकर व्यवहार करना चाहिए पर हृदय से यह मानना चाहिए कि यह सब अपना नहीं है। आसक्ति के योग्य नहीं है और की क्या चले अपने निकट अपना कहने के लिए सर्व प्रथम शरीर है तो यह भी अपना

अर्थात् जीव का नहीं है पंचतत्त्व का है और ईश्वर का दिया हुआ है। हमने इसे नहीं बनाया है। यदि प्रारब्ध से मिला मानो, ईश्वर दत्त न मानो तो अज्ञान है। प्रारब्ध कर्म फल का दाता भी ईश्वर ही है। अतः ईश्वर का आश्रय ही लेना चाहिए। जो भगवान का है उसे भगवान को अर्पण करने के बाद प्रसाद रूप स्वयं के उपयोग में लाओ।

२४.–**भक्ति प्राप्ति के आठ सरल साधन**–

१.–स्वभाव में सरलता। मन से कुटिलता का हटाना। दूसरे का अनिष्ट करके अपने स्वार्थ की सिद्धि मन की कुटिलता है।

२.–जो कुछ भगवान ने घर, धन, परिवार दिया है उसमें संतुष्ट रहना। अनुचित उपायों से संसारी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा न करना संतुष्ट रहना।

३.–भगवान का दास कहलाकर दूसरे धनी मानियों की आशा व चापलूसी नहीं करना।

४.–अकारण किसी से वैर विग्रह न करना।

५.–सत्संग में प्रेम, संसारी लोगों से घनिष्ठता न रखकर प्रयोजन भर का संबंध रखना।

६.–भक्ति की श्रेष्ठता मानना, दुष्ट से तर्क न करना।

७.–स्वर्ग मोक्ष के सुखों की भी इच्छा न करना।

८.–मेरे (भगवत्) गुणानुवाद का गान करना।

इन उपदेशों को श्रीराम ने दिया। सभी संत भी यही कहते हैं। एक-एक बात को ध्यान में लाकर उस पर विचार करना और चिंतन करके उसमें दृढ़ निष्ठा करना। जब तक मन से चिंतन नहीं होगा तब तक मन पर उसका प्रभाव नहीं होता है। अतः थोड़ा समय जितना सम्भव हो मन में पूजन या लीला चिंतन और सिद्धांत का निश्चय अवश्य करना चाहिए।

२५.–मन को रोककर भगवान की आराधना में लगाना। कर्म करने वाली इन्द्रियों से भक्ति संबंधी कर्म करना। भगवान के, संतों के वाक्यों में श्रद्धा रखकर प्रभु के नाम का उच्चारण करना, अपमान सम्मान को सहना, सकाम कर्मों को, निष्काम कर्मों को करके उन्हें श्रीकृष्णार्पण करना, यही गुरुजनों के उपदेश हैं। हम से कुछ न बन पड़े

तो सायं प्रात: गुरुदेव भगवान का ध्यान करके उन्हें प्रणाम करना। हम लोगों को गुरुदेव ने भक्तमाल के, भागवत के, रामायन के सत्संग का जो उपदेश दिया है वही हमको कर्त्तव्य है। भक्त चरित्रों को नित्य कहने-सुनने से ही हम माया से बचकर श्रीकृष्ण कृपा को प्राप्त कर सकेंगे। एक साधन में विश्वास रखने से ही मन स्थिर रहता है। रोगी को स्वस्थ होने के लिए स्वयं दवा खानी पड़ेगी। स्वयं कुपथ्य से बचना पड़ेगा। इसी तरह से साधक को स्वयं संयम-नियम का पालन करना चाहिए और मन को भजन साधन में लगाना चाहिए। तभी वह लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगा।

२६.—जिस घर में भगवान का चित्र या प्रतिमा है, वह घर भगवान का है। जो इस बात में विश्वास करेगा वह धाम वास का फल प्राप्त करेगा। उस घर की सेवा धाम की सेवा है। उस घर के निवासी जो भगवान की सेवा करते हैं वे धामवासी हैं, भक्त हैं। उनकी सेवा संत-सेवा है।

२७.—एक गृहस्थ भक्त थे उनके घर में श्राद्ध का अवसर आया। परन्तु किन्हीं कारणों से ब्राह्मणों ने भोजन करने से इनकार कर दिया तब उस भक्त ने अपने घर के सदस्यों को जो वैष्णव थे ही, उन्हीं को प्रेम से भोजन कराया। इससे पितर लोग तृप्त हो गए। रात में स्वप्न में पितरों ने दर्शन दिया और कहा कि हम वैष्णवों के भोजन से प्रसन्न हैं। घर के सदस्य प्रभु सेवा में लगे हों तो उनमें श्रद्धा करके व्यवहार करना चाहिए। घर के बाहर के सभी वैष्णव आदर के योग्य हैं।

२८.—संसारी माता पिताओं की अपेक्षा लाखों गुना अधिक वात्सल्य भगवान अपने भक्त पर सदा करते हैं। पंडित गयाप्रसाद जी के उपदेश संख्या ४७९ में भजन के चार विघ्नों का उल्लेख है-

१.-सुकृत, २.-दुष्कृत, ३.-अपराध, ४.-अपनी भक्ति ज्ञान का अहंकार।

१.-पुण्य=सुकृत जब होंगे तो उनका फल सुख भोग है। स्वर्ग या इस पृथ्वी पर सुखों में आसक्त होने से भजन में बाधा होगी, इसलिए कर्म को कृष्णार्पण करना चाहिए। अपने पास कर्म का फल न रहे तो ठीक है। प्रभु जब उसका फल देंगे तो भजन में बाधा नहीं होगी।

२.-दुष्कृत=पाप। पापों को भोगने के लिए नरक में रहना पड़ेगा। रोग आदि से शरीर को कष्ट होगा तो भजन में बाधा होगी।

३.-अपराध-अपराधों में सबसे बड़ा अपराध भक्त का, गाय का, तुलसी, पीपल आदि जो भगवान की विभूतियाँ है उनका और भगवान का अपमान करके जो पाप बनता है उससे भजन में बाधा होती है। अपराधों से सदा बचते रहने का प्रयत्न करना चाहिए।

४.-अहंकार-जाति, विद्या, रूप, धन, बल और भजन का अहंकार ये भजन में बाधक हैं। मैं भजन करता हूँ, ये नहीं करते हैं। यह सोचकर अपने को श्रेष्ठ मानना ठीक नहीं है। इस जीव पर प्रभु की कितनी कृपा है हम नहीं जान सकते हैं। भजन हृदय की वस्तु है। हम हृदय को नहीं देख पाते हैं। उसे प्रभु ही देखते हैं। हृदय की बात पर, भाव पर प्रभु रीझते है। **''रीझत राम जानि जन जी की।''**

२९.–भगवद् भक्त जान बूझकर कोई अपराध नहीं करते हैं। अनजान में हुऐ अपराध सायं प्रातः प्रणाम, कीर्तन, स्नान आदि से दूर हो जाते है।

''जे राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुँ।'' (मानस-बाल० ८५/७)

इस माया जाल से प्रभु जिसकी रक्षा करें वह बचता है। अपनी शक्ति से बचने का प्रयास करने वाला डूब जाता है। दीन-हीन भक्तों की रक्षा स्वयं प्रभु करते हैं क्योंकि दीनबंधु है।

३०.–प्रभु श्रीकृष्ण का नाम पुण्डरीकाक्ष है। पुण्डरीक-कमल के समान नेत्र हैं। उन नेत्रों में जो अपने नेत्रों को मिलाते हैं तो मन श्रीभगवान के मन से मिल जाता है। अनन्यता एकाग्रता हो जाने के कारण भक्त पवित्र हो जाता है। भगवान श्रीशंकराचार्य का मत है कि पुण्डरीक हृदयकमल को परमात्मा सर्वदा देखा करते हैं। जीव के एक एक भाव को प्रभु जानते हैं इस बात को जानकर सभी को अपने हृदय में दुर्भाव न रखकर सद्भाव को ही रखना चाहिए। यही जीव को पवित्र करने वाला है। भगवत स्मरण, समर्पण से जीव पवित्र हो जाते हैं। भक्तमाल का आरम्भ भक्त शब्द से होता है और अंत में दास शब्द पर पूर्ति हो जाती है। भक्त दास का तात्पर्य है कि इस पूरे ग्रंथ का तात्पर्य यह है कि भक्तों के दास बनकर जीवन बिताओ। दोनों शब्दों का एक ही अर्थ है। अर्थात् आदि

से अंत तक भक्त का परत्व ही इस ग्रंथ में वर्णित है। भक्त दास कैसे होते हैं, इसका वर्णन भक्तमाल में किया गया है। बिना भक्तमाल के भक्ति का स्वरूप समझना और पाना कठिन है अतः भक्तमाल का आश्रय मुख्य रूप से लेना चाहिए।

श्रीनाभा जी ने भी सर्वत्र से संग्रह करके भक्तमाल की रचना की। भक्तमाल के सिद्धाँतों का समर्थन सर्वत्र मिलता है। भक्तमाल का वेद-पुराण-शास्त्रों से विरोध नहीं है। **''काढ्यों गाभा वेद को।''** श्रीनाभा जी ब्रह्मा जी के अवतार हैं अतः भक्तमाल वेद का अंकुर है। इसके पढ़ने से वेदादि इतिहास का पाठ हो जाता है। श्रवण करने से सबके श्रवण का फल प्राप्त होता है।

सद्गुरुदेव के समान हमें कोई संत नहीं मिला और भक्तमाल के समान कोई ग्रंथ नहीं मिला।

३१.–हानि, लाभ, प्रिय मिलन और वियोग प्रारब्ध वश होते ही रहते हैं। ऐसे अवसरों पर ॠषियों को भी क्षणिक हर्ष-विषाद होता है। जैसे संग्रहीत धन से संकट को दूर किया जाता है उसी प्रकार हृदय में संग्रहीत ज्ञान-वैराग्य के द्वारा सज्जन लोग हार्दिक कष्टों से बच जाते हैं उनके भजन-साधन में विघ्न विशेष नहीं होता है। ज्ञान भक्ति, वैराग्य का संग्रह भी इसीलिए किया जाता है कि समय पर काम आवे। हमको वियोग के कारण से दुःख होता है पर भगवत् कृपा उन्हें सुखमय श्रेष्ठ स्थान देकर और सुखी बनाती है। अतः हरि कृपा के विधान में संतोष करना चाहिए।

३२.–शृंगार रसमयी मधुर उपासना केवल कृष्ण में ही होनी चाहिए। संतों में गुरुजनों में यह भक्ति वर्जित है। अपने को ब्रज गोपी श्रीजी की दासी मानकर श्रीकृष्ण में ही पतिभाव रखना चाहिए अन्य संतों में नहीं। जैसे भगवान के नाम, रूप, लीला, धाम की उपासना होती है उसी प्रकार भक्तों के गुरुजनों की उपासना करनी चाहिए।

३३.–**''स्वभाव विजयः शौर्यम्।''** अपने भीतर की ओर झांककर देखने से अपने में, अपने स्वभाव में जो भी दोष दिखाई पड़ें उन्हें अपने भीतर से निकाल दें। स्वभाव पर विजय प्राप्त कर ले वही सबसे बड़ा वीर है। संसारी जीवों को मार डालने से किसी को शूरवीर की उपाधि नहीं मिल सकती। अपनी इन्द्रियों को, अपने दुष्ट स्वभाव को जीतकर उसे सौम्य स्वभाव बना लेने वाले को शूरवीर कहा जायगा। दुष्ट

स्वभाव को जीतने के लिए सर्वप्रथम सत्संग की आवश्यकता है। साथ-साथ उत्तम शास्त्र, रामायण, भागवत, भक्तमाल आदि का अध्ययन करना चाहिए। संसारी उपन्यास, लौकिक साहित्य का पढ़ना कुसंग है। स्वभाव जीतने के लिए अपने मन में हर समय उत्तम विचार रखना, विश्व कल्याण की कामना मन में रखना, किसी का अनिष्ट चिंतन न करने से स्वभाव पर विजय हो जायेगी। धीरे-धीरे स्वभाव में परिवर्तन आ जाता है। भले में श्रद्धा, विश्वास, प्रेम, बुरे में अश्रद्धा अविश्वास होना आवश्यक है।

३४.—वैष्णव चिन्हों को सर्वदा धारण करने से भक्ति बढ़ती है। दुष्ट भूत-प्रेत आदि निकट नहीं आते हैं। यमदूत दूर से नमस्कार करते हैं। ऊर्ध्वपुण्ड्र, तुलसी, गोपी मृतिका धारण करने वाले एवं नाम जापक के हृदय में भगवान अपना निवास स्थान बना लेते हैं। जो लोग केवल भोगों की सामग्री प्राप्त करने के लिए शास्त्रों का अध्ययन करते हैं, प्रवचन करते हैं तदनुसार आचरण नहीं करते हैं उनको ज्ञानबन्धु कहा जाता है। जीविका चलाने के लिए कोई कारीगर कला सीखता है जीविका चलाता है उससे परमार्थ सिद्ध नहीं होता है। उसे सुख नहीं मिलता है। जैसे चम्मच दिन भर पकवान्न मिष्ठान में रहते हुए भी स्वाद नहीं ले सकता है। अतएव अध्ययन के अनुसार आचरण करना चाहिए। अन्यथा चार वेद, धर्म शास्त्र का अध्ययन व्यर्थ है।

३५.—मन में कीर्तन, नाम जप, पाठ आदि करने पर श्रीहनुमान जी आदि श्रवण निष्ठ भक्त कीर्तन, जप, पाठ आदि करने वाले के हृदय में उपस्थित होकर सुनते हैं यह निश्चित है। ऐसा अनुभव साधक को करके आनन्दित होना चाहिए।

मन में भक्तमाल के छप्पयों का, भक्त चरित्र का गान होने पर भगवान वहाँ उपस्थित होकर सुनते हैं। यही कारण है कि मानसिक कीर्तन, सेवा आदि की महिमा अनन्त हो जाती है। मन से जब कुछ किया जाता है तब मन का संग्रह अधिक रहता है। मन के इतस्तत: जाने पर मानसिक भजन-साधन बनेगा ही नहीं। वाणी शरीर आदि के द्वारा हुए आचरण में दम्भ दिखावा का लेश हो सकता है पर मन से मन में होने वाले साधन में दम्भ आदि का लेश नहीं रहता है। इन्हीं कारणों से मानसी साधन-भजन कठिन तो अवश्य है साथ ही उसका लाभ विशेष है।

३६.–दूसरे लोग मुझे सन्त कहते है, विद्वान कहते है इससे हमको यह नहीं मान लेना चाहिए कि मैं ज्ञानी, संत या विद्वान हूँ। जो लोग मेरी बड़ाई करते हैं वे स्वयं संत है, गुण ग्राही है अतः कण्ठी तिलक के नाते मेरी प्रशंसा करते है। वस्तुतः सत्य तो यही है कि वे गुण मुझमें नहीं हैं। यदि उन गुणों को हम अपने में मानकर अहंकार करते है तो सज्जनता का दुरुपयोग होगा। गुण सब भगवान के हैं जीव में उनका कण उनकी छाया कदाचित् आती है और जीव भी महान बन जाता है। भगवान हमको अपनी सेवा के योग्य बना लें यही प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिए।

३७.–जिनसे अपना कोई लाभ नहीं है ऐसा परदोषदर्शन, चिंतन साधकों को भगवच्चिंतन नहीं करने देता है। परदोष पापों का कीर्तन अपने हृदय को दुष्ट बना देता है। अतः इनका सर्वथा त्याग करना चाहिए।

घर के संसार के कार्य तथा परोपकार भी उसी हद तक करना चाहिए जिसमें कि कुछ विश्राम और भगवच्चिंतन करने का समय मिले। धीरे-धीरे भगवच्चिंतन का समय बढ़ाना चाहिए। अभ्यास बढ़ जाने से दूसरे कार्यों को करते समय भी भगवच्चिंतन होता रहता है। न विश्राम मिले और न प्रभु चिंतन के लिए समय मिले ऐसा कोई काम न अपनाये। यदि संत-भगवंत सेवा न बनी तो संसार के काम भी नहीं बनेंगे। विमुखों के कार्य की सिद्धि भी असिद्धि के समान है। श्रीजी कृपा करें।

३८.–किसी के उत्तम गुणों की प्रशंसा करनी चाहिए परन्तु स्वार्थवश झूठी प्रशंसा चापलूसी नहीं करनी चाहिए। चापलूसों द्वारा की गई प्रशंसा से प्रसन्न नहीं होना चाहिए। शत्रु से उतना भय नहीं है जितना भय झूठी प्रशंसा करने वालों से है।

श्रीकृष्ण का चिंतन करने से मन ज्ञान, भक्ति, वैराग्य का अधिकारी होता है। मन को लगातार संसार में लगाने से, विषयों की लालसा से नीच मलिन हो जायगा। जैसे संसार जल है और मन दूध है। यदि दूध को पानी में डाल दिया जाय तो वह पानी में मिल जायगा। इसी तरह मन संसार में लगाने से संसारी हो जाता है। पर यदि उसी दूध से निकले मक्खन को जल में डालोगे तो वह उसमें मिलेगा नहीं। अलग ऊपर उतराता रहेगा। इसी प्रकार साधन द्वारा ज्ञान-भक्ति प्राप्त कर मन संसार में जायगा तो वह संसार में लिप्त नहीं होगा अलग ही रहेगा।

३९.–मानव जीवन की समस्या दु:ख है। उससे चिंता, भय, वस्तुओं का अभाव, निराशा, पीड़ा, क्रोध, मन की उलझन आदि सब दु:ख के रूप हैं। मानव जीवन का परमलक्ष्य है, शांति, भक्ति, जीवनमुक्ति। सदा के लिए सभी दु:ख मिट जावें। अखण्ड प्रभु स्मृति प्रेम प्राप्त हो। यही मानव जीवन का उत्तम लक्ष्य है।

४०.–संसार कैसा है इसका ज्ञान संसार से अलग होने पर होता है। संसार से मन हटाए बिना संसार का ठीक–ठीक ज्ञान नहीं होता है, उसकी असारता समझ में नहीं आती है। भगवान कैसे हैं इसका ज्ञान भगवान में मन लगाने से होता है। भगवान से एकता होने पर ही पता चलेगा कि भगवान कैसे हैं। जीवात्मा की एकात्मकता परमात्मा से है। संसार से जीवात्मा की एकता नहीं है। अगर संसार से जीवात्मा की एकता होती तो उसमें मन लगने लगाने के बाद वहाँ से मन को हटना नहीं चाहिए। अपना शरीर और संसार इसमें जो आसक्ति है उसका कारण यह है कि हम उसकी नश्वरता दु:खरूपता को नहीं जानते है। संसार में अति आसक्ति के बाद एक न एक दिन ऐसा आयेगा कि वहाँ से मन हठ जायगा। ईश्वर से जीव की एकता का प्रमाण यही है कि एक बार यदि मन लग जाय तो सदा सर्वदा के लिए तल्लीनता हो जायगी। लाख और रंग की तरह। पिघली लाख में रंग के मिलने के बाद उसे अलग नहीं किया जा सकता है। वे स्वयं चाहें कि हम अलग हो जायें तो भी नहीं हो सकते। भावुक भक्त संसार को ईश्वर मानकर उनके साथ बुरा व्यवहार नहीं करता है मन ही मन उसे नमस्कार करता है पर तमोगुणी रजोगुणी संसार में लीन नहीं होता है। ईश्वर मानकर संसार को प्रणाम करना चाहिए। माया और उसके कर्म से अपने को बचाना चाहिए।

४१.–प्रभु का भजन–स्मरण होता रहे, सत्संग प्राप्त रहे तो कुशल ही कुशल है। इसके अतिरिक्त सारा ऐश्वर्य हो तो भी भगवद् विमुख विषयी जीव की कुशल नहीं है। सारे संसारी भोग पदार्थ क्षणिक हैं वे नित्य नहीं हैं अनित्य हैं। भगवत् सम्बन्ध से अनित्य पदार्थ भी नित्य हो जाते हैं।

४२.–अशुद्ध वायुमंडल हो रहा है, पर्यावरण की चर्चा समाचार पत्रों में आ रही है। इससे बचने के लिए वृन्दावन में रहना चाहिए। अर्थात् घर में द्वार पर अधिक से अधिक श्रीतुलसी के वृक्ष लगाकर उनका पूजन–दर्शन करना चाहिए। नीम आंवला आदि

के वृक्षों से वायु शुद्ध होती हैं। तुलसी सब प्रकार के विषों को दूर करने वाली है, उसका कार्तिक में विशेष रूप से पूजन दीपदानादि करना चाहिए।

४३.—हमारा सौभाग्य है कि प्रभु की इस विश्व वाटिका में हमने जन्म लिया। उनको प्रसन्न करने के लिए हम एक पुष्प की तरह खिलें और उन्हें अर्पण हो जाए, इष्ट देव को प्रसन्न करना ही प्राणी का कर्त्तव्य है। जिस प्रकार से आपका मन प्रसन्न रहे वैसा ही कीजिए। स्वयं प्रभु सत्य, दया, क्षमा के समुद्र हैं तो हमको भी प्राणियों के साथ सत्य व्यवहार करना चाहिए। सबके साथ दयामय व्यवहार ही कर्तव्य है। किसी के अपराध पर हम उसे क्षमा कर दें तो प्रभु प्रसन्न होगें, क्षमा करने में भगवान पृथ्वी से भी अधिक हैं। पृथ्वी माता के ऊपर हम अनेक अपराध करते हैं पर माता सब सहन करती है। हम को भी दूसरे के अपराधों पर रुष्ट न होकर क्षमा ही करना चाहिए। यह प्रभु को प्रसन्न करने का साधन है। बदला लेने की इच्छा से फिर जन्म लेना पड़ता है। भजन करने के लिए जन्म लेना अच्छा है, बदला चुकाने के लिए जन्म लेना अच्छा नहीं है। किसी का ऋण रह गया तो उसे चुकाने के लिए पशु बनना पड़ेगा, कष्ट होगा। सत्संग भजन सेवा के लिए बार-बार जन्म लेना अच्छा है। जय श्रीराधे, जय श्रीराधे।

४४.—धार्मिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन में हम उन्नति कर रहे हैं अथवा हम नीचे गिर रहे हैं इस पर भी विचार करना चाहिए। जब भगवत्चर्चा, सत्संग प्रिय लगे, भगवान की सेवा-पूजा प्रिय लगे, दीन दु:खी प्राणियों की सेवा प्रिय लगे तो समझो कि हम उन्नति की ओर बढ़ रहे हैं। कुसंग में संसारी बातें अच्छी लगे, दुष्टों के संग में आसक्ति हो जाय, दूसरों को धोखा देकर छल कपट से सम्पत्ति बढ़ाने की इच्छा हो जाय तो समझो कि हमारी अवनति हो रही है। प्रत्येक बुद्धिमान मनुष्य अवनति से बचकर उन्नति चाहता है। हमारा मन हमारी बुद्धि भगवत सेवा में लगी है या नहीं, यदि लग रही है तो इसे भगवान की कृपा या प्रेरणा ही समझो। कभी-कभी मन की आँखों से प्रभु को सामने खड़ा देखो। कभी बैठे हैं, कभी कुछ कह रहे हैं। इस प्रकार धीरे-धीरे भगवत् का सानिध्य प्राप्त करें। मन में कोई संकट हो व्याकुलता हो तो प्रभु के सामने निवेदन करके निश्चिन्त हो जाना चाहिए। जो कुछ भी हो उसे प्रभु की इच्छा मानकर संतुष्ट रहना चाहिए। गुरुदेव की कृपा से शरणागति प्राप्त हुई है। उसका तात्पर्य

यह है कि प्रभु हमारे हैं, मैं उनका हूँ। जिस तरह बच्चे का माता पर, मित्र पर मित्र का, सती-साध्वी पत्नी का अपने पति पर प्रेम होता है, अधिकार होता है उसी प्रकार प्रभु पर प्रेम और अधिकार भक्तों का होता है।

४५.-गीता में प्रभु का कथन है कि अपने द्वारा अपना उद्धार करना चाहिए अर्थात् भव सागर से पार होना चाहिए। यत्नपूर्वक साधन करने से प्रभु कृपा अवश्य करेंगे। मन अपना मित्र है, और शत्रु भी है। अपने वश में हुआ मन अपना मित्र है उससे भजन-साधन बनेगा, मित्रता का काम करेगा। विषयी मन, अवश मन, अवश इन्द्रियाँ शत्रु हैं यह सब नरक में गिरा देंगी। अतः मन की ओर से सावधान रहें। हठ कर के भजन में लगावें। मन भजन में न लगे तो भी बिना मन लगे भजन करने से मन लगने लग जायगा। सबका मन भगवान में लगे सब पर प्रभु की कृपा बनी रहें।

४६.-कोई मन्द गति से भी यदि चले तो भी अपने लक्ष्य प्रभु के श्रीचरणों में पहुँच जायेगा। चींटी यदि चली, चलती रही तो कोसों दूर पहुँच जायगी। गरुड़जी यदि न चलें, आलस्य में बैठे रहें तो एक पग भी नहीं चल पावेंगे। भजन, साधन, सत्संग लगातार करते-करते प्रभु कृपा से जीव भगवान को प्राप्त कर लेता है अतः लगातार साधन कर्त्तव्य है।

४७.-तपस्या में जो विघ्न सतयुग में आते थे, कलयुग में आवें तो क्या आश्चर्य है। विघ्न अपने ही भीतर हैं। उनसे डर है, बाहरी विघ्नों से कोई डर नहीं है। यदि हनुमत् कृपा है तो बाहरी भीतरी कोई विघ्न नहीं व्यापेंगे।

४८.-युगल किशोर भगवान श्रीराधा कृष्ण का नाम, रूप, लीला, धाम मंगलमय है। हर स्थिति में भगवान का यथासम्भव, यथाशक्ति, स्मरण-कीर्तन करने का स्वभाव बन जाना चाहिए। सबके हृदय में विराजमान रहकर प्रभु हृदय के भावों को देखते हैं। इस बात में विश्वास होने से मुनिजन स्वयं पवित्र रहते हैं दूसरो को भी पवित्र कर देते हैं। कोई प्राणी बिना कर्म किये नहीं रह सकता है अतः अपने मन, वाणी, शरीर से जो कर्म बनते है उनको रजोगुण, तमोगुण से बचाकर सात्विक बनाना चाहिए। जिन कर्मों से स्वयं को या दूसरों को भी शुभ लाभ नहीं होता है, ऐसे गुण तमोगुणी हैं। जिन कर्मों से शरीर को लौकिक सुख मिले स्वर्गादि की प्राप्ति हो वे राजसी कर्म हैं। जिन कर्मों से पर उपकार

हो, ईश्वर प्रसन्न हो वे सब सात्विक हैं। निर्गुण कर्म वे हैं जो मात्र भगवत् को प्रसन्न करने के लिए किये जाय। अपने सुख की लालसा का लेश भी न हो तो ऐसे कर्म निर्गुण है। स्वयं प्रभु निर्गुण हैं। कभी-कभी किसी काल में भगवान श्रीराम, कृष्ण, नृसिंह आदि युद्धरत हो जाते हैं तो भी वे निर्गुण ही रहते हैं। क्रोध आदि के वश में नहीं होते, स्वयं क्रोध को अपने वश में रखते हैं। जितने क्रोध की आवश्यकता होती है, उतने से दुष्टों का संहार करके उनका कल्याण करते हैं। जीव में क्रोध-काम आदि आते हैं तो वह उनके अधीन हो जाता है और विवेक शून्य होकर अनुचित कार्य कर डालता है। ईश्वर जिनका संहार करता है उनका मोक्ष हो जाता है अतः दुष्टों के वध में ईश्वर की कृपा रहती है। ईश्वर सर्वदा कृपामय है। जीव क्रोध में आकर किसी की हत्या करता है तो हत्या के अहंकार से युक्त होने के कारण हत्या के दण्ड का भागी होता है। जिसकी हत्या करता है उसकी दुर्गति होती है। दया, क्षमा, सत्य, अहिंसा, अस्तेय आदि सभी सद्‌गुण प्रभु में सहज भाव से नित्य निवास करते हैं। जीव में यह गुण कभी रहते हैं और कभी नहीं भी रहते हैं भक्त में प्रभु गुणों का निवास होता है तो भक्त भी सहज सद्‌गुणवान हो जाता है। इसी तरह ऐश्वर्य माधुर्यादि भी प्रभु में नित्य रहते हैं। बालकृष्ण लाल ने ब्रज में बड़े दुष्ट दैत्यों का संहार किया। ऐश्वर्य चरित्र किये पर अपने ऐश्वर्य को छिपाकर रक्खा। ऐसा पर्दा योगमाया का कि ये भगवान हैं कोई पहचान नहीं सका। पीछे भगवान का जब वियोग हुआ तो एक-एक चरित्र का स्मरण करके ब्रजवासी लोग उनके ऐश्वर्य का ईश्वरता का अनुमान करके उन्हें ईश्वर मानने लगे। द्वारका की लीला में ऐश्वर्य प्रधान रहा। प्रभु ने चतुर्भुज स्वरूप को स्वीकार किया पर सर्वदा उनमें माधुर्य रहा। भक्तजन दर्शन करके निमग्न हो जाते थे। कोई जीव प्रभु श्रीकृष्ण को, उनके रहस्य को, सम्पूर्ण को नहीं जान सकता है जितना रहस्य तत्व स्वयं भगवान किसी को जनाना चाहते हैं बस उतने का ज्ञान भक्त को हो जाता है, अनन्त रूप को कोई जानने-सुनने या समझने में समर्थ नहीं हो सकता है। जयति गोकुलाधीश।

४९.-दुःख-सुख, हानि-लाभ, हर्ष-विषाद सभी के सामने आते हैं। पर यह आने-जाने वाले हैं सर्वदा रहने वाले नहीं हैं अतः इनसे व्याकुल नहीं होना चाहिए। अधिक प्रसन्न भी नहीं होना चाहिए।

५०.–स्वप्न या जागृति के अनुभवों को सबके सामने बार-बार कहने से अपनी प्रशंसा का भाव आ जाता है। तब अनुभव होना बन्द हो जाता है। इसलिए साधक को अपने अनुभव सबके सामने बार-बार नहीं कहना चाहिए। सिद्ध गुरुजन बार-बार कहें और साधकों को साधन पथ पर अग्रसर करें। अपने पीछे चलाकर भगवान की ओर चलना सिखावें तो अति उत्तम है। अपने अनुभव की कथा कहने में सिद्ध को अहंकार नहीं होता है। पर साधक को भय है अतः उसे सावधान रहना चाहिए। आनन्द कन्द श्रीकृष्ण के स्वरूप का चिंतन–सब कुछ एवं सबके स्वामी श्रीकृष्ण ही हैं, ऐसा निश्चय। श्वांस-श्वांस पर नामोच्चारण। कानों से भगवान और भक्तचरित्र श्रवण। नेत्रों से श्रीकृष्ण की प्रतिमाओं के, भक्तों के दर्शन, वाणी से भगवान के गुण-प्रभाव का वर्णन, शरीर से भक्त भगवान की सेवा आदि वैष्णव धर्मों का आचरण श्रीकृष्ण की शरणागति के अन्दर ही आ जाते हैं। कोई भी कर्म तब पवित्र होता है जब उसे श्रीकृष्ण के लिए करके कृष्णार्पण कर दिया जाय। यही कर्म का रहस्य है।

५१.–भक्तों का स्वभाव होता है कि वे भक्तों से भगवान से एकता चाहते हैं। सबसे पहले अपने मन में, बुद्धि में एकता होनी चाहिए। फिर अपनी सभी इन्द्रियों में एकता होनी चाहिए। सब एक साथ मिलकर भगवान की सेवा में लगें। बाद में फिर परिवार में एकता करनी चाहिए। सभी लोग प्रभु की ओर आकृष्ट होगें तब शांति होगी। बाद में समाज में, अपने पड़ोसियों के साथ एकता स्थापित करके सत्संग-कीर्तन का सुख लेना और देना चाहिए। भक्तों के और भगवान के मिलन से, मिलाने वाले को भी आनन्द मिलेगा।

जिन भौतिक सिद्धियों को साधक चाहता है, वे तो पशु पक्षियों को प्राप्त हैं, उनसे उनको कोई लाभ नही होता है। गीध दूर तक देखता है, मक्खी आकाश में उड़ती है, गिरिगिट रंग बदलता है, ये यदि मनुष्य में आ जाते हैं तो वह सिद्ध बन जाता है, धन, प्रतिष्ठा, अहंकार का संचय कर लेता है, पर ज्ञान और भक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता है। उपासना का मतलब अन्तःकरण को शुद्ध करने से है। शुद्ध अन्तःकरण में स्वरूप का दर्शन होगा, सर्वत्र प्रभु की सत्ता महत्ता दीखेगी, प्रेम का प्रचार-प्रसार होगा। जीवन-जन्म सफल हो जायगा। अतः साधक को सिद्धियाँ प्राप्त करने का प्रयास नहीं

करना चाहिए। ज्ञान-भक्ति से सारी सिद्धियाँ सहज में बिना इच्छा के मिल जाती हैं। सिद्धियों की प्राप्ति से ज्ञान-भक्ति की प्राप्ति नहीं होगी।

५२.—इस संसार को ईश्वर से प्रकट मानें, ईश्वर का रूप मानें, तब मन में शांति रहेगी। जो कुछ हो रहा है अथवा जो कुछ होगा उससे जीवों का कल्याण ही होगा। दयामय प्रभु सबका भरण-पोषण करते हैं, आगे भी करेंगे। अपने पूर्वकृत कर्मों के फल स्वरूप कुछ कष्ट आ जाय तो उसे भी सहर्ष सहन करना चाहिए, ईश्वर को दोष नहीं देना चाहिए। हमारे पापों का पूरा-पूरा फल मिलें तो हमको एक क्षण के लिए भी शांति न मिलें। प्रभु दया करके कम से कम कष्ट देते हैं, वे दयामय हैं। **''हरिः शरणम् हरिः शरणम्''** ऐसा निरंतर कहने वाले को बाधाएँ व्याप्त नहीं होती हैं। कराल कलिकाल में भक्तजन शांत और सुखी हैं। मैं विश्व कल्याण की कामना करता हूँ।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्॥

५३.—जिस वर्णाश्रम में प्रभु ने नियुक्त कर दिया है वहीं रहकर कर्त्तव्य का पालन, परिवार पोषण करना ही चाहिए। इसके साथ यह भी नहीं भूलना चाहिए कि संसारी सम्पर्क अनित्य है इसलिए इनमें आसक्ति न हो। सर्वथा आसक्ति छूट न सके तो धीरे-धीरे कम करनी चाहिए। आसक्ति कम होने पर या न रहने पर भी परिवार पालन-पोषण कर्तव्य बुद्धि से करना ही चाहिए। इस मानसिक शुद्धि का साधन शुद्ध विचार, शुद्ध भोजन है। साधक के साधन में जितने भी विघ्न हैं, वे सत्संग से और नाम जप से दूर हो जाते है। सत्संग का, नाम जप का, लौकिक लाभ उठाने का कभी विचार नहीं करना चाहिए। स्वप्न के दिव्य अनुभव सबसे नहीं कहना चाहिए। कथन अधिकारी के समक्ष हो सकता है, यदि उससे उसका कोई लाभ हो। उस समय आत्म प्रशंसा का लेश न हो। अशुभ स्वप्न जब तक आवें तब तक साधना में कमी मानकर सावधानी से साधना करनी चाहिए। सर्वश्रेष्ठ साधन सत्संग और नाम जप है, साथ ही यही सर्वश्रेष्ठ साध्य भी है। वैष्णव जन्म-जन्म में यही प्राप्त करना चाहते हैं। जब तक नाम जप में रस नहीं आता, उसमें मन नहीं लगता तब तक साधना अवस्था है। साधन करते-करते जब नाम के रस का मधुर आस्वादन हो, भूलने पर मन घबराने लगे,

लौकिक वासनाएँ मन में न रहें यही सिद्धावस्था है। स्वरूप चिन्तन युक्त नाम जप से विश्वास, ज्ञान, वैराग्य आदि सब सुदृढ़ हो जाते हैं। हरिपाल जिनके हाथों भगवान लुटे, रामदास डाकौर तथा साक्षी गोपाल का भक्त ब्राह्मण जिनके पीछे-पीछे भगवान चले। अतः भागवत् के अनुसार इनमें निरपेक्षता, मनन शीलता, शांति, निर्वैर, समदृष्टि ये सब सद्गुण थे क्योंकि बिना इनके भगवान पीछे-पीछे चल नहीं सकते। ये दर्शन शास्त्रों के प्रवक्ता नहीं थे। अनन्य निष्किंचन भक्त थे। इससे यह सिद्ध हुआ कि सभी गुण भक्त में आ जाते हैं क्योंकि भगवान आ जाते हैं। भगवान के साथ सभी गुण अपने आप आ जाते हैं। भक्तिहीन नारकीय है, सभी सद्गुणों से हीन है। जिस गुण से भगवान प्रसन्न हों वही गुण है। लौकिक गुण लोगों को रिझाने वाले हैं उनसे आध्यात्मिक लाभ नहीं मिलता है।

५४.-हम लोगों का कल्याण इस बात में है कि संत-भगवन्त कृपा से हम निरन्तर भगवान का स्मरण करें, उन्हें कभी न भूलें। गीता अध्याय ८ श्लोक १४ में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि-"हे अर्जुन! जो अनन्य भाव से लगातार मेरा स्मरण करता है ऐसे योगी के लिए मैं सुलभ हूँ।" भगवान के इस वाक्य पर जिसे विश्वास है वह सर्वत्र अपने प्रभु को मानता है। जागृत अवस्था में स्मरण सम्भव है परन्तु सोते समय स्मरण कैसे हो यह असम्भव है। जागृत अवस्था में जो कार्य किया जाता है प्रायः सोते समय भी वही स्वप्न में दिखाई पड़ता है। सोने के पहले स्मरण करते-करते सोना और जाग कर स्मरण करना इसके बीच का सोने का समय भी स्मरण में माना जायगा। जीव के सच्चे सगे सम्बन्धी भगवान ही हैं। ईश्वर दयामय है, कभी भी जीवों पर कुपित नहीं होता है जैसे गर्भगत बालक माता के पेट में हाथ पैर चलाता है। माता को कष्ट होता है, परन्तु माता उस बालक पर कुपित नहीं होती है। इसी प्रकार प्रभु भी आस्तिक नास्तिक सभी जीवों के साथ रहते हैं। नरक में भी साथ नहीं छोड़ते हैं। अन्तर्यामी रूप से प्रभु सर्वत्र जीव के साथ रहते हैं। अगर बालक कूप में गिर पड़े तो उसकी माता जोर-जोर से रोकर पुकार करेगी लोगों से कहेगी कि बालक को कुएँ से निकालो पर स्वयं नहीं कूदेगी। भगवान ऐसे दयालु है कि अघासुर अजगर के मुख में जब सब ग्वाल

बाल घुस गये तो भगवान उनकी रक्षा के लिय स्वयं भी अघासुर के मुँह में प्रविष्ट हो गये। ऐसे दयालु प्रभु आप सबों का सर्वदा मंगल करें। जय श्रीराम, जय घनश्याम।

५५.—राजा से या मालिक से यदि कोई साधारण मनुष्य मिलना चाहे तो उसके मिल पाने में कठिनाई है। यदि वह राजा के सेवक से मैत्री सम्पर्क स्थापित कर ले उससे अनुनय विनय करें, उसका प्रेमपात्र बन जाय तो वह राजसेवक किसी न किसी प्रकार राजा से मिला देगा। इस प्रकार राजा कृपा की प्राप्ति सहज हो ही जाती है। इसी प्रकार ईश्वर प्राप्ति के लिए ईश्वर भक्तों का सम्पर्क संबंध होना आवश्यक है। हनुमानजी ने सुग्रीव, विभीषण आदि को श्रीरामजी से मिला दिया।

५६.—जीवमात्र भगवान के सेवक हैं, इनसे सद्‌भाव मिलने पर ही प्रभु प्राप्ति संभव है। जीव नित्य ईश्वर का दास है। दास होकर यदि अपने को स्वामी माने, स्वामी का सा व्यवहार करे, अहंकार करे तो वह अपराधी है, पतित हो जाता है। लोक व्यवहार में देखो राजा का खजांची यदि राजकोष को अपना मानकर मनमाना दुरुपयोग करे तो वह राजदण्ड का भागी होगा। जीव का अपना कुछ है ही नहीं। सगे संबधियों को, गृहसम्पत्ति को लौकिक व्यवहार की सिद्धि के लिए अपना सरीखा मानकर व्यवहार करना चाहिए पर हृदय से यह मानना चाहिए कि यह सब अपना नहीं है, आसक्ति के योग्य नहीं है। और की क्या चले अपने निकट अपना कहने के लिए सर्वप्रथम शरीर है तो यह भी अपना अर्थात् जीव का नहीं है। पंच तत्त्व का है और ईश्वर का दिया हुआ है। हमने इसे नहीं बनाया है। यदि प्रारब्ध से मिला मानो, ईश्वरदत्त न मानों तो अज्ञान है। प्रारब्ध कर्म फल का दाता भी ईश्वर ही है। अतः ईश्वर का आश्रय ही लेना चाहिए। जो भगवान का है उसे भगवान को अर्पण करने के बाद प्रसाद रूप स्वयं के उपयोग में लाओ।

५७.—मीन भगवान बड़े से बड़े हो गये पर भाषा उनकी नहीं बदली। अपने रहने के लिए विस्तृत स्थान और रक्षा की माँग करते ही रहे। इसी प्रकार यदि कदाचित् भक्त बड़ा हो जाय, सिद्ध हो जाय तो भी उसे दैन्य का त्याग नहीं करना चाहिए। बड़े से बड़े स्थान की याचना करनी चाहिए। बड़े से बड़ा स्थान भक्त के लिए भगवच्चरण हैं और भगवान के लिए भक्त हृदय है। यही स्थान निर्भयता देते हैं अन्यत्र तो भय है।

इस प्रकार स्वयं जानकर अपने ही द्वारा अपना उद्धार करना चाहिए। भक्ति का आचरण करते हुए भक्ति को बढ़ाना चाहिए। दूसरों पर कृपा करना उत्तम है पर पहले अपने ऊपर कृपा करनी चाहिए। अपने को कुमार्ग से बचाना, सन्मार्ग पर ले जाना ही अपने ऊपर कृपा करना है। अपने को कुमार्ग पर ले जाने वाले ही आत्मघाती हैं ऐसे को सत्संग या भगवत् कथा प्रिय नहीं होती।

५८.—एक बार श्रीराम जी ने पुरवासियों को यह उपदेश दिया। गुरु ब्राह्मणों को इसलिए बुलाया कि यदि मैं कुछ अनुचित कहूँ तो वे मुझे टोकेंगे। मानने की स्वतंत्रता दी। मेरा कथन ठीक जँचे तो मानो नहीं तो जो अच्छा लगता है उसे ही करो। मेरे अनुशासन को मानने वाला मेरा सेवक है और मुझे प्रिय है।

५९.—मनुष्य शरीर दुर्लभ है, वह मेरी कृपा से सुलभ हुआ, इसे पाकर विषयों को भोगने वाले आवागमन के चक्र में जाते हैं। इस शरीर से आत्म कल्याण का प्रयास करना चाहिए। जो नहीं करते वे आत्मघाती हैं अमृत देकर विष लेते हैं। नाशवान शरीर से अविनाशी वस्तु को प्राप्त करना परम लाभ है।

६०.—दोनों लोकों को सुखमय बनाने वाली भक्ति ही श्रेष्ठ है जिसका वर्णन पुराण शास्त्रों में किया गया है। ज्ञान साधन में बाधा है। मन का आधार वहाँ नहीं मिलता है, जहाँ उसे लगाया जाय। भक्ति स्वतन्त्र है, ज्ञान के आधीन नहीं है। ज्ञान-वैराग्य को बढ़ावा देकर भक्ति को खर्व नहीं करना। प्राप्ति का साधन सत्संग है, बिना इसके भक्ति को प्राप्त करना कठिन है।

६१.—संसार में पुण्य एक ही है विप्र पद की पूजा, विप्र पद पूजक के अनुकूल मुनि और देवता भी रहते हैं।

६२.—श्रीशंकर के भजन बिना भक्ति नहीं मिलती, तात्पर्य यह कि भक्त भजन के बिना हम द्रवित नहीं होते। यह गुप्त मत है। नरसी आदि को शंकरजी की कृपा से भक्ति मिली। भक्ति अत्यंत दुर्लभ है बहुत प्रयास करना पड़ेगा। ऐसा विचार कर भक्ति पथ का त्याग नहीं करना चाहिए। हमसे भक्ति साधन नहीं बनेगा ऐसा समझकर निराश नहीं होना चाहिए। भक्ति प्राप्ति के योग, समाधि, यज्ञ और जप तप आदि ही साधन नहीं हैं। मात्र इन साधनों से उसकी प्राप्ति नहीं होती। ये साधन कठिन हैं सरल साधन है :—

१. स्वभाव में सरलता, मन से कुटिलता को हटाना। दूसरे का अनिष्ट करके अपने स्वार्थ की सिद्धि मन की कुटिलता है।

२. जो कुछ भगवान ने घर, धन, परिवार दिया है, उसमें संतुष्ट रहना। अनुचित उपायों से संसारी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा न करना, संतुष्ट रहना।

३. भगवान का दास कहलाकर दूसरे विमुख धनीमानियों की आशा, चापलूसी नहीं करना।

४. अकारण किसी से वैर विग्रह न करना।

५. सत्संग में प्रेम, संसारी लोगों से घनिष्ठता न रखकर प्रयोजन भर का संबंध रखना।

६. भक्ति की श्रेष्ठता मानना, दुष्ट से तर्क न करना।

७. स्वर्ग मोक्ष के सुखों की भी इच्छा न करना।

८. मेरे (भगवत्) गुणानुवाद का गान करना।

इन उपदेशों को श्रीराम ने दिया। संत भी यही कहते हैं। एक-एक बात को ध्यान में लाकर उस पर विचार करना और चिंतन करके उसमें दृढ़ निष्ठा करना। जब तक मन से चिंतन नहीं होगा तब तक मन पर उसका प्रभाव नहीं होता है। अतः थोड़ा समय जितना संभव हो मन में पूजा या लीला चिंतन और सिद्धांत का निश्चय अवश्य करना चाहिए।

६३.–मेरे विचार से गीता का तात्पर्य भगवत् शरणागति है। अर्जुन ने शरणागत होकर वर्णाश्रम धर्म का पालन किया। आरम्भ में ''**कार्पण्य दोषोंपहतः।**'' अंत में ''**सर्वधर्मान्परित्यज्य।**'' ये वाक्य ही प्रमाण हैं। गीता के वास्तविक श्लोकार्थ को समझे बिना भी जो सप्रेम गीता पढ़ता-सुनता है वह भगवत् पद को प्राप्त करता है जैसे नारायण शब्द का उच्चारण करने से अजामिल।

६४.–जिज्ञासा, प्रयत्न, विचार तथा त्याग को जीवन में निरंतर रहना चाहिए तभी जीवन जीवन है। भगवत् संबंध में सदा जिज्ञासा अर्थात् जानने की इच्छा, नाम का, रूप का, लीला का, धाम का महत्व क्या है, किन किन लोगों ने इस महत्व का अनुभव किया

इसे भक्त चरित्रों के माध्यम से जाना जाता है। शरीर की, मन-वाणी की सम्पूर्ण शक्ति से साधन करने का प्रयत्न करना। जो प्रयत्न करता है उसे ही कृपा प्राप्त होती है। **''मन क्रम वचन छांडि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई॥''** (मानस-बाल० १९९/६)

चतुराई से भजन-साधन करने वाले के मन में साधन-भजन का अहंकार हो सकता है। सकामता कपट है, चतुराई है। साधक जब प्रयत्न करता है और थककर अपना सर्वस्व प्रभु को समर्पित कर शरणापन्न हो जाता है तब साधनों की पूर्ति हो जाती है। सतत विचारशील मनुष्य ही सत्-असत् का निर्णय कर पाता है। विचारमग्न रहने वाले के शरीर पर संकट आ सकते हैं पर मन पर नहीं। विचारवान ही असत् का त्यागकर पाता है। भक्ति की, ब्रह्म की चर्चा करने वाले तो हम सरीखे बहुत हो सकते हैं पर भक्ति रस में निमग्न ब्रह्मज्ञानी थोड़े ही होते हैं। पठन, श्रवण, भजन, मनन का सुख ही वास्तविक सुख है।

६५.-गीता के आरंभ में विषाद योग ही प्रथम है। महापुरुषों का विषाद भी योग है। विमुख अज्ञानी विषाद के कारण आत्महत्या करता है, उसे भुलाने के लिए दुर्वासनाओं का आश्रय लेता है और अंधेरे से अंधेरे में प्रवेश करता चला जाता है, अपना सर्वनाश कर लेता है। परन्तु महापुरुष का विषाद सोये हुए ज्ञान-वैराग्य को जगा देता है। विषाद के समय जो सद्‌गुरु का आश्रय लेता है उसे सन्मार्ग और उस पर चलने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। वह अपने इष्ट के चरणों में शीघ्र ही पहुँच जाता है। अर्जुन के विषाद के फलस्वरूप श्रीकृष्ण ने शरणागति प्रदान की। विषाद योग से गीता सरीखा अद्‌भुत दर्शन शास्त्र साधकों के सामने आया।

६६.-गीतोक्त कर्मयोग को ज्ञानयोग प्रकाश देता है। ज्ञानयोग को भक्तियोग प्रकाशित करता है। निष्काम कर्मयोग से चित्त शुद्धि होने पर प्राणी जीवन्मुक्त हो जाता है। संसार की बड़ी से बड़ी चुनौती को स्वीकार कर लेता है। संकट के सामने घुटने न टेक कर आत्मशक्ति के अनुसार सामना करता है। इस प्रकार कर्म करना ईश्वर की आज्ञा पालन करना है। **''आग्या सम न सुसाहिब सेवा।''** (मानस-अयो० ३००/४) आज्ञा पालन के समान स्वामी की कोई सेवा नहीं है। आज्ञा पालक की रक्षा स्वामी सर्वदा करता है।

अर्जुन ने प्रभु की आज्ञा से दो प्रतिज्ञाएँ कीं। ''**अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम्।**'' विकट परिस्थिति में भी दीन बनकर संसार के सामने गिड़गिड़ाना नहीं चाहिए और न भागना ही चाहिए। अपने प्रभु का आश्रय लेकर प्रथम कर्मयोग फिर ज्ञानयोग उसके बाद भक्तियोग की ओर चलना चाहिए। दृढ़ विश्वासी को ईश्वराधीन फल मिलता है। कर्म करना यह अपना कर्त्तव्य है फल देना ईश्वर के हाथ में है।

६७.–''**वर्द्धमान गुरु वचन रति सो संग्रह नहि छाडियों।**'' वर्द्धमान अर्थात् सर्वदा बढ़ने वाले। ऐसा तत्व प्रेम और ईश्वर है। दोनों को एक कहा जाता है। गुरु वचनों में विश्वास होने से उनमें रति होती है। वेद, गुरु वाक्यों में विश्वास को श्रद्धा कहते हैं, इसके बिना भक्ति का श्रीगणेश नहीं होता है। ''**कवनिउ सिद्धि कि बिनु विस्वासा।**' गुरु वचनों में विश्वास के बिना कोई सिद्धि नहीं मिलती है। पार्वती वाक्य– '**गुरु के बचन प्रतीति न जेही। सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही॥**' (मानस–बाल० ७९/८)

६८.–'**आपत्ति काले मर्यादा नास्ति।**' यह उक्ति प्रसिद्ध है। पर साधक यदि जरा–जरा सी बात पर उसे संकट मानकर नियमों को भंग करने लग जाय तो धीरे–धीरे वह नीचे गिरकर पतित हो जायगा। क्योंकि विषयों का अन्त नहीं है। पानी का प्रवाह यदि एक बार ऊपर से छूट गया तो फिर वह नीचे की ओर ही जायगा। जिसके कपड़े साफ होते हैं वह धूलि और गंदी जगह में बैठने से डरता है। जहाँ एक बार गंदे हुए फिर उनके गंदे होने का भय नहीं रहता है और उसे गंदगी से डर नहीं लगता है। जो स्वयं पवित्र है वह पवित्र स्थान और पवित्र संग में रहना चाहता है। ईश्वर सर्वथा पवित्र है और अपने लिए पवित्र स्थान को खोजता है। जहाँ मायिक विकारों का निवास है वहाँ ईश्वरीय आनंद का अनुभव नहीं होगा। पवित्र हृदय में प्रभु की छवि प्रकट होती है और प्रभु के नाम–रूप का स्मरण करने से हृदयादि पवित्र होते हैं।

६९.–भक्त, भगवन्त और गुरुदेव के प्रति समर्पण ही पूर्ण रूप से समर्पण है। कोई भगवान को समर्पित हो और भक्त को न हो तो वह समर्पण अधूरा है, ऐसे ही गुरुदेव के प्रति भी। जो कुछ पत्र, पुष्प, फल, जल, नैवेद्य आदि भगवान को समर्पित किया जाता है, वह प्रसाद फिर बलि, उद्धव, अर्जुन, विभीषण, हनुमान आदि भक्तों को, पार्षदो को भी समर्पित किया जाता है। ''**वासुदेव प्रसादान्नं सर्वे ग्रहणान्तु**

वैष्णवा:।'' हे वैष्णवों जनो! वासुदेव प्रसादान्न को आप स्वीकार कीजिए। तात्पर्य यह कि भक्त, भगवन्त, गुरुदेव की साथ-साथ भक्ति होनी चाहिए। किसी एक की जब भी कहीं अवहेलना हुई तो साधना में बाधा हो जाती है। अगस्त्य आदि के आगमन पर उनका स्वागत नहीं हुआ, भगवद् ध्यान लगाए बैठा रहा तो उस राजा को गज योनि प्राप्त हुई जो आत्म विस्मृति कारिणी होती है।

काकभुशुण्डि ने गुरुदेव के आगमन पर अभिमानवश-**''उठि नहि कीन्ह प्रणाम।''** तो इस अपराध को शिव नहीं सह सके उन्होंने शाप दे डाला फिर भी गुरुदेव ने कृपा की। अत: गुरु समर्पण प्रथम है, प्रधान है, गुरु कृपा के बिना जीव अपने को भगवत् समर्पित कर नहीं पाता उसे भगवान अपनाते ही नहीं हैं।

७०.-स्तुति प्रकरण भागवत-रामायण आदि सभी पुराणों में बड़े विस्तार से है। भक्तों ने जब-जब स्तुति की तब-तब भगवान ने प्रकट होकर दर्शन दिया। स्तुति में निरंतर स्मरण और सामीप्य का, साक्षात् का भाव आता है। तब भक्त अपनी दीनता-हीनता, असमर्थता आदि को प्रभु के समक्ष रखता है। स्तुति में अपनी दशा, प्रभु का ऐश्वर्य, माधुर्य गुण, कृपा, भक्तपरवशता, दयालुता, क्षमा आदि का भूरि-भूरि गान होता है। उस समय भक्त तल्लीन होकर द्रवित हो जाता है, गल जाता है, सरल हो जाता है, तब उसके दोषों का दूरीकरण प्रभु कृपा से हो जाता है, फिर तो वह प्रभु का कृपा पात्र बन जाता है। बिना गले हुए लोहे के यंत्र नहीं बन सकते। बिना पिघलाये धातु के पात्र आभूषणादि भी नहीं बन सकते हैं। मिट्टी गलाये बिना मिट्टी के पात्र नहीं बनते। इसी तरह से हृदय के द्रवीभूत हुए बिना कोई प्रभु का कृपा पात्र कैसे बन सकता है?

७१.-प्रार्थना में निरंतर स्मरण रहता है। स्मरण को भक्ति का प्राण ही समझो। स्मरण बिना कीर्तन, अर्चन आदि भी फीके लगते हैं। शीघ्र एवं पूर्ण फलप्रद नहीं होते परन्तु हमारे स्मरण में, हमारी स्मृति में जब तक प्रभु के लिए अवकाश नहीं होता तब तक स्मरण नहीं होगा। यदि विरोधी ने स्थान पर अधिकार कर रक्खा है तो पहले उसे हटाने की जरुरत है। यह हटेगा तभी जब वहाँ उससे प्रबल, उससे मधुर, उत्तम के आने

की संभावना होगी। राजा आ रहा है यह सुनकर लोग उसके लिए स्थान रिक्त कर देते हैं अथवा राज पुरुष हठात् स्थान को रिक्त करवा लेते हैं।

७२.–स्मरण शब्द से तीन विरोधी शब्द और बनते है। उनको त्यागने के बाद ही स्मरण संभव है। वे तीन शब्द है–स्मर, मरण और रण। हृदय से स्मर=काम, कामनाएँ, इच्छायें दूर हों।

जहाँ राम तहँ काम नहि, जहाँ काम नहि राम।
तुलसी कबहुँ कि रहि सकैं, रबि रजनी इक ठाम॥

लौकिक=संसारी कामनाएँ साधक कठिनता से त्याग कर पाता है। प्रेमी भक्त के पास वे आती ही नहीं हैं। संसार दुर्गन्ध से ईश्वर दूर है।

मरण–भागवत के द्वादश स्कन्ध के आरंभ में श्रीशुकदेव जी ने संपूर्ण उपदेशों का सार बताया कि "मैं मरूँगा" इस पशु बुद्धि को छोड़ दो। शरणागत को भगवान निर्भय कर देते हैं। तब उसे मरण भय भी नहीं रह जाता है वह तो मृत्यु के बाद अखण्ड मिलन की आशा से मृत्यु का स्वागत करता है। रण=द्वन्द। मानापमान, शीत–उष्ण, सुख–दु:ख, झगड़ा–लड़ाई, युद्ध इन भावों से भक्त सदा परे होता है। स्मरण भक्ति के आचार्य श्रीप्रह्लाद जी ने स्मरण को सत्य करके दिखाया। सर्व में अपने इष्टदेव को देखा। अत: तलवार उन्हें काट नहीं सकी, अग्नि देव जला नहीं सके।

चौसठ प्रकार की भक्तियों में विज्ञप्ति–प्रार्थना का स्थान मुख्य है। स्तुति में बार–बार प्रणाम अपने से प्रभु संबंध का विज्ञापन। अपराध क्षमापन, शरणागति के भावों का पुन:–पुन: स्मरण होता है। इससे भक्ति दृढ़ होती है। प्रभु की कृपा का अनुभव होता है।

७३.–सर्वमान्य सिद्धाँत यह है कि कर्म फल अवश्य भोगना पड़ता है।

न हि कर्माणि छिद्यन्ति जन्म कोटि शतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥
कर्म प्रधान विश्व रचि राखा।
जो जस करै सो तस फल चाखा॥ (राम० मानस०)

ज्ञानी एवं भगवद् भक्त भी कर्म फल को भोगने से बचना नहीं चाहते हैं। प्रभु से प्रार्थना नहीं करते कि मुझे जन्म न लेना पड़े, प्रारब्ध न भोगना पड़े। बार-बार जन्म हो पर भक्ति हो, सत्संग हो। रामायण में कहा है कि-

''जनम जनम रति रामपद यह वरदान न आन।''

श्रीनाभा जी ने छप्पय ११ में **अंघ्री अम्बुज पांशु को जनम जनम हौ जाचिहौं।**

इसी की टीका में प्रियादास कहते है कि-

''पुनि जन्म को न मेरे कछु शोच अहो।
संत पद कंज रेणु शीश पर धारिये।''(७४)

यह विनती रघुवीर गोसांई.......।

× × × × ×

कुटिल करम लै जाहि मोहि जहँ जहँ अपनी बरिआई।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाड़ियों कमठ अंड की नाई॥

(विनय पत्रिका १०३)

भाव यह है कि प्रारब्धवश ऊँची-नीच योनि में जहाँ-जहाँ जाऊँ वहाँ-वहाँ आप मेरा स्मरण रक्खें क्योंकि कुछ योनियाँ ऐसी भी हैं जहाँ मैं आपका स्मरण कदापि न कर सकूँगा। कच्छप यदि अपने अंडो को भुला दे तो वे सड़ जाते हैं। सदा स्मरण से उनका पोषण होता है।

७४.-भागवत १०/१४/८ ब्रह्म स्तुति में **''भुन्जान् एवात्मकृतं विपाकम्।''** कहकर प्रारब्ध भोगता हुआ, आपकी कृपा का निरंतर अनुभव करता हुआ, हृदय, वाणी, शरीर से नमस्कार करता हुआ आपकी भक्ति-मुक्ति का हिस्सेदार होता है।

जगन्नाथी श्रीमाधवदास जी का भक्तमाल टीका कवित्त नं०१८/३१९ में वर्णन है कि अतिसार के समय प्रभु सेवा में रहे। **''ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्हम्।''** तथा-

''वही भगवन्त संत प्रीति को विचार करै।
धरै दूरि ईशता हूं पाण्डुन सो करी है॥''

सेवा में रहे ईश्वरता को दूर रखकर। तब माधवदास जी ने कहा कि–**''मेरो व्यथा गात।''** आप मेरे प्रारब्ध भोग को मिटा दीजिए, सेवा करने का कष्ट न कीजिए। तब भगवान ने कहा–

''रहे भोग शेष और तन में प्रवेश करै।
ताते नहीं दूर करौं ईशता लै टारी है॥''

यदि कर्म फल शेष रह गया तो दूसरे शरीर में भोगने के लिए फिर शरीर धारण करना पड़ेगा। अतः ईश्वरता को दूर रखकर सेवा करता हूँ, मैं नहीं चाहता हूँ कि आपको पुनः जन्म लेना पड़े। माधवदासजी ने कहा–आप **''कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं समर्थ''** है यदि चाहें तो प्रारब्ध भी मिटा सकते हैं। भगवान ने कहा–यह भी सत्य है मैं चाहूँ तो जीव के प्रारब्ध, संचित, क्रियमाण सब कर्मों को नष्ट कर सकता हूँ परन्तु फिर भी सेवा इसलिए कर रहा हूँ कि **''साधु को न हँसै कोऊ।''** कोई यह न कहे कि इन्हें एक लोटा जल देने वाला कोई नहीं है। इसके बाद भगवदिच्छा से–**''देखत ही देखत में पीड़ा सो बिलाय गई।''** अर्थात् भगवान ने सब प्रारब्ध भोगों का नाश कर दिया। श्रीमाधवदास निरोग एवं पुष्ट हो गये।

७५.–शरीर में जितना पुष्ट अहंकार होता है, उतना ही दुःखों का अनुभव होता है। जैसे जैसे अहंकार कम होता है, वैसे वैसे दुःखों का अनुभव भी कम होता है। शरीर के अहंकार के बिल्कुल न रहने पर शारीरिक कष्टों का अनुभव भी बिल्कुल नहीं रहता है। ऐसी परिस्थितियों में दुःख-सुख समान है, प्रारब्ध भोग रहते हुए भी नहीं के समान है।

७६.–ज्ञानयोग या भक्तियोग के सिद्ध होने पर तीनों कर्मों के भोग स्वतः नष्ट हो जाते हैं। इस संबंध में श्रीभगवतरसिक जी की कुंडलिया स्मरणीय है–

रुचि लै सुचि सेवा करै, सेवक कहिये सोय।
तन मन धन अर्पण करै, रहै अपनपौ खोय॥
रहै अपनपौ खोय, द्रवै तब हरि गुरु देवा।
अनमांग्यो सब मिलै, गूढ़ गुण जानै भेवा॥
संचित क्रिय प्रारब्ध, कर्म दुःख सबै जायँ मुचि।
भगवतरसिक कहाय क्रिया, त्यागै अपनी रुचि॥

स्वामी की रुचि के अनुसार निष्काम भाव से सेवा करने पर, सेवा में तन-मन-धन को सर्वथा अर्पण कर देने पर अहंकार अपनापन छोड़ देने पर प्राप्य की प्राप्ति हो जाती हैं, गूढ़ रहस्य भगवद् गुणों का बोध हो जाता है, गुरु गोविन्द प्रसन्न हो जाते हैं। ऐसे भगवतरसिक भक्त के संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध सभी प्रकार के कर्म भोग समाप्त हो जाते हैं। हम सरीखे साधारण, सामान्य जीवों के लिए तो यही निश्चय है कि-

''अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतकर्म शुभाशुभम्।''

यदि ईश्वर में प्रारब्ध मिटाने की शक्ति न मानी जाय तो उसकी सर्वशक्तिमत्ता में बट्टा लग जायगा। सारांश यह कि जीव अपनी शक्ति से प्रारब्ध भोग को क्षय नहीं कर पाता है, ईश्वर की कृपा से, ज्ञान-भक्ति से प्रारब्ध नष्ट हो जाता है।

७७.-यत्र तत्र सर्वत्र जन्माष्टमी (जन्मोत्सव) की धूम धाम है। भक्ति रसामृत सिंधु में भविष्योत्तर का एक श्लोक इस संबंध में उदधृत है। (जन्म दिन यात्रा ५९)

यस्मिन दिने प्रसूतेयं देवकी त्वां जनार्दन।
तद् दिनं ब्रूहि वैकुण्ठ कूर्मस्ते तत्र चोत्सवम्॥
तेन सम्यकं प्रपन्नानां प्रसादं कुरु केशव॥

अर्थ-हे जनार्दन! जिस दिन श्रीदेवकी ने आपको जन्म दिया था। वह दिन हमें बतलाइये उस दिन हम उत्सव मनायेंगे। हे वैकुण्ठ! हे केशव! हम आपकी शरण हैं। उत्सव से प्रसन्न होकर आप हम पर कृपा करें। (वैकुण्ठ लोक में भी जन्माष्टमी उत्सव मनाया जाता है।)

७८.-रोगी जिस रोग से तप्त हो रहा है या पीड़ित है वह उसका परम तप है जो रोगी इस रहस्य को समझ जाता है वह परलोक को जीत लेता है।

(बृहदारण्य अध्याय ५ श्लोक ११)

७९.-पत्थर का टुकड़ा एक व्यक्ति के लिए पत्थर ही है, दूसरे निष्ठावान को उसमें भगवान दिखलाई देते हैं। रोग, पीड़ा को एक रो-रो कर भोगता है, दूसरा ज्ञानी, भक्त रोग और रोग से मुक्ति इन दोनों में समभाव रखता है। **''समत्वं योग उच्यते।''**

यह गीता का समत्व योग है। कुन्ती ने तो विपत्तियों का वरदान ही माँगा। इस संबंध में कल्याण में अनुस्मृति के दो श्लोक भी लिखे हैं। जिनका तात्पर्य यह है कि पूर्व जन्म में अपने कर्मों द्वारा मैंने जिन व्याधियों का अर्जन किया था वे सब मेरे अन्दर प्रवेश करें और सभी दु:ख मेरे को मिलें। जिससे मैं उस ऋण से मुक्त हो जाऊँ। पूर्व जन्म में व्याधियां अपनी ऋण वसूली न कर सकी हों वे आवें जिससे मैं ऋण मुक्त होकर विष्णु पद को प्राप्त करूँ। यह साधारण लोगों की स्थिति नहीं हैं, ज्ञानी के शरीर त्याग की भूमिका है। वह आत्मा को अमर मानता हैं, पुराने शरीर को वस्त्र की तरह त्यागकर भगवान को प्राप्त करना चाहता है। इस प्रकार ज्ञानी, शरीर त्याग की चिन्ता से मुक्त रहता है और रोगों की पीड़ा को प्रसन्नता से सहन करता है। इसमें साधक के मनोबल को ऊँचा किया गया है। अग्नि संस्कार भी तप ही है इस रहस्य का जिसे बोध हो वह विष्णु पद का अधिकारी है।

८०.–श्रेष्ठ साधक विपत्ति को मान्यता देता है उसे अपनी साधना का अंग मानता है। सर्वज्ञ पिता-माता भगवान अपने भक्त बालक के लिए समझते हैं कि इस समय संपत्ति देना उचित है या विपत्ति। अबोध बालक जीव इस बात को नहीं समझ सकता है। उसका तो यही कर्त्तव्य है कि शरणागत होकर प्रभु की गोद में रहे और संपत्ति और विपत्ति को समान मानकर प्रभुकृपा का ही अनुभव करें। **''नरक स्वर्ग अपवर्ग आस नहि त्रास है।''** (श्रीभगवतरसिक जी)

८१.–मन के द्वारा ही दुष्ट कर्म होते हैं और उसी मन से उनकी शांति भी होती है। मन में तामस प्रधान रहने पर दुष्ट कर्म शरीर से बनते हैं उनसे बन्धन होता है। वही मन जब सात्विकता में आ जाता है तो उससे सात्विक कर्म बनते हैं वे मोक्ष दाता अर्थात् बन्धन से छुड़ाने वाले होते हैं। कुसंग से, मन-बुद्धि में तामस और सत्संग से मन-बुद्धि में सात्विकता आती है अत: कुसंग त्याज्य है और सत्संग ग्राह्य है। सत्संग में सबसे पहले प्रार्थना करनी चाहिए। प्रार्थना का तात्पर्य है प्र=प्रकृष्ट अर्थात् श्रेष्ठ, अर्थना=अर्चना। प्रार्थना श्रेष्ठ पूजन है। अपनी जानकारी में जो सबसे श्रेष्ठ और श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ जो वस्तु है उसे पाने के लिए जो तीव्र अभिलाषा को, उसके न मिलने पर जो व्याकुलता उसको प्रकट करने का, इष्ट सिद्धि का जो प्रयास है उसे ही प्रार्थना कहते हैं।

जिसे सबसे अधिक प्रिय मानते हो, जिसे सर्वोत्तम सत्य मानते हो, जिसमें सर्वोत्तम आनंद मानते हो, उसे अपने जीवन में, हृदय में, अपने समक्ष प्रकट करने की इच्छा को पूर्ण करने के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

८२.–प्रार्थना में चार बातें होती है, होनी चाहिए–

१. यह भाव मन में रहे कि हम अपनी बुद्धि से अपने साधनों से आपको, आपके प्रेम को प्राप्त नहीं कर सकते ऐसा दैन्य अपने में चाहिए।

२. हम जिससे प्रार्थना कर रहे हैं, वह हमारा इष्टदेव दयालु, कोमल हृदय, सर्वज्ञ है, उदार है। अपने दास की सात्विक इच्छा को पूर्ण करने वाला है, हमारा हितकारी है, उससे ज्येष्ठ श्रेष्ठ कोई नहीं है। उसकी भक्ति आवागमन से, माया चक्र से छुड़ाने वाली है। उसमें पूर्ण विश्वास हमारा हो।

३. तीसरी बात यह है कि प्रार्थना करते समय मन से एकाग्र होकर तन्मय हो जाना चाहिए।

४. तन्मय हो जाने पर वासना आदि विकार नहीं रह जाते हैं। जैसे प्रभु रक्खें उसी प्रकार रहूँगा यह भाव चाहिए।

८३.–प्रार्थना से वेद, रामायण, महाभारत, भागवत आदि पुराण भरे पड़े है। सभी भाषाओं के सभी सन्तों ने प्रार्थनाएँ की हैं। उनकी वाणी द्वारा प्रार्थना करनी चाहिए। सूर, तुलसी, मीरा, हरिदास आदि के पदों के द्वारा प्रार्थना कर्त्तव्य है। अपनी भाषा में, अपनी कविता द्वारा भी प्रभु को प्रसन्न करना चाहिए। प्रार्थना में प्रभु के स्वरूप का, अपने स्वरूप का वर्णन होना चाहिए।

८४.–पूजा के जितने उपचार जल, चंदन, तुलसी, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि हैं उनको अर्पण करते समय प्रार्थना रहनी चाहिए। मंत्रों का प्रयोग करके प्रार्थना करते हुए सभी उपचार अर्पण करना चाहिए। हृदय का भाव अर्पण करने पर हृदय के भाव को देखकर प्रभु शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं। उपचार के साथ प्रार्थना होनी चाहिए। केवल प्रार्थना की जाय कोई उपचार न हो तो प्रभु प्रसन्न होकर अपने तक को दे देते हैं।

८५.–"**संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति।**" व्यक्ति में कुसंग से दोष और सत्संग से गुण आ जाते हैं। परन्तु जिसका मन लगातार प्रभु में लगा रहता है उनके ऊपर कुसंग का यद्यपि असर नहीं पड़ता फिर भी उन्हें कुसंग से बचना चाहिए।

८६.–मन तथा शरीर की शुद्धि के लिए उपवास आवश्यक है। उपवास में तामसी-राजसी आहार और व्यवहार को त्यागकर सात्विक भगवद् भजन, ध्यान आदि कर्तव्य है। इससे पापों-तापों का नाश होता है। उपवास तीन प्रकार के लाभ पहुँचाता है शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक। कब्ज, बवासीर, मोटापा, अजीर्ण, संग्रहणी, ज्वर आदि सब रोग उपवासों से नष्ट होते हैं। शारीरिक भार घटता है भूख बढ़ती है। मानसिक दुर्बलता, चिन्ता दूर होती है नवीनता स्फूर्ति और आत्मोन्नति होती है। धर्म शास्त्र में नियमपूर्वक व्रत करने से ज्ञान-वैराग्य-भक्ति की प्राप्ति तथा कामनानुसार ऊपर के दिव्य लोकों की प्राप्ति होती है ऐसा लिखा है। प्रत्येक देवी, देवों के व्रत हैं उनसे वे देव अति प्रसन्न होते हैं।

८७.–सुख-शान्ति, भगवत् प्राप्ति के मार्ग पर चलने का विचार हो तो प्रथम यम-नियम का पालन करना चाहिए। यम-नियम को त्यागकर कोई साधन नहीं बनता है।

यम-१. अहिसा २. सत्य ३. अस्तेय ४. ब्रह्मचर्य ५. परिग्रह त्याग।

नियम- १. शौच (पवित्रता) २. संतोष ३. तप ४. स्वाध्याय ५. ईश्वर भक्ति।

ये यम-नियम हैं इन्हें ही सत्संग में समझने का प्रयास किया जाता है।

८८.–आसुरी सम्पत्ति काम, क्रोध, वैर, हिंसा आदि क्षणिक हैं, अशान्तिकारक हैं, अस्थायी हैं। इधर दैवी सम्पत्ति निष्कामता, अक्रोध, मैत्री, अहिंसा आदि शाश्वत हैं इनका लाभ शांतिकारक है। अर्थात् प्राणी काम, क्रोध, वैर के आवेश में थोड़ी देर रह सकता है और अकाम, अक्रोध, निर्वैर जीवन भर रह सकता है।

८९.–भगवान के चरित्रों को पढ़कर या सुनकर विश्व में भगवान की व्यापकता का ज्ञान होता है। "**निज प्रभुमय देखहिं जगत**" यह स्थिति प्राप्त हो जाती है। भगवत् चरित्र ऐसा चश्मा है जिससे भगवान को देखा जा सकता है। परन्तु अपने को देखने के लिए भक्त चरित्र श्रवण-पठन ही दर्पण है। भक्त चरित्र को पढ़कर हम अपने को

देख सकते है कि हम कैसे हैं, हमारा प्रेम कैसा है, निष्ठा कैसी है। भक्त कैसे होते हैं। भक्तों के चरित्रों से अपने चरित्रों की तुलना करके भी हम देख सकते हैं।

भक्त चरित्रों से भगवत् सेवा तथा संतों की सेवा की शिक्षा मिलती है। अतः भक्त चरित्रों का और भगवत् चरित्रों का अध्ययन, मनन करना चाहिए।

९०.–हृदय की पुकार, आर्त पुकार सुनने के लिए प्रभु के अनन्त कान है।

९१.–कलियुग के दोषों का वर्णन करते हुए जो लोग अपने में दोष धारण करते हैं वे कलि के कोप से बच नहीं सकते हैं। जो लोग कलियुग के गुणों का बखान करते हुए राम नाम का आश्रय तथा मन से पुण्य कर्मों का अनुष्ठान करते हैं उन्हें कलियुग के दोष नहीं व्यापते हैं।

९२.–मन में संसार की कामना ही प्रबल है। इसके कम होने पर या नष्ट होने पर ईश्वर के भजन में मन लगता है।

९३.–स्व कर्त्तव्य परायण मनुष्य का जीवन सफल है। विश्वासपूर्वक जिस कार्य को किया जाता है उसमें सफलता अवश्य मिलती है। संशयात्मा असफल हो जाता है। अतः दृढ़ निश्चय करके भजन-साधन करना चाहिए।

९४.–जब हम सनातन वैष्णव धर्म के रास्ते पर चलते हैं, चलेंगे तो हमारा मंगल ही मंगल है। मंगलमय सब समय है। मंगल मूर्ति श्रीसीताराम जी हैं। उनकी शरण में रहने वाले जीव निर्भय हो जाते हैं।

९५.–भगवान ने यह जन्म इसलिए दिया है कि भजन करके मेरे पास आ जाओ पर हम ईश्वर की ओर न चलकर माया की एवं संसार की ओर चलते हैं इसलिए संसार चक्र में पड़े हैं। मरना जीना नहीं मिटता है। भगवान के भक्त संसार में जन्म लेकर सत्संग करके आवागमन से बच जाते हैं। भगवान श्रीसीताराम जी सद्बुद्धि प्रदान करें जिससे हम किसी के साथ छल, कपट, द्वेष न करें। प्राणियों के साथ उपकार करने वाले सज्जन, भगवान के भक्त संसार में निर्भय रहते हैं।

९६.–सत्य श्रम करने से स्वार्थ परमार्थ दोनों सिद्ध होते हैं। लौकिक कार्यों में श्रम मिथ्या है परन्तु परोपकार में किया गया श्रम सत्य है। सत्य ईश्वर का नाम है। ईश्वर संबंधी भाषण सत्य भाषण है। दूसरों की निंदा से वाणी अशुद्ध हो जाती है। सुनने

से कान अशुद्ध हो जाते हैं। परनिंदा महापाप है उससे परमात्मा हमको बचावे ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए। प्रभु सबको सद्‌बुद्धि प्रदान करें।

९७.—झूठ, कपट, चोरी आदि को छोड़े बिना यदि कोई अपना कल्याण चाहता है तो वह आकाश के तारों को छूना चाहता है।

९८.—सत्य, ब्रह्मचर्य, दया, क्षमा को जो दृढ़ता से धारण करते हैं उनके पास सब प्रकार के सुख स्वत: आते हैं।

जिमि सुख संपति बिनहि बोलाएँ। धरमशील पहिं जाहि सुभाएँ॥ (मानस-बाल० २९३/३)

धर्मशील धार्मिक स्वभाव अपनाना चाहिए। परोपकार की भावना का त्याग न करें।

९९.—सबसे बड़ा गुरु अपना मन है। मन के द्वारा जिस काम को पवित्र मानों उसे करो। बड़ों की सम्मति लेना आवश्यक है। यदि कर्त्तव्य में संदेह हो तो बड़े लोग जिनकी धर्म बुद्धि है उनकी सलाह मानो। सबसे बड़ा अपना शिष्य अपना शरीर है, उसको आज्ञा देकर उससे शुभ काम, पवित्र आचरण कराओ तो कल्याण होगा। मन की इच्छा पवित्र बनी रहेगी।

१००.—अपनी ओर से किसी का अहित नहीं करना है। हमारा अहित कोई करता है तो भले ही करे। मान लो किसी ने हमको मारा हम घायल हो गये। मारने वाले का अपराध दीख रहा है पर हमारा भी कोई पाप था अत: हमको चोट लगी। अत: हम मारने वाले को दोष देना ठीक नहीं मानते हैं। अपने पाप के फल का दण्ड हमको मिला। इसलिए हम बदला लेना नहीं चाहते हैं। हम उसे अपना शत्रु नहीं मानते हैं उसे दंड देना नहीं चाहिए।

क्षमाशील जे पर उपकारी। ते द्विज मोहि प्रिय जथा खरारी॥

१०१.—उपकारी के प्रति तो सभी लोग सज्जनता का व्यवहार करते हैं। इस सज्जनता की कोई महिमा नहीं है। अपकार करने वाले के प्रति जो उपकार करे वही सच्चा सज्जन है, संत है, साधु है वही ईश्वर का अति प्रिय है। वह लोक में रहता हुआ अलौकिक दिव्य पुरुष है। उसे बारम्बार दण्डवत प्रणाम है। उसकी चरण रज सिर पर धारण करने योग्य है। ऐसे संत का दर्शन दुर्लभ है। भगवान की कृपा से ऐसे सन्त

के दर्शन होते है। **''बिनु हरिकृपा मिलहि नहि संता।''** (मानस-सुं० ६/४) ऐसे संतों के लिए ही कहा गया है।

१०२.–यदि यह अनुभव हो कि अमुक व्यक्ति हमसे द्वेष करता है तो समझो कि मेरे मन में ही द्वेष है। अपने दोषों के कारण ही हमको दूसरों में द्वेष आदि दोष दिखाई पड़ते हैं जिसमें कोई द्वेष नहीं है उसे कहीं दोष नहीं दिखाई पड़ेगा। गुणों के कारण समता का भाव नहीं आ पाता है। त्रिगुण में सारा संसार बँधा है।

१०३.–संसार की अशान्ति जो सामने आती है उसे प्रभु इसलिए भेजते हैं कि संसार से आसक्ति कम होवे, वैराग्य का उदय हो, अन्यथा नरक से बड़े दु:ख भोगते हुए भी संसार से वैराग्य नहीं होता है। संसार में रहकर संसार को उसकी असारता, दु:खरूपता को नहीं जान सकते हैं। संसार से मन को अलग करो तब संसार कैसा है यह मालूम पड़ेगा। भगवान से अलग रहकर भगवान के तत्व को उनके महत्व को नहीं जाना जा सकता। भगवान में मन-बुद्धि लगाने से भगवान का अनुभव होगा।

१०४.–ब्राह्मण के तप, त्याग और क्षमा से प्रजा का सर्वदा मंगल होता आया है और होता रहेगा। ब्राह्मण भगवान के स्वरूप हैं उनका अपमान, अपराध हमसे न बने ऐसी प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिए। तमः प्रधान युग है। सात्विक पुरुषों को हानि और अपमान सहकर भी शान्त ही रहना चाहिए। इसी में उसकी शोभा है।

१०५.–**मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहैं रघुराई।।**

मन, वाणी और कर्म से कपट का त्याग करके जो भजन करते हैं उन पर अवश्य ही श्रीराम जी की कृपा होती है। लौकिक कामनाएँ जिनका प्रभु भजन से कोई संबंध नहीं है केवल संसारी भोगों से ही संबंध है ऐसी कामनाओं से भजन करना कपटपूर्ण भजन है। निष्काम भाव, जिनसे भजन में सहायता मिलती है जिनसे परोपकार होता है ऐसी कामनाएँ रखकर भजन करना, चतुराई को छोड़कर भजन करना है। खाने, पीने, रहने की सुविधा, लौकिक प्रतिष्ठा की प्राप्ति ईश्वर की कृपा का उत्तम फल नहीं है। बुद्धि की पवित्रता, नाम-रूप-लीला-धाम का आश्रय, सत्संग में, भक्त-भगवान में प्रेम की प्राप्ति भगवान की कृपा का फल है। शरीर, परिवार, संपत्ति जो कुछ प्रभु ने दिया है उसमें

संतुष्ट रहना, नौकरी, खेती, व्यापार आदि को ईश्वर की प्रसन्नता के लिए करना भगवान का भजन है।

१०६.—सत्य, दया, क्षमा, अहिंसा आदि गुणों पर प्रभु शीघ्र प्रसन्न होकर कृपा करते हैं। जितने गुण ईश्वर में हैं उनके अंश जीव में भी प्रभु ने दिए हैं। सत्य, दया, क्षमा आदि ईश्वर में अखण्ड अनन्त हैं, पर जीव में भी ये नाम मात्र रहते हैं। प्रभु का स्मरण करने वालों में ये गुण विशेष बढ़ जाते हैं। दया, क्षमा आदि भक्तों में विशेष रूप से रहते हैं। इन गुणों को धारण करने वाला ही सच्चा भक्त है। जीवों को कष्ट देने वाला ईश्वर का भक्त नहीं हो सकता है। भगवान का चिंतन, स्मरण करने वालों में भगवान के गुण विशेष रूप से आ जाते हैं। जो जिसका विशेष चिंतन करेगा तो उसके गुण अवश्य आवेंगे। अत: देवता बनकर पवित्र होकर ही देवता का पूजन सफल होता है।

१०७.—जीवन की श्वास गिनती की हमको मिली हैं पूरी होते ही शरीर निष्प्राण हो जायगा, अत: समय को व्यर्थ न बिताया जाय। यह श्री अग्रदेवाचार्य का मुख्य उपदेश है।

१०८.—गृहस्थ के घर में घुसकर विरक्त नव युवक को अनुष्ठान नहीं करना चाहिए। भरोसा हनुमानजी का ही रखना चाहिए। अनुष्ठानी का जहाँ आदर ज्यादा हो वहाँ रहना नहीं चाहिए। संतजन स्वतंत्र होते हैं, समर्थ होते हैं जो कुछ करें वह ठीक है।

१०९.—व्यक्ति दो प्रकार के होते हैं:—एक भाव प्रधान, दूसरे मस्तिष्क प्रधान। भावुक भक्त के मन में प्रभु से संबंध दृढ़ रहता है। मैं श्रीकृष्ण का हूँ और श्रीकृष्ण मेरे हैं। संसार चाहे सत्य हो या असत्य हो उस पर तथा अन्य विषयों पर तर्क-कुतर्क के लिए उसके पास समय नहीं रहता है। मस्तिष्क प्रधान-जीव, माया, ईश्वर, जगत के संबंध में जिज्ञासा करता है तर्क-वितर्क भी करता है। विषय के गहन होने के कारण शीघ्र समाधान नहीं होता है। भगवत् प्रेमी बहुज्ञ या सर्वज्ञ नहीं बनना चाहता है। कहता है कि-और कोई समझो सो समझो हमको इतनी समझ भली है, ठाकुर नंदकिशोर हमारे ठकुराइन वृषभानु लली है।

११०.–संसार के शरीर के कार्यों को सर्वथा छोड़ा नहीं जा सकता है। चतुर साधक भजन–साधन करते हुए शारीरिक आवश्यक कार्यों को करता है तो वे भी साधना के अंग बन जाते हैं। सामान्य लोग संसारी कार्यों को मुख्यतया करते हैं उसके साथ भजन करते हैं। भजन साधन गौण हो जाता है। दो तत्व मिलकर एक तत्व होते हैं जब उनमें गुण, रूप, कर्म की भिन्नता न हो। भिन्नता होने पर मिलकर भी अलगाव हो जाता है। बालुका और जल की भांति। जल–शर्करा मिलकर एकाकार मीठा शर्बत बनता है, क्योंकि दोनों का मधुर गुण व रसमय स्वरूप है। इसी प्रकार भक्त–भगवान, प्रेमी–प्रेमास्पद मिलकर एक होते हैं कदाचित् कोई अन्तर हुआ तो शक्कर के कूड़े की तरह जीव का विकार अलग हो जाता है। प्रेमी सर्वस्व अर्पण करके कुछ भी अपने लिए नहीं बचाता है। हम संसार के संसार हमारा यदि बना रहा तो ज्ञान प्रेम कुछ भी नहीं होगा।

१११.–**जयति जय राधाकिशोरी।** गोप कन्याओं ने कात्यायनी पूजन किया, प्रार्थना की कि श्रीकृष्ण को हमारा पति बना दो। भक्ता कात्यायनी का परिकर में प्रवेश है। राधाकृष्ण की अन्तरंगा और अनन्या हैं। उनसे प्रार्थना करके सेवा में मुझे स्थान दिला दें। बिना किसी माध्यम के परिकर में प्रवेश हो ही नहीं सकता। प्रभु अपना नहीं सकते। पर इससे अधिक जिम्मेदारी कात्यायनी की यह है कि मुझे इस योग्य बना दें कि मैं श्रीकृष्ण को स्वामी बना सकूँ। श्रीकृष्ण तो भुजाएँ पसारे खड़े हैं जीव को अपनाने और गले से लगाने के लिए। पर जीव ही उनकी उपेक्षा कर रहा है। श्रीकृष्ण की ओर न देखकर जगत की ओर देख रहा है अतः कात्यायनी ऐसी कृपा करें कि मेरा तन–मन–पवित्र कर दें, मेरे दोषों को दूर कर दें। मुझे श्रीकृष्ण के सन्मुख कर दें। निर्दोष हुए बिना श्रीकृष्ण के सन्मुख नहीं होगा। श्रीकृष्ण के सन्मुख हुए बिना कोई जीव सर्वथा निर्दोष नहीं होगा। सन्मुख होना चाहिए। शरण में जाना चाहिए। इतने निश्चय के होते ही दोष मन–बुद्धि से निकलकर भागने लगते हैं। सर्वथा सन्मुख होने पर, प्रभु के अपनाने पर सूक्ष्म पाप संस्कार निर्मूल होते हैं अन्यथा कुसंग पाकर अंकुरित होते हैं। शरणागत जीव कुसंग में पड़े तो भी कामादि अंकुरित नहीं होते। सात्विक भक्त के काम क्रोध भी सात्विक होकर जगत का कल्याण करते हैं। जैसे ऋषियों का क्रोध भी जीव के लिए कल्याणकारी होता है।

११२.—शास्त्र में क्षमा की बहुत महिमा कही है। विश्वामित्र ने वशिष्ठ के सौ पुत्रों का विनाश कर दिया पर सामर्थ्य रहते हुए वशिष्ठ ने बदला नहीं लिया। प्रतिशोध के लिए तत्पर पराशर को भी क्षमा का उपदेश वशिष्ठ ने दिया। शान्ति खड्ग जिसके हाथ में है दुर्जन उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ कर सकते हैं।

११३.—स्वयं अपनी कृपा से प्राप्त होने वाले प्रभु को प्राप्त करने की इच्छा वाले श्रद्धा, भक्ति, सत्संग, भजन, पूजन, पाठ, त्याग आदि को यथाशक्ति यथासंभव करते हैं। मन, बुद्धि और शरीर के श्रम का सात्विक होना आवश्यक है। प्रभु की कृपा है ऐसा अनुभव करना चाहिए जब सत्संग सदाचार से शान्ति मिलती हो। संसार की परिस्थितियाँ एक सी नहीं रहती हैं। जो ईश्वर सर्वथा काल से परे है वह भी अवतार काल में सुख-दु:खों को इसलिए स्वीकार करता है कि मेरे भक्त सुख-दु:खों से व्यथित न हों। व्याध के बाण को सहनकर, अपने कुटुम्ब का संहार शाप द्वारा कराकर प्रभु ने सबको सहनशील बनने की प्रेरणा दी।

११४.—श्रीधनवन्तरि भगवान के अवतार थे। उन प्रभु का ऐसा प्रताप था कि उनके समक्ष रोगी आकर निरोग हो जाता था। उनके सामने किसी की मृत्यु भी नहीं होती थी। ऐसे समर्थ प्रभु ने अपनी लीला संवरण की और काल जो अपना ही स्वरूप है उसकी गति दिखाई, उसे स्वीकार किया। उनकी पीठ में पीछे से आकर सर्प ने डस लिया और श्रीधन्वन्तरि जी ने शरीर त्याग कर स्वधाम गमन किया। इसलिए अपने या दूसरे के शरीर के त्याग के समय विक्षिप्त न होकर धैर्य ही धारण करना चाहिए। संत सद्गुरुओं के शरीर त्याग पर कष्ट इसलिए होता है कि उनके सत्संग से हम वंचित हो जाते हैं। तब उनके नित्य स्वरूप को ध्यान में लाकर उन्हें अपने समीप मानना चाहिए। श्रीहरि: शरणम्।

११५.—मेरे मन की सभी दशाएँ, दोष भगवान की जानकारी में हैं। भगवान हृदय के सद्भाव को ही ग्रहण करते हैं। मन को भजन-साधन में लगाने का प्रयत्न करना चाहिए। कदाचित् मन इधर-उधर चला जाय तो खेद और व्याकुलता के साथ उसे पुन: अपने इष्ट की ओर लगाना चाहिए। नारदजी ने लिखा है कि **'तद् विस्मरणे परम व्याकुलता'** भगवान की विस्मृति होने पर व्याकुलता होना चाहिए। भगवद् भजन के

अतिरिक्त संसार के विषयों में मन को लगाना, वहाँ के रस का आस्वादन करने से मन विषयी हो जाता है। विषयी सकाम मन प्रभु के विराजने के योग्य स्थल नहीं रहता।

११६.–सुख-शान्ति मन के निरोग होने पर होते है। सांसारिक वासनाएँ मन के रोगों का कारण हैं। वासना से राग, द्वेष, क्रोध आदि विकार उत्पन्न होते हैं। वासना का त्याग सद्विचार से होता है। सद्विचार की उत्पत्ति भगवद् भजन, सत्संग, सद्ग्रंथों का मनन करने से होती है। समष्टि अर्थात् व्यापक भाव, विश्व कल्याण से आत्म कल्याण होता है। संत वाणी, प्रभु स्मरण सत्संग है। वास्तव में जीव तो शुद्ध सच्चिदानंद स्वरूप है। वहाँ काल की भी पहुँच नहीं है। शरीर तो उसका ड्रेस मात्र है। नाटक का पात्र जैसा ड्रेस धारण करे वैसा राजा-रंक बन जाता है, पर वह है नहीं। उसी प्रकार जीवात्मा जैसा शरीर धारण करता है उसी के अनुरूप पशु-पक्षी कहलाता है। अंतर इतना ही है कि नाटक का पात्र जानता है कि मैं राजा रंक नहीं हूँ। पर हम अपने स्वरूप को भूलकर ड्रेस को ही अपना मानकर अभिनय को सत्य मानते हैं। इस अज्ञान के कारण दुःख-सुख भोगते हैं। सन्त-भगवन्त में श्रद्धा-विश्वास हो, उनके बताएं मार्ग पर चलें तो हम इस संसार में सुखी हो सकते हैं।

११७.–कथा श्रवण से मन का मैल दूर होता है। मन का मैल अहंकार है जो सब अनर्थो की जड़ है। अहंकार से राग, द्वेष, क्रोध, मोह आदि दुर्गुणों की उत्पत्ति होती है। अहंकार के नाश होने पर दैन्यता आ जाती है। वही भक्ति को प्राप्त करने का मूल साधन है। अहंकार होने पर मनुष्य को लौकिक व्यवहार, व्यापार में भी कठिनाई आती है। परमार्थ का साधन अहंकारी से कदापि नहीं बन सकता है।

११८.–जब तक मनुष्य भगवान के नाम का, सत्संग का सहारा नहीं लेता है, तभी तक मोह की हथकड़ी बेड़ियाँ पड़ी हैं और संसार कारागार के समान है। प्रभु की भक्ति करने पर, प्रभु का दास बन जाने पर प्राणी स्वच्छंद हो जाता है। नाम कीर्तन में, सत्संग में फिर माया बाधा नहीं करती है। माया के अधीन होने पर मनुष्य इन्द्रियों के भोगों के अधीन हो जाता है। फिर वह किसी के साथ न तो उपकार कर सकता है न भजन कर सकता है।

११९.–हम भगवान के दास हैं यह भाव मन में बनाये रखना चाहिए। प्रभु ही पिता–माता हैं। सबमें रहकर भगवान हमारे चरित्र को हर समय देखा करते हैं। कोई बात प्रभु से छिपी नहीं रहती है। मेरे मन में किसी के प्रति दुर्भाव न हो। यद्यपि मैं पूर्व जन्म के पापों के कारण अपने मन से, शरीर से पापों को करना चाहता हूँ परन्तु आप मेरे रक्षक हैं। मुझे पापों से बचावें तो फिर मैं पापों से बच सकता हूँ। अपनी शक्ति से मैं पापों से नहीं बच सकता हूँ। इसी तरह की प्रार्थना करने पर परमात्मा श्रीकृष्ण पापों से बचावेंगे। अपनी सेवा में लगावेंगे। श्रीकृष्णः शरणं मम, राधे राधे राधे।

१२०.–कलियुग का, माया का भी अनुभव होता है। वह अनुभव यदि सही हो तो उससे छुटकारा मिले, गलत होता है अतः बन्धन है। सही अनुभव तो बालमुकुन्द का दर्शन कराता है। प्रभु उसे आत्मसात् कर लेते हैं। अस्तु जो है सो ठीक है। अकारण करुणा करने वाले प्रभु की कृपा का भरोसा है। 'अन्यथा शरणं नास्ति।'

१२१.–महाप्रभु श्रीकृष्ण हमको उसी प्रकार आकर्षित करें जैसे अंशी अपने अंश को अपनी ओर आकृष्ट करता है। जैसे स्वामी सेवक को अनुशासन में रखता है उसी प्रकार मुझे भी अपने अनुशासन में रखें। सर्वत्र रमने वाले राम मुझ में रमें और हमको अपने में रमण करावें। यह सत्य है कि मायावश हम जीव मनमाना अधर्म करते हैं, पर आप मायापति तो सावधान हैं। यदि जीव को या माया को रोकें तो हम कुमार्ग में क्यों जायँ? हमारे वश की होती तो हम कष्टों से ऊब कर कभी के आपकी शरण में पहुँचकर निर्भय हो गये होते। दूसरों को हम शिक्षा तो देते हैं पर उसे स्वयं नहीं मानते हैं। यह कठिनाई प्रभो आपके दूर करने पर होगी। प्रवचन में सत्य, सदाचार, उपकार का जब वर्णन करने लगते हैं तो वाह वाह कहकर लोग बड़ाई करते हैं और मुझ प्रवचनकर्ता को भी लोग सत्यवादी सदाचारी मान लेते हैं। उपकारी भक्त मान लेते हैं। परन्तु अपने भीतर झांककर देखते हैं तो सब कुछ विपरीत दिखाई पड़ता है। ऐसी स्थिति में हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और यह सत्य हो जाता है। संत–भगवन्त जैसा चाहें वैसा करें। वही ठीक रहेगा। जय जय श्रीराधे।

१२२.–सुनकर, देखकर, छूकर, सूँघकर जिनको दु:ख या सुख नहीं होता वह जितेन्द्रिय है। अपनी प्रशंसा से सुख और निन्दा से दु:खी नहीं होना, सन्त–भगवन्त की

प्रशंसा से सुख और निंदा से दु:ख होना आवश्यक है, उत्तम है। आँख से देखकर रूप पर मोहित नहीं होना, भगवान के रूप में आसक्त होना उत्तम है। खट्टे मीठे पकवान्न खाकर प्रसन्न होना ठीक नहीं है प्रभु प्रसाद को खाकर प्रसन्न होना उत्तम है। इत्र आदि को सूँघकर प्रसन्न नहीं होना प्रभु प्रसाद तुलसी को सूँघना उत्तम है। स्पर्श रेशमी वस्त्रों का, कोमल त्वचा का त्याग योग्य है, श्रीठाकुर जी के श्रीअंग का स्पर्श, गाय का, संत के चरण स्पर्श से प्रसन्न होना चाहिए। भगवत् संबंध से सब कुछ ग्रहण के योग्य है उससे भिन्न त्याज्य है। भक्त, भगवान से ही सब प्रकार के संबंध रखकर प्रसन्न होते हैं। संसार से संबंध दु:खप्रद है।

१२३.—सत्य, दया, क्षमा को व्यवहार में लाना चाहिए। इसी में प्रभु प्रसन्न रहते हैं।

१२४.—मनुष्य अपने कर्म के फलस्वरूप संसार में सुख और दु:ख भोगता है। सुख भोगते समय पुण्य नष्ट होते हैं। दु:ख भोगते समय पापों का नाश होता है अत: प्रसन्न रहना है। संसार ईश्वर का स्वरूप है। नाशवान है दु:ख का स्थान है। ईश्वर का स्थूल रूप है अत: उससे निष्काम प्रेम करके हम सुखी होंगे। नाशवान है, अत: सकाम प्रेम करके हम दु:खी हो जावेंगे। संसारी वस्तु से सकाम प्रेम करके जन्म दु:खदायक होगा। संसार से जितना संसारी सुख भोगा जायगा तब अन्त में वह उतना ही दु:खदायक होगा। अत: संसार से निष्काम प्रेम करके उसकी सेवा कर्त्तव्य है। संसार से सुख की आशा नहीं करनी चाहिए। जो कुछ दु:ख या सुख हमको मिलता है, यह हमारे ही कर्म का फल है अत: मन में ग्लानि नहीं मानना चाहिए। हमको सुख-दु:ख देने वाला दूसरा नहीं है। धैर्य धारण करके इसी स्थिति में राम राम श्याम श्याम जपो। दु:ख का वरदान कुन्ती ने माँगा। दु:ख को दु:ख न मानने से दु:ख दूर होगा। अपने कर्त्तव्य का पालन करना। दूसरा कर्त्तव्य का त्याग करता है, तो उसका दोष है।

१२५.—नाशवान शरीर पुण्य पापों के फल को भोगे। इसमें किसी को कुछ दोष देना नहीं है। शरीर के ऊपर कष्ट होने पर भी मन का शुद्ध होना उत्तम है। भगवान की जब कृपा रहती है तब मन भगवान में लगा रहता है, कष्ट का अनुभव नहीं होता है। संसार का चिंतन करने पर दु:ख-सुख का अनुभव होना निश्चित ही है।

१२६.–**'परोपकाराय सतां विभूतयः।'** सज्जनों का ऐश्वर्य परोपकार के लिए होता है। परोपकारी भगवान को अत्यंत प्रिय हैं। भक्तजन परोपकारी होते हैं। स्वयं ईश्वर भी परोपकारी है। भगवान ऐसी कृपा करें कि हमारी परोपकारिणी बुद्धि हो जाय। जय राधे।

१२७.–दूसरे के साथ उपकार करने वाले दो ही है, एक तो भगवान और दूसरे भगवान के भक्त। शेष संसारी लोग अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए उपकार करते हैं। संत बिना स्वार्थ के उपकारी होते हैं। दुष्ट लोग अपने स्वार्थ के बिना अपकार करते हैं। यह जानकर सदा सर्वदा प्राणियों पर दया करनी चाहिए। इससे सद्गति होगी। भगवान के धाम की प्राप्ति होगी।

१२८.–जो लोग अवगुणों का त्याग करके सबके गुणों को ग्रहण करते हैं उनके हृदय में श्रीराम निवास करते हैं। दोषों को देखना है तो अपने दोषों को देखना चाहिए। किसी में अनेक दोष होंगे तो उसमें एक न एक गुण अवश्य ही होगा। अतः गुण को देखकर उसी का वर्णन करना चाहिए। दोषों का वर्णन करने से वे दोष अपने में आ जायेंगे। अपनी वाणी दूषित हो जावेगी। गुणों को देखेंगे, उनको कहेंगे तो अपने भीतर गुण निवास करेंगे। गुण-दोषमयी विश्व की रचना है। ऐसी सृष्टि में जो प्रभु के गुण देखते हैं वे बुद्धिमान हैं। सृष्टि की विलक्षणता देखकर प्रभु की प्रशंसा करनी चाहिए, जो कुछ सामने है उसमें प्रभु की कला देखिये।

१२९– **'तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना। अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥'**

तिनके से भी तुच्छ, वृक्ष से भी अधिक सहनशील, अपने सम्मान की इच्छा न रखकर दूसरों को सन्मान देने वाला बनकर हरि नाम कीर्तन करना चाहिए। महाप्रभु के शिक्षाष्टक का यह तीसरा श्लोक है। इसका तात्पर्य यह है कि उत्तम होकर भी अपने को तृण से भी तुच्छ मानें। यद्यपि तृण तुच्छ है फिर भी वह गाय के खाने में आता है, उससे घर-झोपड़ी का निर्माण होता है। इस प्रकार वह सेवा के योग्य है। मैं किसी के साथ उपकार नहीं कर पाता हूँ अतः तृण से भी तुच्छ हूँ। इस प्रकार का भाव मन में आवे, केवल वाणी से नहीं। तो उसके द्वारा, उस दीन के द्वारा श्रीकृष्ण, कीर्तन के योग्य हैं। उसके कीर्तन पर सहज ही प्रभु द्रवित होंगे, उस पर कृपा करेंगे। **'तरोरिव सहिष्णुना'**-वृक्ष को कोई काटे तो वह काटने वाले पर क्रोध नहीं करता है। इसी तरह

अपने साथ अन्याय अत्याचार करने वाले पर सहनशील भक्त नाराज नहीं होता है, उसे शाप नहीं देता है। बदला लेने की इच्छा नहीं करता है। वृक्ष बिना पानी के प्यासा सूखने लगता है तो भी पानी नहीं माँगता है। सर्दी, गर्मी, वर्षा को सहन करके दूसरे की सर्दी गर्मी वर्षा से रक्षा करता है। उसकी सम्पत्ति पत्र, पुष्प, फलों को कोई चाहे जैसा ले ले वह आपत्ति नहीं करता है। लोग डंडा पत्थर मारते हैं वह फल देता है। एक बार किसी भूखे ने फल गिराने के लिए पत्थर चलाया वह पत्थर पालकी में बैठे रहीम के सिर में लगा। लोग उसे दण्ड देने के लिए पकड़कर लाये, पर रहीम ने कहा कि जड़ वृक्ष फल देता है। हम वृक्ष की अपेक्षा चैतन्य हैं अतः दण्ड न देकर इसके भोजन का प्रबंध करो। उसे इतना धन दिया गया कि उसकी गरीबी दूर हो गई। यवन हरिदास के शरीर पर बेतों की मार लगाते हुए उन्हें बाईस बाजारों में घुमाया गया। शरीर से रक्त बहने लगा पर उन्होंने मारने वालों पर रोष नहीं किया। उनका कल्याण चाहा।

इसी प्रकार कृष्ण भक्त अपने ऊपर अन्याय करने वाले को भी अपनी सम्पत्ति से, अपने भजन, रूप, धन से संतुष्ट करें। गदाधर भट्ट ने चोर को पोटली उठवा दी। वृक्ष फल दे देगा पर पोटली नहीं उठवायेगा। इस प्रकार वृक्ष से भी बढ़कर उपकारी भक्त हो और कृष्ण कीर्तन करे तो उसे कृष्ण प्रेम की प्राप्ति हो। तात्पर्य यह कि शत्रु के प्रति भी उपकार की भावना रहनी चाहिए।

'अमानिना मानदेन'–स्वयं किसी से सन्मान की प्राप्ति की इच्छा न करके दूसरों को सन्मान दें। धन, मान, विद्या, बुद्धि और भक्ति प्राप्त कर सर्वोत्तम होने पर भी अहंकार गर्व न करे। मैं धनी हूँ, विद्वान हूँ, यह मानकर दूसरों से सन्मान प्राप्त करने की आशा न करे। कदाचित् कोई तिरस्कार कर दे तो उसे सहन करे। क्रोध न करे। बदला लेना न चाहे। सभी जीवों में श्रीकृष्ण विराजमान हैं, सभी जीव भगवान के मंदिर हैं, इसलिए सभी जीव सन्मान के योग्य हैं। भगवान का मंदिर पुराना हो जाय, जीर्ण होकर गिर जाय तो भी वह आदरणीय है। इसी प्रकार कोई भी सामाजिक दृष्टि से नीच हो जाय और कूकर–शूकर आदि निन्दनीय योनियों को प्राप्त हो जाय तो भी वह प्रभु का निवास स्थान होने के कारण वन्दनीय है। सभी में अन्तर्यामी रूप से ईश्वर है, अतः हृदय में सद्भाव रखकर उनका सन्मान करे। भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध में ऐसे अनेक वाक्य हैं। इन भावों

को हृदय में पुष्ट करके श्रीकृष्ण का कीर्तन करने पर दिव्य प्रेम की हृदय में उत्पत्ति होती है। **'सदा-हरिः कीर्तनीयाः'** सदा सर्वदा श्रीकृष्ण कीर्तन के योग्य हैं। ऐसा भाव मायाबद्ध जीव के मन में नहीं आ सकता है, अतः ऐसे भाव की प्राप्ति के लिए भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए। एक कृष्ण नाम पापों को नाश करके नवधा भक्ति का प्रकाश करता है। उसके बाद नाम संकीर्तन से प्रेमाभक्ति प्राप्त होती है।

१३०.—भगवान के नाम-रूप की विस्मृति ही विपत्ति है। प्रभु स्मरण ही सम्पत्ति है। शास्त्रों में अनेक कर्त्तव्य (विधियाँ) हैं और अनेक निषेध है जो अकर्त्तव्य हैं। पर इन अनंत विधियों में एक विधि ही सर्वश्रेष्ठ है उसे सब विधियों का राजा कहा जाता है। नाम-रूप को याद रखना यही राजा है। नाम-रूप को, भगवान को भुला देना यही सब निषेधों का राजा है।

१३१.—जानी हुई बातों को बार-बार सुनने से, पढ़ने से भक्तजन तृप्त नहीं होते हैं। तब तक पढ़ना सुनना है जब तक वैसी भक्ति प्राप्त न हो जाय। दवा का प्रयोग तब तक होना चाहिए जब तक रोगी ठीक न हो।

१३२.—ज्ञानियों के ज्ञान की, भक्तों की भक्ति की कसौटी यह संसार है। संसार न हो तो अपना ज्ञान का उपयोग ज्ञानी कहाँ करेगा? भक्त संसार के बिना सर्वत्र अपने इष्ट को कैसे देखेगा? ज्ञानी के ज्ञान का प्रकाश संसार में ही होता है। बिना संसार के ज्ञानी किस को उपदेश देगा? संसार न हो तो भक्त अपनी भक्ति द्वारा किसका कल्याण करेगा? संसार ईश्वर की वाटिका है इसमें सब प्रकार के फल-फूल हैं। यदि दुष्ट न हों तो संसार में सज्जन की पहचान नहीं हो सकती है, उसकी महिमा प्रकट नहीं हो सकती है। अन्धकार न हो तो प्रकाश की महिमा का बोध नहीं होगा। इसलिए गुण दोषमय यह ईश्वर की सृष्टि है। गुणों को ग्रहण करना दोषों का त्याग करना साधक का कर्त्तव्य है। दया, क्षमा, सत्य, अहिंसा को धारण करके किया गया भजन सार्थक है। भक्त में भगवान के सभी गुण आ जाते हैं। भगवान में वे गुण अनन्त हैं। भक्त चिंतन करता है तो प्रभु के गुण भक्त में आ जाते हैं। आग में पड़ा लोहा अग्नि के गुण धारण कर लेता है। अलग होने पर फिर लोहा रह जाता है, इसी तरह प्रभु चिन्तन से प्रभु के गुण आ जाते हैं। अलग होने पर साधारण जीव हो जाता है।

१३३.–भगवान के नाम, रूप, लीला ये सच्चे साथी हैं। सत्संग के लिए जब कोई न मिले, कहने वाला या सुनने वाला न हो, तब सबसे बड़े संत भगवान के नाम हैं इनको साथ रक्खें। जो प्रभु के प्रेम को पाने की इच्छा रखता है उसे प्रभु कभी निराश नहीं करते हैं। भगवत् प्रेम की प्यास ही सबसे बड़ा शांति का साधन है। अपने में धनबल, जनबल, बुद्धिबल, विद्याबल, शारीरिक बल नहीं है अतः भगवान का बल रखना चाहिए, यह सबसे बड़ा बल है। इच्छा की पूर्ति न होने पर क्रोध आता है, पर उससे अपना या दूसरों का कोई लाभ नहीं होता है। विचार कर क्रोध की अग्नि को शांत करके शान्ति का लाभ प्राप्त करना ही साधक का कर्त्तव्य है।

१३४.–सब प्रकार की अनुकूलता प्राप्त हो तो मैं भक्ति करूँ, परन्तु सारी अनुकूलता किसी को इस संसार में नहीं मिलती है। भगवान जीव को अनेक प्रकार से अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। कभी सुख देकर और कभी दुःख देकर। कुछ लोग कहते हैं कि परमात्मा का कोई रूप नहीं है परन्तु वैष्णव लोग जो भी रूप सामने आता है, उसे भगवान का ही रूप मानते हैं। सन्मुखता का यही लक्षण है विमुख को कहीं भी भगवान नहीं दिखते हैं। विमुखता, दुष्टता ये क्षणिक हैं सदा नहीं रहेंगे। काम–क्रोध भी थोड़ी देर के लिए होता है। शांति, दया, क्षमा आदि नित्य हैं। ये सर्वदा रह सकते हैं। हिरण्यकशिपु की दुष्टता शापवश थी थोड़ी देर रही। प्रहलाद की भक्ति नित्य है सर्वदा रहेगी।

१३५.–वाणी से होने वाले पाप चार प्रकार के हैं– झूठ बोलना, दूसरों की निंदा करना, कड़ुवी कठोर बात बोलना, व्यर्थ की संसारी बातें करना। इन चार से बचना चाहिये।

१३६.–वाणी से पुण्य भी चार प्रकार के होते हैं।-सत्य भाषण, अपने काम की अथवा राम की बात करनी चाहिए, भगवान की, संत की स्तुति बड़ाई करना, मधुर भाषण करना, जिससे सुनने वाले के मन में प्रसन्नता हो। ऐसी बात नहीं बोलो जिसे सुनकर किसी का मन दुखित हो जाय।

१३७.—दु:ख पापों का फल है, सुख पुण्यों का फल है। दु:ख आ पड़े तो अपने किए का फल है, यह मानकर धैर्यपूर्वक उसे सहन करना चाहिए। सुख मिलने पर ईश्वर को भूलना नहीं चाहिए। ईश्वर दयालु है इस पर विश्वास रखना चाहिए। बिना जनाये ही हमारे कष्टों को ईश्वर जानता है अत: भक्त अपने कष्ट को दूर करने के लिए हठ नहीं करता है। अपने मन को वश में रखकर सच्चे सही मार्ग पर जो चलता है वही स्वतन्त्र है। इन्द्रिय भोगों के अधीन रहकर जो दुष्ट आहार-विहार करता है वही पराधीन है, बंधन में पड़ा है।

१३८.—**'संयोगो वियोग हेतु:।'** जितनी वस्तुओं का संयोग हुआ है उनका सबका एक दिन वियोग अवश्य होगा। चाहें उसे हम छोड़ दें, चाहें वह हमको छोड़ दे। संयोग ही वियोग का कारण है। यदि संयोग न हो तो वियोग भी न हो। अत: संयोग और वियोग के समय धैर्य रखना चाहिए।

१३९.—ज्ञान से और भगवान की उपासना से मन में शान्ति रहती है। सभी प्राणियों में अन्तर्यामी रूप से परमात्मा सर्वव्याप्त हैं यही सबसे श्रेष्ठ ज्ञान है। जिसको इस बात का विश्वास हो जाता है वह दूसरे प्राणियों के साथ द्वेष नहीं करता है। सद्व्यवहार करता है। सज्जन का स्वभाव यह है कि वह अपने किसी भी व्यवहार से दूसरे को पीड़ा नहीं पहुँचाता है, नही पहुँचाना चाहता है और दूसरे के दुर्व्यवहार से स्वयं पीड़ित नहीं होता है। इसलिए कि जिनसे हमको कष्ट पहुँचा है वे अपनें ही हैं। कभी अपने दाँतो से अपनी जीभ कट जाती है तो वह दाँतों को तोड़कर उनसे बदला नहीं लेता है क्योंकि वे दाँत अपने हैं। फिर कष्ट देने वाले का दोष न होकर हमको अपने किए हुए का फल मिला है कभी हमने कोई भूल की होगी आज उसका फल हमको मिला है। मुझे कोई दूसरा कष्टदाता नहीं है।

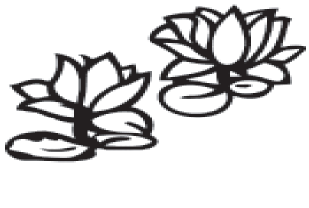
१४०.—पिता-माता, गुरुजन शिक्षा के लिए जो दण्ड देते हैं उसे सहर्ष स्वीकार करना चाहिए। उन बड़ों के प्रति मन में द्वेष नहीं लाना चाहिए। जो घर के बड़ों का दण्ड नहीं सहता है उसे बाहरी लोगों द्वारा दण्ड मिलता है। अपने पूज्यों की पूजा के बिना ईश्वर की पूजा विशेष लाभ देनी वाली नहीं होती है। स्वयं श्रीराम ने अपने से बड़ों को आदर दिया अत: जो भी कोई बड़ों का आदर करता है उस पर भगवान प्रसन्न

रहते हैं। इतिहास में जिन लोगों ने कष्ट सहन किया उन्हीं की कीर्ति का गान करके लोग पवित्र होते हैं। पाण्डवों, द्रोपदी, कुन्ती को महान कष्ट दुष्टों ने दिए पर उन्होंने कष्ट देने वालों को शाप नहीं दिया। द्रोपदी ने सभा में अपमान सहन किया। कृष्ण को पुकारा और उनकी कृष्ण ने रक्षा की परन्तु क्रोध करके कौरवों को शाप नहीं दिया। द्रोपदी सती साध्वी है पतिव्रता है वे यदि क्रोध करके शाप देती तो कौरवों को उसी समय भस्म कर सकती थी पर भक्ता होने के कारण उन्होंने ऐसा नहीं किया। क्षमा किया। परिणामस्वरूप प्रकृति परमात्मा के द्वारा उन्हें दण्ड मिला सबका नाश हुआ। पाण्डवों के समेत द्रोपदी की कीर्ति अक्षय है। ये सब प्रातः स्मरण के योग्य हैं। तात्पर्य यह कि अपने में ऐसी सहनशक्ति रहनी चाहिए कि क्रोध को उत्पन्न होने की स्थिति परिस्थिति में भी मन में क्रोध उत्पन्न न हो। क्रोध से अपने ही शरीर का रक्त जलता है। अपने मन का, बुद्धि का विकास रुक जाता है। हम जिस पर क्रोध करते हैं उसका कुछ भी नहीं बिगड़ता है। अपने शरीर के बल की हानि होती है। अतः तामस को अपने में नहीं आने देना चाहिए।

१४१.—जब मन में द्वेष पैदा हो जाता है तो वह दूसरों के गुणों को ढ़क देता है, द्वेषवश हम दूसरे के गुणों का दर्शन नहीं कर पाते हैं। इसी तरह जब हम रागवश होते हैं तो अपने मित्र के दोषों को नहीं देख पाते हैं। अपने दोषों को देखकर अहंकार को नष्ट कर मन में दैन्यता लानी चाहिए पर सर्वदा मैं अपराधी हूँ, मैं अपराधी हूँ, यह धारणा केवल प्रभु के समक्ष रखनी चाहिए। उसके बाद मैं प्रभु का दास हूँ, प्रभु का कृपापात्र हूँ, यह धारणा सर्वथा मन में लानी चाहिए। दासोऽहं दासोऽहं इस धारणा से दास्यभाव दृढ़ हो जाता है। जय श्रीहरिः।

इति शुभम्

❋



श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्री हनुमते नमः श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः

❋ भक्त-भगवन्त लीला-कथा प्रसंग ❋

१.-श्रीहनुमान जी दास्य रस के प्रधान आचार्य हैं। जब मेघनाद ने युद्ध में राम, लक्ष्मण, सुग्रीव आदि सभी को मूर्छित कर दिया, उस समय होश में आने पर जामवन्त जी ने पूछा कि हनुमान जी जीवित और स्वस्थ हैं कि नहीं? प्रश्न हुआ कि आप राम, लक्ष्मण, सुग्रीव की कुशल न पूछकर हनुमान जी को ही क्यों पूछ रहे हो? तो श्रीजामवन्त जी ने कहा-यदि हनुमान जीवित हैं तो सभी जीवित हैं यदि हनुमान नहीं है तो दूसरे जीवित भी मरे के तुल्य हैं। ऐसी महिमा श्रीहनुमान जी की है। जय हनुमान जी की।

२.-जिसकी श्रद्धा-भक्ति जिस नाम में, जिस रूप में रहती है वहीं श्रीकृष्ण प्रकट होकर उसके मनोरथ को पूर्ण कर देते हैं। भगवान अपने प्रेमियों की अभिलाषा पूर्ण करके अपने धाम को जब चले गए तभी यह जाना गया कि ब्रज में तीन प्रकार के भक्त थे। प्रथम तो अन्तरंग पार्षद जिनका भगवान से कभी वियोग नहीं होता है। नित्य धाम तथा लीला काल में वे साथ रहते हैं। दूसरे वे हैं जो आराधना करके अन्तरंग लीला में प्रवेश चाहते हैं। तीसरे वे देवता आदि हैं जिनको ब्रह्मा जी ने ब्रज में अवतार लेकर, लीला में सहयोग देकर आनन्द लेने की आज्ञा दी थी। देवताओं के अंश से प्रकट लोगों को भगवान ने द्वारका पहुँचा दिया था। ब्राह्मण के शाप के बहाने आपस में वे लड़े और अपने-अपने पदों पर स्वर्ग में स्थित हो गए। जो एक मात्र प्रभु को चाहते थे उन्हें भगवान ने अपने नित्यलीला में प्रवेश करा दिया वे आज भी ब्रज में, कुंजों में हैं। पर वे अनधिकारियों को दिखाई नहीं पड़ते हैं अधिकारियों को वे दर्शन आज भी देते हैं।

३.-यमुना जी से पटरानियों ने पूछा कि व्याकुलता विरह तुम्हें क्यों नहीं है? उन्होंने कहा कि मैं अपने को राधा की दासी मानती हूँ। राधाकृष्ण एक हैं, फिर सभी ने राधा की उपासना की। उद्धव जी ने प्रकट होकर उद्धव कुंड पर दर्शन दिया। वहाँ भागवत की कथा उद्धव जी ने सुनाई, सबको श्रीकृष्ण का दर्शन हो गया। प्रभु की लीला श्रवण से वियोगजन्य कष्ट नहीं मिलता है। नाम, रूप, लीला, धाम में एकता है। जय श्रीकृष्ण।

४.—श्रीकृष्ण के बाल चापल्य से चिन्तित यशोदा से किसी बड़ी बूढ़ी गोपी ने कहा कि तुम गणेश का पूजन करो वे बुद्धि के दाता हैं, उनकी कृपा से कृष्ण कन्हैया की बुद्धि शुद्ध हो जायगी, चंचलता कम हो जायगी। माता ने लड्डू बनाये पूजन सामग्री को बाल गोविन्द को साथ लेकर गणेश मंदिर पर पहुँच गईं। तब उन्हें ध्यान आया आरती के लिए दीपक नहीं लाई। श्रीकृष्ण से बोली देख, तू यहीं बैठा रह सामग्री की, विशेषकर लड्डुओं की रखवाली करना। सामग्री को हाथ न लगाना। माता गई और दीपक लेकर आई। सामग्री को देखा तो सब लड्डू गायब थे, श्रीकृष्ण से पूछा—क्यों रे! लड्डू सब क्या हुए कहाँ गए? तूने ही खा लिए होंगे। ठाकुरजी ने कहा—मैंने नहीं खाए। जाने कब के भूखे इस गणेश ने लड्डू खा लिये, इसीसे इनका पेट बड़ा हो गया। माता समझ गई इसी चंचल ने सब भोग खा लिया, श्रीकृष्ण को मारने के लिए छड़ी उठायी और डरपा कर पूछा कि सच बता नहीं तो मारुँगी। माता श्रीकृष्ण को मारना चाहती थी तभी झट गणेश जी प्रकट हो गए और बोले मैया इस लाला को मत मारो, मैंने ही लड्डू खाये हैं। माता ने गणेश को प्रणाम कर लाला के मंगल कल्याण के लिए वरदान माँगा। श्रीकृष्ण के खाने से श्रीगणेश जी तृप्त हो गये। जड़ में सींचनें से वृक्ष की डालें, पत्ते सभी हरे हो जाते हैं। सर्वदेवमय श्रीकृष्ण हैं।

५.—लीलाकाल में रसिक भक्तों के अनुभव के अनुसार अपनी शक्ति राधा रानी के अधीन हो जाते हैं। भक्तों को सुखी करने के लिये भगवान ऐसी लीला करते हैं। श्रीराम जी मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, लीलाकाल में भी वे सर्वथा शक्तिमयी सीता के अधीन नहीं होते हैं। स्वयं श्रीसीता जी प्रभु के अधीन रहती हैं। वनवास काल में माया सीता ने अपने प्रभु को मृगचर्म लाने की आज्ञा दी, अतः उनका हरण हुआ। पतिव्रताओं के लिए माता जी ने अपने चरित्र से उपदेश दिया कि मैं आदेश देकर संकट में पड़ गई तो दूसरी कोई स्त्री संकट से कैसे बच सकती है। **निज कर गृह परिचर्या करई। रामचन्द्र आयसु अनुसरई॥** यद्यपि राजमहल में अनेक दास दासियाँ हैं फिर भी माता जानकी अपने हाथों से श्रीराम जी की सेवा करती थीं और श्रीराम जी की आज्ञा का पालन करती थीं।

६.–यह ब्रजभूमि अति मोहनी है। यहाँ बारह वन बारह उपवन हैं। यमुनाकुंज, निकुंज, गिरिराज गोवर्धन, नन्दगाँव, कामवन आदि मन को मोहित करते हैं। यहाँ के पशु, पक्षी, नर, वानर, देव, ऋषि सभी दिव्य हैं, श्रीकृष्ण को प्राप्त हैं। ब्रज में गाय एक आदरणीय दिव्य पशु है। श्रीकृष्ण की इष्ट देवता, विश्व की माता, विश्व की रक्षा करने वाली गाय है। गायों का गोष्ठ होने के कारण ही ब्रज ब्रज है। इसे गोकुल कहा जाता है। गोचारण-गोपालन ही यहाँ का मुख्य व्यापार-व्यवसाय है। ग्वाल बालों का स्वच्छन्द बिहार स्थल है। गौओं की सेवा के कारण ही कृष्ण का गोविन्द नाम पड़ा। **'गां विन्दति इति'** गायों को आनन्दित करने वाले का नाम श्रीकृष्ण है। गो सेवक का मुख्य भोजन दूध, दही, माखन, मलाई है। बड़े वात्सल्य के साथ श्रीकृष्ण ने गोचारण-गोपालन किया। गायों के द्वेषी दैत्यों का वध किया।

७.–मथुरा को गोरस बेचने वाली गोपियों के गोरस को लूटा प्रभु ने। एक प्रकार से बेचने पर रोक लगाई। गोपियों से माखन माँगने में वात्सल्य है। छीनने में धक्का-धक्की करने में माधुर्य है। गोवत्स चारण के बाद गो चारण के लिये मचले **'मैं अपनी सब गाय चरैहौं।'** वंशी बजाकर गोधन को बुलाते हैं। वंशी सुनकर गायें मुग्ध होती हैं। फिर प्रभु गो दोहन के वास्ते हठ करते हैं कि मुझे गाय दुहना सिखाओ। **'मैं दुहिहौं मोहिं दुहन सिखावहु।'** गोपियों की तरह गायें श्रीकृष्ण के संयोग और वियोग का अनुभव करके आनन्दित होती थीं। आज भी यहाँ श्रीकृष्ण की लीला हो रही है। हम लोग उसे नहीं देखते हैं। जो अनुभवी उपासक हैं वे देखते तथा कृष्ण लीला का अनुभव करते हैं।

८.–ब्रज में मयूर, शुक, वानरों का अनुपम स्थान है। ये कृष्ण लीला के सहयोगी हैं। भगवान मोर पक्ष को सिर पर धारण करते हैं। मोर की बोली को सुनकर मोर की तरह बोलकर आनन्दित होते हैं। श्रीकृष्ण का मयूर नृत्य राधा रानी को मोहित करता है। स्वयं कृष्ण मोर बनकर नाचकर अपने भक्तों को आनन्दित करते हैं। शुक निकुंज में निवास कर प्रिया-प्रीतम का प्रेम संदेश प्रिया-प्रीतम को पहुँचाते हैं। राधा नाम से कृष्ण को कृष्ण नाम से राधा को आनन्दित करते हैं। अन्तरंग लीला को गाते हैं। भगवान घर में, वन में माखन खिलाकर, उनकी सी बोली बोलकर, उछल-कूदकर अपने भक्तों

को आनन्दित करके स्वयं भी आनन्दित होते हैं। श्रावण मास ब्रज का अति ही सुहावना समय है। अब तो रासलीला, रामलीला, गौरांगलीला, कथा-कीर्तन की प्रायः सर्वत्र ध ूम मची रहती है।

९.–**'रामो विग्रहवान् धर्मः।'** भगवान श्रीराम विग्रहवान धर्म हैं अर्थात् धर्म की साक्षात् मूर्ति हैं। चारों में गुण, रूप, शील, सौंदर्य अपार है **'तदपि अधिक सुखसागर रामा।'** आदर्श को उपस्थित करके शिक्षा देने के लिए यह अवतार है। श्रीराम में सामान्य धर्म है। पिता, माता, विमाता, पत्नी, गुरु, भ्राता, मंत्री, शत्रु, प्रजाजनों के प्रति, सभी के प्रति श्रीराम ने स्नेह किया। अपने कर्तव्य का निर्वाह किया।

श्रीराम के धर्म की अपेक्षा श्रीलक्ष्मण जी का धर्म श्रेष्ठ है क्योंकि इनमें विशेष धर्म है। सामान्य से विशेष श्रेष्ठ होता हैं। श्रीराम जी ने लक्ष्मण को वन न चलकर घर में रहकर पिता, माता, प्रजा की सेवा का आदेश दिया पर लक्ष्मण जी ने कहा–**'गुरु पितु मातु न जानौं काहू।'** मैं आपको जानता-मानता हूँ, दूसरे गुरु, पिता, माता, को नहीं। मेरे सर्वस्व आप हैं। आपसे मेरा धर्म श्रेष्ठ है। लक्ष्मण आचार्य हैं, विशेष धर्म की इनसे शिक्षा मिलती है। लक्ष्मण जी के धर्म की अपेक्षा भरत जी का धर्म श्रेष्ठ है क्योंकि वे विशेषकर धर्म के पालक हैं। श्रीराम में प्रेम करके इन्होंने अन्त में कहा कि **'जेहि विधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुणासागर कीजै सोई॥'** अपनी इच्छा, सुख, हठ को त्यागकर श्रीराम की आज्ञा का पालन किया। श्रीभरत जी के धर्म की अपेक्षा श्रीशत्रुघ्न का विशेषतम धर्म श्रेष्ठ है। शत्रुघ्न ने श्रीराम भक्त श्रीभरत में भक्ति की। उनके आज्ञाकारी अनुचर बने। श्रीभरत नन्दी ग्राम में तपस्या रत थे। शत्रुघ्न ने भरत जी की आज्ञा के अनुसार अयोध्या का, माताओं का, सम्पूर्ण प्रजा का पालन किया।

सामान्य से विशेष, विशेष से विशेषतर और इससे भी विशेषतम धर्म श्रेष्ठ है।

१०.– भगवत रसिक जी की वाणी

अपूरव पर्‍यौ ग्रहण को जोग।
चंदा झपटि राहु को पकरत करत आपनो भोग॥
जानत नहीं जोतिसी पंडित देखत नित्य उपासक लोग।
भगवत रसिक मिथुन के जापक चाहत नहीं वियोग॥

यह ग्रहण अपूर्व है, वृन्दावन से भिन्न भूतो न भविष्यति। ग्रहण अर्थात् पकड़ना। ऐसा मधुर ग्रहण योग है। गुप्त है इसे गणितज्ञ पंडित नहीं जान सकते हैं देखना तो दूर रहा। गणितज्ञ आज से हजारों वर्ष आगे पीछे के ग्रहण को बता सकते हैं पर इस वृन्दावन की कुंज में जो अपूर्व ग्रहण योग को वे नहीं जानते हैं। वृन्दावन निकुंज के उपासक इसे देखते हैं। वहाँ तो राहु चन्द्रमा को पकड़ता है पर यहाँ चन्द्ररूपी किशोरी राहु रूप कृष्ण को पकड़कर अपना भोग्य बना लेती हैं यही इसकी अपूर्वता है। चन्द्रमा पर संकट जान कर उसे राहु से मोक्ष मुक्ति के लिए लोग भजन-पाठ आदि करते हैं। शीघ्र चन्द्रमा को मुक्त देखना चाहते हैं, पर मिथुन=युगल के उपासक चन्द्रमा से राहु को मुक्त हुआ देखना नहीं चाहते। ऐसा अपूर्व ग्रहण सदा बना ही रहे। इसके दर्शन-स्मरण से आनंद में सरावोर नित्य उपासक मंगलमय हो जाते हैं। प्रेम निमग्न युगल का स्मरण हृदय में प्रेम को प्रकट करके उसकी वृद्धि करता है। श्रीयुगलकिशोर के हृदय में इस अवसर पर जो परमानन्द का सागर उमड़ता है, उसे 'इत रोक्यौ जमुना उत गोपिन कछु एक फैलि रह्यौ त्रिभुवन में।' एक ओर जमुना जी रोकती हैं जमुना जी स्वयं परमानन्द रसमयी हो जाती हैं। दूसरी ओर उस सागर को रोकती हैं ब्रज की गोपियाँ। उनके हृदयों में आनन्द का सागर श्रीकृष्ण प्रेम भर जाता है। सूक्ष्म अंश तीनों लोकों में फैलकर प्रेमियों को आनंदित करता है पर जोगी, हठी, कर्मकाण्डी उसे नहीं पाता है।

११.—तारीख १५-१०-९७ को शरदपूर्णिमा महोत्सव है। यह महारास की पूर्णिमा है। वंशी बजाकर भगवान ने ब्रज गोपियों को बुलाया, उनके साथ रास क्रीड़ा करके काम पर विजय प्राप्त की। वे कोई दूसरी गोपियाँ नहीं थी, श्रीकृष्ण की अपनी अन्तरंगा लक्ष्मी जी ही थीं। उस दिन रास के प्रसंग को पढ़कर-सुनकर आनन्द लेना चाहिए। इससे मन के दुष्ट विकारों का नाश होता है। दशम् स्कन्ध के २९ अध्याय से ३३ अध्याय तक इसका वर्णन है।

१२.—महाभारत युद्ध की समाप्ति पर विजय और राज्य प्राप्त करके भी श्रीयुधिष्ठिर के मन में अशांति थी। वे सोचते थे कि हमने गुरुको, भीष्मपितामह को, भाइयों को राज्य के लोभ से मारा यह ठीक नहीं किया। ब्राह्मण कहते थे कि अश्वमेध यज्ञों से तुम्हारी शुद्धि हो गई पर वे विश्वास नहीं करते थे। अर्जुन को जैसे श्रीकृष्ण

ने उपदेश दिया था उस प्रकार से उपदेश नहीं दिया। अपने से बड़े होने के कारण स्वयं उपदेश न देकर युधिष्ठिर को भीष्मपितामह के पास ले गए। उन्होंने कृष्ण महिमा सुनाई और कहा कि यही श्रीकृष्ण कर्ता-धर्ता हैं। जो कुछ किया है इन्होंने ही किया है तुम अपने को कर्ता मत मानो। अपनी शक्ति, युक्ति, बुद्धि से द्रोण, भीष्म, कर्ण आदि को तुम नहीं मार सकते थे। श्रीकृष्ण को साधारण न मानो। तुम्हारे प्रेम के अधीन होकर ये अपनी ईश्वरता को दूर रखकर तुम्हारे सखा, सेवक, सारथी बने हैं। भीष्म ने कृष्ण कथा सुनाई तो युधिष्ठिर का शोक दूर हो गया। पितामह से उपदेश दिलाकर उनकी महिमा को बढ़ाया। भक्त महिमा को बढ़ाना यह कृष्ण का सहज स्वभाव है। अपने भक्तों पर प्रभु कृपा करते हैं।

१३.—प्रारब्ध प्रेरित सामान्य लोग व्यवहार करते हैं, सुख-दुख का अनुभव करते हैं। भक्तजन कृपा प्रेरित संसार के व्यवहार करते हैं। उनका संसारी व्यवहार भी भक्ति से संबंधित रहता है, क्योंकि भक्त का लक्ष्य भगवान को संतुष्ट करना रहता है। वह अपने कर्म-धर्म अपने इष्ट को समर्पित कर देता है। जो कुछ करना अपने स्वामी की इच्छा से करना, यही दास का मुख्य कर्तव्य है। दासों में श्रीहनुमान जी मुख्य हैं। दास्य भक्ति के आचार्य हैं। उन्होंने अपनी सेवा से श्रीराम जी को तथा श्रीजानकी जी, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न को, माताओं को, सुग्रीव को, विभीषण आदि को प्रसन्न एवं संतुष्ट किया। श्रीलक्ष्मण प्राणदाता उन्हें कहा गया। श्रीभरत जी वियोग व्यथित हैं। प्रभु का समाचार सुनाकर विरह समुद्र में डूबते हुए को उबारा। जगदम्बा जानकी को मुद्रिका देकर राम कथा सुनाई तो उनसे अष्ट सिद्धि, नव निधि देने की सामर्थ्य पाई। सागर पार करते समय तीन विघ्न आए। सात्विक विघ्न था कि विश्राम कर लो मैनाक ने कहा। बिना रामजी का कार्य किए मुझे विश्राम नहीं करना। तामसी विघ्न छाया ग्रहिणी ने छाया पकड़कर खींचा तो उसका वध कर दिया। तामसी विघ्न का सर्वथा नाश कर देना चाहिए। राजसी विघ्न लंकिनी थी उससे बुद्धिमानी से काम किया। मुख में घुसकर निकल गए, सुरसा का आशीर्वाद मिला। विभीषण प्रातः राम राम कर रहे थे तो उनसे हनुमान जी मिले। सीता के दर्शन प्राप्त करने की युक्ति प्राप्त की। दोनों का सत्संग हुआ तो जिसका वर्णन नहीं हो सकता है ऐसा विश्राम दोनों को मिला। भक्ति सीता

का दर्शन हुआ। विभीषण जी को राम शरणागति अभीष्ट थी। प्रभु मुझे अपनी शरण में रक्खेंगे या नहीं? इस संदेह को हनुमान जी ने दूर किया। मुझ सरीखे चंचल वानरों को शरण में रक्खा तो तुम्हें अवश्य शरण में रक्खेंगे। इस आश्वासन को पाकर विभीषण जी शरण में गये। राजगद्दी पर बैठने के बाद अगस्त्य आदि ऋषियों के द्वारा श्रीराम जी ने हनुमत् चरित्र का श्रवण किया।

१४.—रामायण महामाला के श्रेष्ठ रत्न श्रीहनुमान जी हैं। परम धर्म वह है जिससे भक्ति प्राप्त हो। अजामिल के प्रसंग में नाम की श्रेष्ठता कही गई। नाम का आश्रय परमधर्म है। श्रीहनुमान जी ने विभीषण द्वारा अर्पित रत्नहार के दाने फोड़कर उनमें राम नाम की खोज की, अपने शरीर की त्वचा को उखाड़कर राम नाम का दर्शन कराया, यह श्रेष्ठ नाम भक्ति है। हनुमान जी के रोम-रोम से राम नाम की ध्वनि निकलती है। श्रवण में सर्वत्र उपस्थित होकर प्रभु चरित सुनते हैं। इस प्रकार श्रवण-कीर्तन आदि सभी भक्तियों के आचरण में श्रेष्ठ हैं। हनुमान की सेवा से, उन्हें रामायण सुनाये जाने पर राम जी प्रसन्न होते हैं। स्वधाम गमन के समय कल्पपर्यन्त आयु प्रदान कर यहाँ रहने की आज्ञा राम जी ने दी है। जब तक यहाँ कथा मिलेगी तब तक रहकर भक्तों के मनोरथ पूर्ण करते रहेंगे।

१५.—सम्पूर्ण शिव परिवार-परिकर शिवात्मक है। सती जी कुपित होकर योगाग्नि से भस्म हुईं थी अत: हिमालय के घर जन्म होने पर भी उनका वर्ण काला हुआ। शिव जी कर्पूर गौर थे। काली पार्वती के वर्ण पर आक्षेप किए अत: खिन्न होकर एकान्त में तपस्या करने लगी। ब्रह्मा जी ने प्रसन्न होकर वरदान दिया कि तुम्हारा गौर वर्ण हो जाय। दिव्य लेप लगाकर मालिश करने पर गौर वर्ण हो गया। अपने शरीर के दिव्य मैल से बालक बना दिया और उसे पहरेदार रखकर तप करने लगीं। शिव ने पार्वती के वियोग से, पता लगाकर दर्शन की इच्छा की तो बालक ने रोका। भयंकर संग्राम के बाद बड़ी कठिनाई से बालक के सिर को त्रिशूल से उड़ा दिया और पार्वती के समीप गए। स्वागत के बाद देवी ने पूछा कि भीतर आते समय किसी ने रोका नहीं? शिव ने बताया उससे बड़ा युद्ध हुआ उसके सिर को काटकर भीतर आया हूँ। यह सुनकर पार्वती रोने लगीं वह अपना पुत्र था। कैसे? तो उत्पत्ति कथा बताई। शिव ने

कहा उसका सिर नहीं मिल सकता है दूसरे किसी का सिर लगाकर उसे जीवित कर दूँगा। देवी ने कहा जैसे मैं रो रही हूँ उसी प्रकार उसकी माता रोयेगी। शंकर ने कहा गणों! तुम किसी ऐसे शिशु का सिर काटकर लाओ जो माता जन्म देकर शिशु को पीठ की तरफ डालकर पड़ी हो। एक हथिनी जन्म देकर बालक की उपेक्षा करके पड़ी थी। उसका सिर आया और शिव ने जीवित कर दिया। गणेश और षट्मुख दोनों अयोनिज हैं। राम नाम के प्रभाव से गणेश जी प्रथम पूज्य हुए। शिव का पूरा परिवार दिव्य है और पूज्य है। भक्तों के परम भक्त होने से शिव वैष्णवों में सर्वश्रेष्ठ वैष्णव हैं। लीलाकाल में सर्वेश्वर श्रीराम शिव की स्थापना करके स्वभक्त की श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं। शिव पूजन करने की प्रेरणा देते हैं।

१६.—श्रीराम का प्रताप, प्रभाव और स्वभाव ये जानने के योग्य हैं। प्रताप में प्रखरता है, प्रभाव में प्रताप की तीक्ष्णता न होकर सौम्यता है। प्रताप और प्रभाव का ज्ञान दूर से भी हो जाता है किन्तु स्वभाव का ज्ञान, उसका पूर्ण अनुभव समीपता से होता है। श्रीलक्ष्मण प्रताप के, श्रीहनुमान जी प्रभाव के और श्रीभरत जी स्वभाव के प्रतीक हैं।

१७.—शनिदेव सायंकाल के समय संध्या करके मंत्र का जप कर रहे थे। इस बीच इनकी पत्नी श्रृंगार करके पहुँची, वह अपनी ओर आकृष्ट करके संतान चाहती थी। सायं बेला में शंकर जी भ्रमण करते हैं। जिसे जिस काम में लगा देखते हैं तो उसे उसी काम में आसक्त होने का शाप और आशीर्वाद देते हैं, अतः शनिदेव ने उसकी ओर नहीं देखा। निराश होकर उसने शाप दिया कि तुम्हारी दृष्टि जिस पर पड़ेगी उसका नाश होगा, अमंगल होगा। यह सुनकर लोहे की पट्टी शनिदेव जी ने अपनी आँखों पर लगा ली। शाप स्वीकार किया पर धर्म मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया। गणेश के जन्म पर सभी देव बधाई देने आए। मुख अति सुंदर था अतः सुमुख यह नाम प्रसिद्ध हुआ। शनिदेव पार्वतीनन्दन को आशीर्वाद देने नहीं आये। नारदजी ने पार्वतीजी से कहा–सभी लोग आए शनि को भी आना चाहिए। पार्वती जी ने शंकर जी से कहा तो शंकर जी ने कहा नहीं आए तो क्या हानि है। पार्वती जी ने आग्रह किया तो उन्हें बुलाया गया। पार्वती जी ने कहा मेरे पुत्र को देखो कितना सुंदर है। शनि ने कहा कि मेरी दृष्टि अशुभ है, इसलिए बिना देखे मंगल कामना करता हूँ। पार्वती जी के बहुत आग्रह करने पर

आँख की पट्टी हटा कर किंचित् दृष्टि डाली तो पार्वतीनन्दन का सिर उड़ गया। अधीर होकर पार्वती जी विलाप करने लगीं। दूसरे लोग भी व्यथित थे। तब शिव जी ने हाथी के शिशु का सिर लगा दिया। हाथी का सिर था तो ये भी मतवाले हाथी की तरह ऋषि-मुनियों के साथ विनोद करते। भजन करते हुए ऋषियों की चोटी जटाजूट सूँड से पकड़ कर उन्हें ऊपर उठा देते। ऐसे अनेक उपद्रवों की शिकायतें आने लगीं। तो शिव ने इन्हें राम मंत्र का उपदेश दिया। वैष्णव संस्कारों से सम्पन्न होने पर ये अति सौम्य हो गये। एक कल्प की यह कथा है। हर कल्प में गणेश अलग-अलग होते हैं। इनका नाम हेरम्ब है। पर इस बार राम नाम के शुभ प्रभाव से ये प्रथम पूज्य गणेश हुए। पिछले-पिछले कल्पों में दूसरे-दूसरे गणेशों की चर्चा पुराणों में है।

१८.—पार्वती जी वामदेव की शिष्या थीं। नित्य विष्णु सहस्त्रनाम का पाठ करती थीं। पाठ किये बिना भोजन नहीं करती थीं। शंकर जी ने भोजनार्थ आमंत्रित किया और सहस्त्र नाम तुल्य राम नाम उपदेश दिया जिसे श्रद्धापूर्वक मानकर पार्वती जी ने शिव के साथ प्रसाद पाया। पार्वती जी के इस नाम प्रेम को देखकर **'हरषे हेतु हेरि हर हिय को। किय भूषण तिय भूषण ती को॥'** शिव जी प्रसन्न हुए और पार्वती को अपनी अर्धांगिनी, नित्य जीवन संगिनी किया और स्त्रियों में श्रेष्ठत्व प्रदान किया। इसके पूर्व सती आदि शरीर नष्ट हो जाते थे। भगवन्नामामृत में श्रद्धा से निमग्न हुईं तो शिव के वाम अंग में प्रविष्ट हो गईं तब से अब सदा शिव के साथ रहती हैं। पहले शरीर का त्याग करती थीं तो उनके मुण्ड को माला में सम्मिलित कर लेते थे। अब शिव की तरह अजर-अमर हैं। अर्धांगिनी बनाया तो शिव जैसे थे वैसी शिवा हो गईं।

१९.—नरकगामियों को देखकर दयावश शिव ने तप किया, तब प्रसन्न विष्णु से वर माँगा कि लोगों की नरक यात्रा बन्द हो। प्रभु ने कहा अपनी नगरी में जिसे नाम सुना दोगे वह नरक में नहीं जायगा। शिव सदा काशी में विचरते हुए सावधान रहते हैं। मरणशील के दाहिने कान में नाम देते हैं। मरने वाले का कान यदि दबा हो तो उसका दाहिना कान ऊपर हो जाता है। काशी में ऐसा देखा गया है। यह शिव की प्राणियों पर दयालुता है।

२०.—श्रीहनुमान जी में चारों वर्ण निवास करते हैं। स्वयं श्रीराम ने कहा-हे लक्ष्मण! इसने सभी व्याकरण पढ़े हैं, यह चारों वेदों का ज्ञाता है, बहुत भाषण करने

पर भी कहीं भाषण में अशुद्धि नहीं हुई अतः इनसे श्रेष्ठ कोई ब्राह्मण नहीं। ये ब्राह्मणों में श्रेष्ठ हैं। क्षत्रिय स्वभाव से वीर और प्रजारक्षक होता है। ये सब वीरों में अग्रगण्य हैं अतः दुःख से त्राण करते हैं इसलिए उत्तम क्षत्रित्व इनमें है। ये अष्ट सिद्धि और नव निधियों के दाता हैं धनी हैं अतः इनसे बड़ा कोई श्रेष्ठ महाजन नहीं है अतः वैश्यत्व भी पूर्णरूप से इनमें है। शूद्र का धर्म सेवा है। ये मन, वाणी, कर्म से राम सेवक हैं, दासों में प्रधान हैं अतः इनकी कृपा से सेवा धर्म का रहस्य जाना जा सकता है। दास भाव को पाया जा सकता है। आपमें सर्वश्रेष्ठ शूद्रत्व है। आपमें सर्व धर्म निवास करते हैं।

२१.– शान्त रस से लेकर माधुर्य रस तक, श्रवण से लेकर आत्मसमर्पण तक की सभी निष्ठाएँ श्रीहनुमान जी में निवास करती हैं अतः ये पंच रसोपासकों में श्रेष्ठ हैं। श्रवणादि नवधा भक्ति की सभी निष्ठाएँ इनमें विद्यमान हैं। ये राम भक्ति के दाता तो प्रसिद्ध ही हैं, बिना इनकी कृपा के कोई श्रीराम तक नहीं पहुँच सकता है। साथ ही श्रीकृष्ण भक्ति के दाता ही नहीं, निकुंज में प्रवेश कराने वाले भी हैं। कई भक्तों ने श्रीहनुमान जी की कृपा से वृन्दावन रस निकुंज में प्रवेश कर सहचरी भाव प्राप्त किया। हिन्दू ही नहीं मुसलमान भी श्रीहनुमान जी की मान्यता करते पाये गये। यदि ये अभीष्टदायक न होते तो इनकी उपासना का इतना प्रचार नहीं होता। एक लघुकाय हिन्दी का स्त्रोत हनुमान चालीसा का जितना प्रचुर प्रचार है उतना किसी धार्मिक ग्रन्थ का नहीं हुआ।

२२.–ज्ञानियों में श्रेष्ठ होकर भी हनुमान जी ने लंका जलाई, राक्षसों का वध किया। हिंसा और आग लगाना आततायी कार्य हैं पर हनुमान जी को दोष-पाप ने स्पर्श नहीं किया। **'आदाय तेनैव ददाह लंकाम्।'** जानकी जी की शोकाग्नि से लंका को जलाया न कि अपने क्रोध से।

तुलसीदास ने बाहुक में लिखा है रावण मोह रूप है यह एक बड़ा भारी रोग था। हनुमान जी रसायन वैद्य हैं, सोने को फूँका, उसकी भस्म बनाई जिससे राष्ट्र निरोग हुआ। सेवक का कर्तव्य है कि स्वामी के अनुकूल उन्हें प्रसन्न करने के लिए सारी क्रियायें करे।

श्रीराम ने **'निशिचर हीन करौं महि भुज उठाई पन कीन।'** स्वामी की इस प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए राक्षसों का वध किया। जैसे श्रीराम समदर्शी हैं, वध करके उन्हें मोक्ष देते हैं, श्रीराम द्वारा राक्षस वध उन पर कृपा ही है, वे अन्य साधनों से मोक्ष प्राप्त करने के अधिकारी नहीं है, इसी तरह हनुमान जी ने राक्षस वध करके उन्हें मुक्त कर दिया। यह आप की बड़ी रामवत् अनुकम्पा जीवों पर है। यही कारण है कि आपको पाप न लगकर प्रभु सेवाजन्य प्रभु की कृपा भक्ति प्राप्त हुई। हनुमान जी से बड़ा कोई कर्मयोगी नहीं और भक्तियोगी भी नहीं है। सकल गुण निधान हैं। क्योंकि विशुद्ध निर्मल भक्तियोगी के हृदय में सभी गुण अपने आप आ जाते हैं अतः श्री हनुमान सकल दिव्य गुण निधान हैं।

२३.—संसार में सात्विक जीवन ही जीवन है। जब प्रभु की कृपा रहती है, जीव को भगवान का आश्रय रहता है, तब जीव के राजस-तामस नगण्य हो जाते हैं। लोग भक्तों को, उसके जीवन को देखते हैं तो सात्विक भक्त उसे भक्त मानते हैं। राजसी तामसी लोग भक्त को राजसी-तामसी मान बैठते हैं। जैसे गरुड़ सामान्य पक्षी न होकर दिव्य पक्षी हैं। उनका जन्म, कर्म, ज्ञान, भक्ति सब कुछ निर्मल है। अपनी माता को दासीपने से छुड़ाया, इससे इनकी मातृभक्ति पर प्रभु प्रसन्न हुए। जिन दुष्ट नागों ने माता को छल करके दासी बनाया उनके भोजन का वरदान इन्द्र से प्राप्त हुआ। सर्प भक्षण करने से पाप नहीं लगता हैं क्योंकि सर्प भक्षण कर्म नहीं है क्रियामात्र है। अपनी पक्षी प्रकृति से सर्पों को खाते हैं। उदर पूर्ति का विधान अनादि से बना है। मोर आदि सर्पभक्षण करते हैं उन्हें भी पाप नहीं लगता है।

२४.—अमृत सरीखी दिव्य वस्तु को पीने का लोभ गरुड़ जी को नहीं हुआ तो विष्णु भगवान ने प्रसन्न होकर दर्शन देकर कहा कि वरदान माँगो तो गरुड़ ने कहा कि मुझे अपनाकर अपनी ध्वजा में वास दीजिए। एवमस्तु, इसी से भगवान का नाम गरुड़ध्वज हुआ। भगवान ने कहा बिना अमृत पिये ही अजर-अमर हो जाओ। जब इन्हें भगवान ने अपनाया तो इन्हें जैसा अमृत्व प्राप्त हुआ, वह अमृत पान करने से नहीं हो सकता था। गरुड़ ने कहा मुझे आज्ञा दो मैं क्या करुँ? भगवान ने कहा मैंने वरदान दिया उसके बदले तुम वरदान दो। क्या दूँ? प्रभु बोले मेरे वाहन बन जाओ। एवमस्तु

कहकर चरण पकड़ लिए गरुड़ जी ने। भगवान की विभूति हैं श्रीगरुड़ जी। ज्ञानी, भक्त चरित्र श्रवण के प्रेमी हैं। भगवान स्वभावतः दुष्ट नाशक हैं इसमें प्रभु को पाप नहीं लगता है। सूर्य के प्रकाश में, गंगा के प्रवाह में, अग्नि की ज्वाला में अनेक जीवों का नाश होता है पर सूर्य, गंगा और अग्नि को पाप नहीं लगता है क्योंकि यह कर्म नहीं है, क्रियामात्र है। कर्म से अहंकार होता है तब कर्ता पाप से लिप्त होता है। ईश्वर में कर्तृत्व का अहंकार नही हैं ऐसे ही ज्ञानी में भी जब अहंकार नहीं रहता है तो उनके द्वारा हुए राजस-तामस कर्म का पाप नहीं लगता है।

२५.-श्रीधाम चित्रकूट प्रभु का सुख विलास है, श्रीधाम वृन्दावन श्रीकृष्ण का सुख विलास है अतः दोनों धामों के तत्वों में एकता है। एक बार श्रीकृष्ण पिछड़ गए ग्वाल बाल, गायें आगे चली गईं। भगवान श्रीकृष्ण झुके खड़े थे। पीछे से आने वाली गोपियों ने तथा श्रीजी ने देखा तो पूछा यहाँ अकेले झुके क्यों खड़े हो? कुछ देर तक तो वे बोले नहीं क्योंकि अपने भाव में निमग्न थे, बाद में सावधान होकर उन्होंने बताया कि देखो, यहाँ पर ब्रजरज में श्रीराधारानी का पद चिन्ह स्पष्ट दर्शन दे रहा है, मैं उसके दर्शन में भावमग्न हूँ। दर्शन करके चले क्यों नहीं गये? इसलिए कि सूर्य की प्रखर किरणों से श्रीचरण संतप्त न हो। अपने शरीर की छाया से उसकी सेवा कर रहा हूँ। साथ-साथ दर्शनानन्द भी ले रहा हूँ। यह सुनकर गोपियों ने जाना कि श्रीराधारानी के चरणों में कितना प्रेमानुराग है। वे बोलीं प्यारे! तुम्हारी आराधना सफल हुई ये देखो, श्रीजी तुम्हें दर्शन देने के लिए आ गईं। अपने चरणों में अनुरक्त प्यारे के समीप आकर श्रीजी ने दर्शन देकर उन्हें आलिंगन प्रदान किया इससे गोपियों को परमानन्द हुआ।

२६.-संत-भगवन्त का पावन स्मरण मंगलप्रद है। प्रेमी जन संत-भगवन्त का स्मरण करके पुलकित हो जाते हैं नेत्रों से अश्रुपात होता है। अश्रुजल और चरणजल दोनों की महिमा अपार है। आज श्रीगंगा दशहरा है श्रीगंगा जी की उत्पत्ति का दिन है। जहाँ-जहाँ गंगा तथा उनकी धाराएँ है वहाँ-वहाँ सर्वत्र मेला है। श्रीगोमती, अलकनन्दा, गोदावरी आदि सब गंगा की ही शाखाएँ हैं। आकाश गंगा आकाश को, पाताल गंगा पाताल को पवित्र करती हैं। **'गच्छति इति गंगा।'** जो निरंतर भगवान की ओर, समुद्र भगवान की ओर चलती ही रहती हैं। अपने आश्रित को भगवान तक पहुँचाती हैं। गंगा

का नाम, जल, रज और स्मरण भी पवित्र करने वाला है फिर जो जल में स्नान करते हैं, जल का पान करते हैं उनकी शुद्धि में संदेह ही क्या। गंगा जल से धुली हुई चादर किसी मृतक शरीर पर डाल दी गई तो उसका उद्धार हो गया अन्यथा उसे प्रेत बनना था। भगवत् चरणों में जो २४ चिन्ह हैं वे सब अपनी महिमा रखते हैं। चरणजल में सबकी शक्ति आ जाती है। श्रीगंगा जी में प्रभु के चरण का मकरंद मिश्रित है। राजा बलि पर अति कृपा कर रहे थे। उस समय चरण का प्रक्षालन किया गया। भक्त पर प्रभु द्रवित थे और प्रक्षालन करने वाले श्रीब्रह्मा जी के हृदय में बलि वामन का पारस्परिक प्रेम समुद्र देखकर ब्रह्मा जी भक्ति से द्रवित थे। उनके द्वारा लिए गए चरणामृत की महिमा अनन्त हो गई। इस पृथ्वी पर आगमन के कारण तपस्वी भगीरथ हुए, शिव की जटाओं में निवास रहा अतः और अधिक महिमा रही। गंगाजी की महिमा शिवजी ने तथा सप्तऋषियों ने समझी तो पूजन-वंदन किया। मूल में कपिल भगवान की दयामयी आज्ञा थी यह भी महत्व की बात हुई। '(संत तुम्हारे पापों का हरण कर लेंगे।)' यह उक्ति राजर्षि भगीरथ की अनुभव सिद्ध थी। संतों की महिमा की वृद्धि में गंगाजी कारण बनीं। गंगोत्री, हरिद्वार, प्रयाग, गंगा सागर ये गंगा स्थान बड़े महत्व के हैं। इसके अतिरिक्त घाट ऋषियों की तपस्या से सिद्ध प्रसिद्ध हुए उनकी बड़ी महिमा है। काशी में वरुना, असी, आगे गोमती के संगम से मार्कण्डेय आदि ऋषि सिद्ध हुए। समुद्र के साथ संगम हुआ। यह सबसे बड़ा तीर्थ हो गया क्योंकि सर्वतीर्थमय समुद्र हैं। भक्तगण दर्शन-स्पर्श से सदा पवित्र होते रहते हैं।

२७.—ज्येष्ठ पूर्णिमा को श्रीसरयू जी की उत्पत्ति है। सरजू की उत्पत्ति भगवान के नेत्रों से है, नेत्रजा नाम प्रसिद्ध है। सृष्टि के आरंभ में प्रभु ने ब्रह्मा को देखा तो हृदय में संचित भक्त प्रेम नेत्रों के मार्ग से प्रवाहित हो चला। भगवत् प्रेमाश्रु जल है, अतः इसकी महिमा है। ब्रह्मा ने कमण्डलु में रखा फिर उसे मानसरोवर में स्थापित किया। इक्ष्वाकु की प्रार्थना पर महर्षि वशिष्ठ जी ने तपस्या की और सरयू जी अयोध्या आईं। रामावतार होगा श्रीराम को गोद में धारण करोगी, इस लोभ से आईं तो राम गंगा भी नाम हुआ। वशिष्ठजी लाये तो वशिष्ठी इस नाम से प्रसिद्धि हुई। सगुण ब्रह्म के द्रवित होने पर नेत्रों से प्रवाह चला। इससे उसके समान पवित्र दूसरा जल नहीं हो

सकता है। सरयू नाम, सरयू जल का स्मरण, कीर्तन, स्नान पान सब कुछ दिव्य प्रेम प्रदान करने वाला है। अयोध्या के तीन ओर सरयूजी हैं जैसे वृन्दावन की श्रीयमुना जी।

पावन पर्व पर यह संस्मरण श्रीभक्तजनों को प्रसन्न एवं पवित्र करे। जय गंगे। जय सरयू। जय यमुने।

२८.–माता कुन्ती ने कहा–प्रभु नाटक करने वाले नट को सब देखते हैं पर जो संगीत नृत्य कला को नहीं जानते हैं वे नट के नृत्य के रस को नहीं समझ पाते कि कितना माधुर्य है नृत्य गान में। इसी प्रकार मैं आपको देखती हूँ पर मूर्ख स्त्री होने के कारण आपके तत्व को, स्वरूप को नहीं जान सकी हूँ। आप इन्द्रियों के ज्ञान से नहीं जाने जा सकते। मैं तो केवल आपको नमस्कार करती हूँ। यहाँ कुन्ती ने इस शंका का निवारण किया कि श्रीकृष्ण सबके भीतर–बाहर रहने पर भी क्यों नही दीखते। दृष्टांत दिया नट का, वह वेष–भूषा बदलता है कला दिखाता है पर वास्तव में कौन है लोग नहीं समझ पाते। यद्यपि नट सबके सामने ही है। कुन्ती ने कहा कि मैं भक्ति से हीन हूँ, माया के आवरण से आच्छादित हूँ, अतः आपके मर्म को नहीं जान सकी हूँ। पाण्डव आपके निजी भक्त हैं और आप उनकी रक्षा करते हैं। आप प्रेरक हैं। अश्वत्थामा को प्रेरित करके पाण्डवों के वध के लिए शस्त्र उठवाया। आपने युद्ध में शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा की फिर चक्र लेकर दौड़े। भक्त रक्षा की प्रतिज्ञा करते हैं पर भीष्म पितामह का संहार कराया। द्रोपदी सुभद्रा दो आपकी स्नेह पात्री हैं फिर भी उनके पुत्रों का वध करा दिया। इस लीला को मैंने देखा है पर इनका रहस्य क्या है मैं नहीं समझ सकी हूँ। देहाभिमानी मुझे नहीं देख सकता है ऐसा आपने गीता में कहा है। न जान सकने का कारण यह कि जैसे बादल मेघों से घिरा सूर्य नहीं दीखता है उसी तरह भगवान के चारों ओर ऐसी योगमाया रहती है कि सब लोग उन्हें नहीं समझ पाते हैं। कुन्ती परिकर की है अतः प्रभु के तत्व रहस्य को जानती है अतः दैन्यवश अपने को मूर्ख कहती है। कुन्ती जी का कथन है कि एक नट की माया को लोग नहीं समझ पाते फिर आप तो नटराज हैं, नटों के श्रेष्ठ गुरु हैं। आपकी लीलाओं को भक्तियोग के बिना मैं कैसे जान सकती हूँ। अतः नमस्कार के अतिरिक्त और मेरा क्या कर्तव्य हो सकता है। मानों भगवान कहते हैं कि बुआ जी! मेरी लीला को मेरे स्वरूप को कोई नहीं जान

सकता, यही आपका मनतव्य है क्या? तो फिर इस जगत में मेरे आने की क्या सार्थकता। तब कुन्ती माता ने कहा-नहीं नहीं, ऐसा नहीं, मैंने जो कुछ कहा है अपने संबंध में कहा है आपके संबंध में नहीं, सुनो-हे कृष्ण! आपका स्वरूप और तत्व लीला सब अज्ञेय है। उन्हें अपने आप कोई नहीं जान सकता, तथापि अमलात्मा माया मलिनता से हीन, निर्मल चित्त संतों में जो परमहंस हैं अर्थात् जो आत्माराम हैं उन्हें भक्तियोग प्रदान करने के लिए आप अवतीर्ण हुए हैं। जो उसे प्राप्त करते हैं वे उस आपके तत्व को, लीला को, रहस्यों को जान पाते हैं। मैं स्त्री आपको कैसे जान सकती हूँ। भक्तियोग से आप जाने जा सकते हैं और वह भक्तियोग स्वयं आप ही दे सकते हैं। आपमें ब्रज की लताओं तक को प्रेम प्रदान करने की शक्ति है। परमहंसों के ध्यान योग्य रूप, चिंतन योग्य लीला प्रकट करके उनके मन में भक्तियोग प्रकट करते हैं। अपने रूप चरित्र से आप परमहंसों के स्वस्थ चित्त को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। शास्त्रों की उक्ति से यह भी जाना जाता है कि उसके नाम, रूप, गुण, चरित्रों में ऐसी अद्‌भुत शक्ति है कि निर्मल चित्त परमहंस भी आकर्षित हो जाते हैं। उन चित्ताकर्षक नाम, रूप, गुणादिकों का कीर्तन-श्रवण करने से श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति होती है, यह निर्विवाद सिद्ध है अत: नित्य नियम से भजन-कीर्तन स्वयं करना और अपने समीपवर्ती लोगों से कराना चाहिए।

२९.-श्रीकृष्ण ने श्रीराधा को और श्रीराधा ने श्रीकृष्ण को अपना सर्वस्व अर्पण कर रक्खा है। जिस वस्तु में अपनी प्रियता है वही वस्तु प्रियतम को अर्पण करनी चाहिए। स्त्री, पुत्र, परिवार, प्रिय होता है पर उससे भी बढ़कर प्रिय आत्मा है वही आत्मा इष्ट को अर्पण करना ही श्रेष्ठ भक्ति है। अन्न-धन अर्पण कर दें पर स्वयं को अर्पण न करे तो ईश्वर प्रसन्न नहीं होता है। श्रीकृष्ण को छोड़कर राधा को दूसरी वस्तु प्रिय नहीं है इसी तरह राधा को छोड़कर श्रीकृष्ण को अन्य कुछ प्रिय नहीं है। उनके वर्ण के समान वर्ण है जिसका, ऐसा पीताम्बर श्रीकृष्ण धारण करते हैं। पीताम्बर के रूप में स्वयं राधारानी ही श्रीकृष्ण के अंग में लिपटी रहती हैं। उसी प्रकार भगवान अपने श्यामवर्ण के सदृश नीलाम्बर बनकर श्रीराधा के अंग पर सुशोभित होते हैं। अनेक रूपों से प्रभु राधा की सेवा में रहते हैं। काला कंघा श्रीकृष्ण हैं। काला पत्थर पैर धोने के

लिए जो राधारानी के स्नान गृह में है वे श्रीकृष्ण ही हैं। भगवान के अंग पर जो आभूषण हैं वे उनके भक्त ही हैं। राधारानी के अंग पर आभूषण बनकर श्रीकृष्ण ही उनको अपने स्पर्श से आनन्दित करते हैं, इस प्रकार राधा कृष्ण का जो आपस का प्रेम है वह अनिर्वचनीय है उसका कोई वर्णन नहीं कर सकता है। राधारानी की कृपा से कृष्ण और कृष्ण की कृपा से राधारानी मिलती हैं।

३०.–टीकमगढ़ के पास कुण्डेश्वर नाम का एक शिव–पार्वती मंदिर है। अति गंभीर कुण्ड है, जिसे ऊषा कुंड कहते हैं। नित्य यहीं स्नान और शिव–पार्वती का पूजन ऊषा करती थी ऐसी प्रसिद्धि है। कीर्तन सत्संग का अच्छा योग है। कुछ दूर पर बानपुर है, जिसे बाणासुर की राजधानी कहते हैं।

जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी॥

जिस पर शिवजी कृपा न करें उसे हमारी भक्ति नहीं मिलती है ऐसा श्रीराम जी का कथन है। शंकरजी की पूर्ण कृपा जिस पर होगी उसे विष्णु भक्ति विष्णुत्व की प्राप्ति अवश्य ही हो जायगी। इसमें बाणासुर ही प्रमाण है। बाणासुर पर इतनी कृपा थी कि बड़े–बड़े देवता लोग सामने हाथ जोड़े खड़े रहते थे। बल के अहंकार में शिव से लड़ने की इच्छा करने लगा। एक हजार भुजाएँ थीं, शिव कृपा से पार्वती की सहचरी ऊषा को अनिरुद्ध का दर्शन स्वप्न में हुआ। चित्रलेखा ने लाकर मिला दिया। बाणासुर के कारागार में बंद श्रीअनिरुद्ध जी को छुड़ाने की इच्छा से द्वारका से यदुवंशियो की सेना आ गई। बाणासुर ने शिव से प्रार्थना की, तब सभी गणों समेत शिवजी ने युद्ध किया। शंकरजी ने युद्ध में हारकर बाणासुर को समझाया कि हमसे बड़े श्रीकृष्ण हैं बिना हारे यदि कृष्ण का परत्व समझाते तो बाणासुर की समझ में नहीं आता।

एक हजार भुजाओं में से केवल चार भुजाएँ रहने दीं। विष्णु पार्षदों की चार भुजायें होती हैं। अनिरुद्ध से कन्या का विवाह हुआ तो दामाद होने के नाते उसमें प्रेम हुआ। प्रद्युम्नजी संबंधी और उनके पिता श्रीकृष्ण से भी अति प्रेम हो गया। केवल प्रेम की अपेक्षा रिश्तेदारी होने पर जो प्रेम हुआ वह अति उत्तम हुआ।

३१.–शिव ने बाणासुर को कृष्ण परत्व का बोध करा दिया। शिव पार्षदों में बाणासुर की पूजा होती है। नर्मदेश्वर बाणलिंग है बाणासुर पूजित है। उनमें शिवत्व एवं

विष्णुत्व दोनों है। सीधा खड़ाकर देने पर नर्मदेश्वर शिव होते हैं, लिटा दिया जाय उस समय नर्मदेश्वर विष्णु होते हैं, उनको अर्पित सभी वस्तुएँ खाई और पी जाती हैं। नर्मदेश्वर हरिहरात्मक है। पहले बाणासुर कट्टर शैव थे बाद में शिव कृपा से हरिहर के भक्त हो गये। वस्तुतः शिव वैष्णव प्रधान हैं अतः कृष्ण भक्त शिव में भक्ति करते हैं। भक्त भगवान दोनों आराध्य हैं, यही भक्तमाल का, सद्‌गुरु श्रीभक्तमाली जी का मान्य सिद्धान्त है। यही सिद्धान्त रामचरितमानस और श्रीमद्‌भागवत का है।

'तुम्ह ते अधिक गुरुहि जिय जानी। सकल भायँ सेवहिं सनमानी॥' मानस अयो० १२८/८

श्रीराम जी के उपदेश हैं, मुझसे अधिक गुरुदेव को जानकर सब प्रकार उनकी सेवा एवं उनका सम्मान करना चाहिए।

३२.—दर्शनकर्ता की श्रद्धा के तारतम्य से साधुजन एवं तीर्थ पवित्र करते हैं, किन्तु सिद्ध उपकारी संत श्रद्धा की अपेक्षा न रखकर पवित्र करते है जैसे नारद आदि ने नल-कूबर आदि को। रामायण में लिखा है कि-

जड़ चेतन मय जीव घनेरे। जे चितये प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे॥
ते सब भए परम पद जोगू। भरत दशा मेटा भव रोगू॥

राम ने वन यात्रा में चलते हुए जिसे देखा और जिसने श्रीराम को देखा वे जड़ चैतन्य जीव सभी परम पद के योग्य हो गए परन्तु श्रीभरत जी ने जिसे देखा अथवा भरतजी को जिसने देखा उन सभी जीव जड़-चैतन्यों का भव रोग मिट गया। श्रीराम से तो केवल परमपद प्राप्त करने की योग्यता हुई, भरतजी से भव रोग से मुक्ति मिली अर्थात् उन्हें परमपद मिल ही गया।

३३.—भक्त श्रद्धालु हो तो उसे दर्शन करके कल्याण की प्राप्ति चाहे कुछ विलम्ब से हो परन्तु यदि संत-भक्त किसी को कृपा दृष्टि से देख लें तो उस श्रद्धालु का कल्याण होने में न विलम्ब होता है न संदेह है। जैसे धनुर्दासजी ने संत को नहीं देखा किन्तु संत श्रीरामानुजाचार्य जी ने धनुर्दासजी को देखा। बाह्य क्रिया देखी, अन्तर्भाव देखा और उसका तत्क्षण कल्याण कर दिया। ऐसे अनेक उदाहरण हो सकते है। अतः **'दर्शनादेव साधवः'** श्रद्धापूर्वक कोई साधु-संत को देखे अथवा संत ही किसी को कृपा दृष्टि से देखे तो उसका कल्याण तत्काल हो जाता है।

३४.–भ्रमर गीत में **'मृगयुरिव कपीन्द्रं।'** इस श्लोक में रामजी के दो चरित्रों का स्मरण है-बालि वध और सूर्पणखा विरूपीकरण।

उस समय श्रीजी के मुख के जो वाक्य हैं वे मात्र वियोग व्यथा के प्रलाप नहीं हैं अन्य गीतों के जो भाव हैं वे एक गोपी के नहीं हैं। अनन्त गोपियाँ हैं और गोपीगीत, वेणुगीत, युगलगीत ये सब अनन्त हैं भागवत में उनका दिग्दर्शन मात्र है। इनकी महिमा **'यासां हरिकथोदगीतं पुनाति भुवनत्रयम्।'** गोपियों द्वारा गाया हरि कथोद्‌गीत तीनों लोकों को पवित्र करता है। विशुद्ध माधुर्य प्रेमाभक्ति के आवेश में गाये गीतों में रहस्य है जो सार है, उसे शायद हम नहीं समझ सकते हैं। अन्य गीतों की अपेक्षा भ्रमर गीत की महिमा इसलिए है ब्रज नव तरुणि समूह मुकुट मणि श्रीराधारानी के द्वारा गाया गया है।

३५.–श्रीरामचरित का स्मरण करके प्रभु को उपालम्भ दिया गया है। जैसा कुछ आज मुझसे व्यवहार है यह कोई नई बात नहीं है। पूर्व जन्म के अभ्यास और संस्कारों का प्रभाव अमिट होता है। बहेलिए की तरह छिपकर बालि को मारा, रूप पर आसक्त होकर आई सूर्पनखा को कुरुप कर दिया। सर्वस्व समर्पण करने वाले बलि राजा को बाँध दिया। ये वाक्य चरित्रों के एकांश हैं परन्तु यहाँ एकांश कहकर उस सम्पूर्ण चरित्र का स्मरण होता है, उसके रहस्य की ओर ध्यान जाता है। तब तात्पर्य यह होता है कि आप कपट करते प्रतीत होते हैं, आचरण विपरीत लगता है पर उसमें आपकी महती कृपा छिपी रहती है। ऐसे ही मेरे प्रति किए गए इस व्यवहार से आपका सुस्नेह और परमानुग्रह छिपा है।

शरणागत की रक्षा, मित्र की रक्षा, यह प्रमुख कर्तव्य है अतः आप ने छिपकर मारा। किसी ऋषि का वरदान है कि सन्मुख युद्ध करने वाले का आधा बल बालि में चला जायेगा, इस भक्त वाक्य की रक्षा भी हुई। पुनः बालि में अहंकार था, शरणागत सुग्रीव का वध करना चाहता था। तारा ने समझाया इस पर भी माना नहीं। रावण से मैत्री थी, रावण से भी अधिक बलशाली था, अनुज वधू को अपनाने से भी वध के योग्य था। मारकर धर्म की रक्षा की। राम के दर्शन करके उसमें ज्ञान हुआ तब भगवान ने उस पर इतना अनुग्रह किया कि–**'अचल करौ तन राखहु प्राना।'** पर उसने जीने

की अपेक्षा रामबाण के स्पर्श से राम के सम्मुख प्राण त्यागना श्रेष्ठ माना। सुग्रीव और बालि दोनों पर कृपा हुई। अंगद तारा सभी कृपा के पात्र हुए। व्यवहार में व्याध की तरह मारने में कष्ट का आभास दीखता है पर विचार करने पर मंगलमय कृपामय आपका व्यवहार है।

३६.–सूर्पनखा के भीतर कपट था। पुनः एक राम रूप में निष्ठा नहीं थी, लक्ष्मण रूप में निष्ठा की, आज्ञा नहीं मानी, इसकी तरह जो कपट करेगी वह कुरुपा होगी। पर गोपियों की तरह प्रेम करने वाले तो परम धन्य हैं। गोपियों में कृष्ण के प्रति अनन्य निष्ठा है और अपनी इस निष्ठा में विश्वास के साथ श्रीकृष्ण के सौहार्द में भी पूर्ण विश्वास है। भगवदवतारों में गोपियाँ भेद न मानकर उनका भी गान करती थीं। अतः इस अवस्था में भी उनके मुख से राम चरित्र निकल गया। वर्तमान अनन्यों के लिए शिक्षा भी है कि अवतारों में भेद न मानो। पुनः इष्ट के सभी व्यवहार सह्य हैं।

३७.–वामन भगवान के चरित्र में यही बात है। प्रभु ने कृपा करके सर्वस्व लिया। बलि राजा को तो कुछ क्षणों के लिए बंधन में बाँधा गया पर प्रभु तो राजा बलि के बंधन से सर्वथा बँध गए, द्वार पर हाजिर रहते हैं। उस चरित्र में शिक्षा यही है कि बलि की तरह प्रभु में विश्वास करके उनके द्वारा दिये गए कष्टों में भी कृपा का अनुभव करना चाहिए। हमारा तन-मन सर्वस्व प्रभु ले लें, बंधन में ड़ालें, मारें या रक्षा करें वे ही हमारी गति हैं। काग बलि देने वाले को कौये घेर लेते हैं, परेशान करते हैं, पर वह काग बलि देना बंद नहीं करता है। इसी तरह प्रेमी को अपना जो पथ और दृढ़ विचार है उसका त्याग नही करना चाहिए। श्रीकृष्णः शरणं मम।

३८.–बरसाने से चिकसौली की ओर चलने पर साँकरी खोर है। उसके पूर्व के पर्वत को कृष्णस्वरूप कहते हैं और पश्चिम का राधारूप है, ऐसा यहाँ संतों का अनुभव है। पूर्व पर्वत पर एक मौनी संत रहते हैं। जहाँ कथा हो रही है वहाँ वर्तमान में एक रामानंदी संत श्री रामशरणदास जी रहते हैं। इनका स्थान जनकपुर की ओर था पर राध ारानी ने आकृष्ट करके अपनी शरण में रख लिया, श्रीराधाकृष्ण के अनन्य भक्त हैं। राधारानी के कीर्तनों के कैसिटें भी सायं-प्रातः बजाते हैं। उन्होंने बताया कि गर्मी के दिनों में यहाँ गर्म लपटें बड़े जोर से लगती हैं। पर्वत गर्म हो जाता है वह रात में भी

गर्मी देता है। एक बार इस गर्मी में मैं व्याकुल हो गया और मन में निश्चय कर लिया कि अब यहाँ से कुछ दिनों के लिए अन्यत्र चला जाऊँगा। इस निश्चय के बाद मैं रात में शयन कर रहा था तो ठाकुरजी ने स्वप्न में आकर कहा कि तुम साँकरी खोर को छोड़कर कहीं मत जाओ। गर्मी-सर्दी सहन करना साधु का काम है। मैंने कहा कि मुझसे अब गर्मी सही नहीं जाती है। शरीर में ज्वर सा चढ़ा रहता है। मैं जहाँ भी रहूँगा भजन तो आपका ही करुँगा। अब रुकूँगा नहीं। मैंने जाने का निश्चय कर लिया है। यह सुनकर ठाकुरजी बोले अच्छा तो लिखकर दे दो। मैंने कहा मेरे पास कागज कलम नहीं है। तब ठाकुरजी ने कागज कलम देकर कहा कि लिखो। मैंने लिखा कि अब बाहर चला जाऊँगा यहाँ नहीं रहूँगा। कागज ठाकुरजी को दे दिया। फिर ठाकुरजी ने कहा जो इसमें लिखा है वही करोगे, बदलोगे तो नहीं, मैंने कहा लिख दिया है वही करुँगा। तीन बार मुझसे कहवाकर कागज मुझको दे दिया कि पढ़ो तुमने क्या लिखा है। मैं पढ़ने लगा तो उसमें लिखा था यहीं रहूँगा छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा। मैं आश्चर्यचकित हो गया और समझ गया कि ये छलिया ठाकुर हैं ये रखना चाहें तभी कोई धाम में रह सकता है। न रखना चाहें तो कोई नहीं रह सकता है, मेरी नींद खुल गई। यह स्वप्न घटना मस्तिष्क में व्याप्त हो गई। बार-बार प्रभु कृपा को विचार कर मन विभोर रहा, तब से इस साँकरी खोर को छोड़ने का विचार नहीं करता हूँ। दृढ़ निश्चय के बाद गर्मी का अनुभव कष्टप्रद नहीं रहा।

३९.-कुरुक्षेत्र में श्रीवसुदेव जी जब नन्दबाबा से मिले तो वे अति अधीर होकर जोर से रोने लगे। हाथ पकड़कर प्रेम से गद्‌गद् कंठ वसुदेवजी ने कहा कि स्नेह का बन्धन अति सुदृढ़ परमात्मा ने बनाया है जिसे बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी नहीं तोड़ पाते हैं। हम आपके कृतज्ञ हैं आपने जो मेरे साथ मित्रता का अनुपम व्यवहार किया है हम उसका बदला नहीं चुका सकते। पहले तो हम कैदखाने में बंद थे। अत: कोई उपकार नहीं कर सके और अब धन-संपत्ति के नशे में हम इतने अन्धे हो रहे है कि आप मेरे सामने ही हैं, पर हम आपको देख नहीं पा रहे हैं। आप सदा दूसरों को आनन्दित करते हैं, इससे आपका नंद ऐसा नाम है। जो कल्याण के इच्छुक हैं उन्हें कभी धन न मिले। धन के साथ जिन्हें ज्ञान और भक्ति है जिन्हें धन का मद नहीं है, उन पर

ईश्वर की महती कृपा है। वे सच्चे संत हैं। माया के संसार समुद्र में वे कमल पत्र के समान निर्लिप्त हैं उन्हें धन्यवाद है। धन के मद से अन्धा अपने स्वजनों को भी प्रेम दृष्टि से नहीं देखता है। नंदबाबा का यदुवंशियों ने सत्कार किया। गोप-गोपीगण अपने चित्त को कृष्ण चरणों में छोड़कर अपने घर चले। श्रीकृष्ण भगवान विरह से व्यथित हो गये। श्रीकृष्ण बलराम परमात्मा हैं यह बात पहले भी वसुदेव के अनुभव में आयी थी, परन्तु कुरुक्षेत्र में ऋषियों के मुख से सुनकर उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया था, अत: विनती करने लगे। प्रभु श्रीकृष्ण स्वजन मनमोहिनी माया के द्वारा मोहित करके भक्तों के साथ क्रीड़ा करके उन्हें अति आनन्दित करते हैं और भक्त वात्सल्य रस का स्वयं भी अनुभव करते हैं। जय जय श्रीराधे। जय जय श्रीकृष्ण।

४०.–वैशाख शुक्ल चतुर्दशी को स्तम्भ से प्रकट होकर प्रभु ने भक्त प्रहलाद की रक्षा की। भक्त परित्राण केवल प्रहलाद का नहीं, तीनों लोकों के साधु, गो, ब्राह्मण, यज्ञ तथा इनके समर्थकों की रक्षा की। दुष्ट दमन-एक हिरण्यकशिपु के दमन के साथ उनके सभी अनुयायियों का दमन हुआ अत: धर्म की स्थापना भी हुई। प्रभु का स्वरूप ब्रह्मादि देव तथा लक्ष्मीजी को भी भय देने वाला था। मात्र श्रीप्रहलाद जी को भय नहीं था। श्रीप्रहलाद जी स्मरण भक्ति के आचार्य हैं।

४१.–सुवेल पर्वत पर श्रीराम की झांकी और लंका के महल में रावण की झांकी दैवी और आसुरी सम्पत्ति का वर्णन है। राजनैतिक भाव है-सुग्रीव (मित्र कपीश) को सिर सौंपा है, अपना युद्ध का भार आप पर है। कान से विभीषण लगे हैं अर्थात् शत्रुपक्ष के समाचार आपके द्वारा सुनूँगा अन्य के द्वारा नहीं। चरण कमलों को अंगद, हनुमान को दिया युद्ध में गमन क्रिया सौंपी। बाएँ-दाएँ धनुष बाण हैं, शत्रु पर आक्रमणार्थ उन्हें ठीक कर रहे हैं, पंखों को सुधार कर अमोघता दे रहे हैं। कुछ दूर पीछे श्रीलक्ष्मण जी पहरे पर सावधान हैं शत्रुपक्ष से और स्वपक्ष से भी। सुग्रीव-विभीषण राजा हैं, मित्र हैं, विशेष आदर योग्य सिर की ओर हैं। सुग्रीव राज्य प्राप्त हैं अत: उनका उच्च स्थान है विभीषण राज्य चाहते थे अत: उनके बाद कर्ण (कान) के निकट हैं। अंगद-हनुमान सर्वदा निष्काम हैं उन्हें चरणों में स्थान है। भक्ति पक्ष में बड़े भगवान ने बड़े भक्त सुग्रीव को सिर सौंप कर अपने से बड़ा बताया।

श्रीविभीषण समान सिद्ध हैं, पर दृष्टि प्रभु की, छोटे चरण सेवकों की ओर है। विभीषण-सुग्रीव श्रीमुख के दर्शन का, नेत्र से नेत्र मिलाने का सुख नहीं ले रहे हैं। यह सुख अंगद-हनुमान को लघु बनने से मिला। ये दोनों सुग्रीव के अर्थात् भक्तों के भक्त हैं अतः इन्हें बड़भागी पद मिला। यहाँ वे (सुग्रीव-विभीषण) इस विशेषण से वंचित हैं अन्यत्र वे भी बड़भागी है। **'बड़भागी अंगद हनुमाना। चरन कमल चापत विधि नाना॥'** भक्ति के भाव में शरीर से, मन से लगे हैं। प्रभु ने अपना भार मुझे सौंप दिया है अतः विजय की युक्तियाँ सुग्रीव सोंच रहे हैं। कान में लगे विभीषण रावण के मनतव्य, शक्ति, सैन्य, स्वभाव का वर्णन करते हैं। पर अंगद-हनुमान अनन्य हैं, प्रेम में पगे हैं प्रभु सेवा में ही ध्यान है, नाना प्रकार से श्री चरणों की सेवा करते हैं।

४२.-सुवेल शैल सबसे ऊँचा है उसमें भी ऊँचे शिखर पर प्रभु मुख्य-मुख्य सेनापतियों के साथ विराजमान हैं, अन्य सैनिक पहाड़ के अन्य भागों में विराजे हैं। ऊँचा, सुन्दर, सम, शुभ्र, चार विशेषण शिखर के हैं। स्थान के माहात्म्य से भी प्रेम उमड़ता है। शैया में पहले पत्र हैं फिर पुष्प हैं। लक्ष्मण शेषजी स्वयं प्रभु की शैया हैं उन्होंने ही शैया बिछाया है। एकरूप से शैया हैं दूसरे रूप से पहरा भी दे रहे हैं। पत्र पुष्पों के ऊपर रुचिर मृगछाला है। **'सीता परम रुचिर मृग देखा।'**

सीताजी ने कहा था-

'सत्यसंध प्रभु बधि करि ऐही। आनहु चर्म कहति वैदेही॥' मानस अर० २६/५

सत्य प्रतिज्ञा वाले प्रभु उस मृग की छाल लेकर ही आए। तब से लक्ष्मण के हाथ में वह चर्म था आज तक इसे बिछाया नहीं गया था क्योंकि बिछाने से उसके सम्पर्क से सीताजी की स्मृति आती और विशेष व्याकुलता की संभावना थी। अब शत्रु पुरी में आ गए हैं, सीता का निश्चित पता है अतः उसे बिछाकर सीता को शीघ्र प्राप्त करने, शत्रु विनाश के लिए तत्पर हो जायँ इसलिए इसे बिछाया गया। प्रभु के मन में शत्रु को परास्त करने का संकल्प दृढ़ है। बाण को तैयार कर रहे हैं। सुग्रीव को, विभीषण को, हनुमान- अंगद को अपनी-अपनी सेवा का भार सौंप रहें हैं। इस समय प्रभु कृपा रूप हैं और सुग्रीव और विभीषण को युद्ध संबंधी सेवाएं देकर उनपर कृपा कर रहे हैं। चरण सेवा देकर अपने चरणों का अधिकारी अंगद-हनुमान को बताया। लघु बनकर चरण सेवा

की कामना करना चाहिए यह उपदेश है। इन सभी भक्तों पर कृपा है तथा रावण पर भी कृपा करने का उपक्रम कर रहे हैं अतः ऐसे ध्यान में रहने वाले को धन्य कृतार्थ कहा। इस समय सेवा में उपस्थित सभी भक्त धन्य हैं, कृपा करके प्रभु धन्य हैं। इनका ध्यान करने वाले भी धन्य होंगे। सभी प्रकार के शत्रुओं पर विजयी होंगे।

४३.—श्रीकृष्ण में कृपा है वे कृपा के सागर हैं श्रीजी में कृपा नहीं है उनमें प्रेम, जीव के प्रति वात्सल्य है। इसके बाद श्रीराधा के परत्व प्रसंग में एक श्लोक–**'कृपैकसिंधु'** राधा का विशेषण आ गया है। तात्पर्य यह है कि ठाकुरजी से जीव को कृपा की भीख माँगनी पड़ती है तब कहीं उनकी कृपा होती है पर श्रीजी में मातृत्व है अतः जीव की हीन-दीन दशा को देखकर वे स्वयं द्रवित हो जाती हैं।

द्रोपदी का चीर दुःशासन खीच रहा था उस समय उसके मन में पूर्ण विश्वास था कि इस सभा में द्रोण, भीष्म, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, धृतराष्ट्र तथा मेरे पाँच पति बैठे हैं ये मेरी रक्षा करेंगे। उसने पुकार कर कहा–आचार्य द्रोण तुम गुरु हो ये तुम्हारे शिष्य अन्याय कर रहे हैं तुम अपने और मेरे धर्म की रक्षा करो। हे भीष्म पितामह तुम ज्ञान-वयोवृद्ध हो, कुलवधू को नग्न कैसे देखोगे। अरे! अश्वत्थामा! कृपाचार्य! तुम पुरोहित हो क्या इसी में सबका हित है? धृतराष्ट्र! तुम श्वसुर-पिता के समान हो। आँखों से अन्धे हो लेकिन बुद्धि से विचार करो कि तुम्हारे रहते हुए तुम्हारे पुत्र क्या कर रहें हैं? हे धर्मराज! धर्म का रहस्य जानने वाले तुम मौन क्यों हो? तुम्हारा खून क्यों नहीं खौलता? अर्जुन! तुम्हारे क्षत्री बल को धिक्कार है, भीमसेन तुम्हारी गदा कहाँ गई? अरे नकुल! सहदेव! तुम जीते ही मृतक क्यों हो गये? आदि आदि कहकर द्रोपदी ने सबको पुकारा।

भगवान द्वारकापुरी में रुक्मणी के साथ पाशा खेल रहे थे। बार बार उठते फिर बैठते। घबड़ाये प्रभु से श्रीजी ने पूछा कि क्यों हारने से बेचैन हो? बोले नहीं, द्रोपदी पर संकट है दुष्ट उसे नग्न कर रहे हैं। अरे! तो फिर तुम बचाते क्यों नहीं? वह हमें पुकार नहीं रही है। यह सुनकर श्रीजी ने अपने हाथ का नीलकमल फेंका, तब उसने द्रोपदी को प्रेरित किया। श्रीजी की कृपा से श्रीकृष्ण को पुकारने की सुधि आई। तब हे नाथ द्वारकावासिन्! सुनते ही श्रीकृष्ण ने वस्त्रावतार लिया।

४४.–गजेन्द्र जीव है। तीन शिखर तीन गुण हैं परिवार अनेक वासनाएँ है। ताप से तप्त प्राणी की तरह सरोवर में प्रवेश किया, पर प्यास बुझाकर उसे क्रीड़ा करने की सूझी, परिवारी स्त्री–बालकों के साथ खेलने लगा। उसने सरोवर में रहने वाले जल जन्तुओं को भारी व्यथा पहुँचायी। बड़े लोगों का खेल छोटों का मरण। प्राणी काल को भूला रहता है और संसार में उन्मत्त होकर रमता है। काल ग्राह ने पैर पकड़ा तो उसने अपने परिवारीजनों से सहायता माँगी। पर संसार में लम्बी बीमारी अथवा दीर्घकालीन संकट में लोग साथ छोड़ देते है। एक एक करके सभी साथी चले गये। इसे अब परिवारियों से निराशा हुई तो अपने शारीरिक बल का भरोसा हुआ। ग्राह से लड़ने लगा। जीव को जब तक संसारियों का, अपने बल का, बुद्धि का भरोसा रहता है तब तक वह भगवान को नहीं पुकारता। दीन की पुकार को सिवा नारायण के और कोई सुनने वाला भी नहीं। कोमल शय्या पर सोये हुए के चरण रूपवती स्त्री दबा रही हो तो उसके कान में गरीब की पुकार नहीं पड़ती। परन्तु शेष की कोमल शय्या लक्ष्मी के कोमल हस्तकमलों के सुख को त्यागकर भगवान गजेन्द्र की पुकार पर दौड़े। भागवत में **'उत्क्षिप्य साम्बुज करं'** लिखा है। वहाँ उस अगाध सरोवर में कोई कमल नहीं था वह तो श्रीजी के हस्त का कमल था उसे श्रीजी ने फेंका तो गजेन्द्र ने उसे सूँड से उठाकर भगवान को पुकारा। फिर तो गरुड़ का वेग जो मन से हजारों गुना अधिक है वह भी भगवान को मंद लगा। आकर भगवान ने प्रथम भक्तचरणाश्रयी ग्राह का, फिर गजेन्द्र का उद्धार किया। उस जलाशय, वन, पर्वत सभी को पवित्र बताया और इस प्रसंग का स्मरण करने वाला तथा स्तुति का पाठ करने वाला सब संकटों से छूट जायेगा ऐसा वरदान भगवान ने दिया। यहाँ भी गजेन्द्र का मोक्ष श्रीजी की कृपा से हुआ। माता पुत्र को रज में, मल–मूत्र में सने को भी प्यार करती है। उसी प्रकार पापी प्राणी भी श्रीजी के प्यार के, वात्सल्य के पात्र हैं। श्रीजी की शरण ग्रहण करो तो कृष्ण को ढूढ़ने की जरुरत नहीं। श्रीकृष्ण ही तुम्हें ढूढ़ेंगे। श्रीजी की कृपा के बिना कभी किसी ने कृष्ण को नहीं पाया है, न पा सकता है।

४५.–वार्ताग्रंथ में लिखा है कि कुंभनदासजी के पुत्र कृष्णदास को सिंह ने मार डाला। वह उस समय श्रीनाथ जी की गाएँ चरा रहा था। इस समाचार को सुनकर

श्रीकुंभनदास जी अत्यंत व्यथित हुए। रोने लगे उन्हें अधीर देखकर दूसरे वैष्णवों ने यही सोचा समझा कि वस्तुतः पुत्र वियोग सभी के लिए अति असह्य है। देखो कुंभनदासजी सरीखे अनन्य वैष्णव को भी कष्टदायक हुआ तो संसारी लोगों की क्या चर्चा। धीरे धीरे यह बात गोस्वामी श्री विठ्ठलनाथ जी के पास पहुँची, तब मर्म को जानकर उन्होंने लोगों को समझाया कि कुंभनदासजी के दुःख का कारण पुत्र वियोग नहीं है। सभी के सामने कुंभनदासजी को बुलाकर गोसाईंजी ने पूछा कि क्या तुम्हें पुत्र वियोग का दुःख है? तो श्रीकुंभनदास जी ने कहा–भगवन्। वह तो श्रीनाथ जी की सेवा गो रक्षा करते हुए गया, इससे दुःख मुझे नाम मात्र का भी नहीं है। हम सभी मरणशील है, दुःख इस बात का है कि अशौच लगेगा मंदिर में श्रीनाथ जी की सेवा–दर्शन से वंचित होना पड़ेगा। तेरह दिन ये कैसे बीतेगें। सुनकर समाधान हुआ और गोसाईंजी ने कहा कि आप जैसे विराग रूप भक्त को अशौच नहीं लग सकता है आप पूर्ववत कीर्तन सेवा एवं दर्शन करें।

४६.–नदिया में श्रीवास पंडित के घर पर चैतन्य महाप्रभु का कीर्तन हो रहा था, बहुत से भक्त उसमें मग्न थे सहसा श्रीवास के पुत्र का स्वर्गवास हो गया। स्त्रियाँ रोना चाहती थीं। उनसे श्रीवास ने कहा–यदि किसी ने रुदन किया तो अभी मैं कूप या गंगा में गिरकर आत्महत्या कर लूँगा। तुम्हारे रुदन से प्रभु के कीर्तन में बाधा न हो। इधर कीर्तन करते करते स्वाभाविक रूप से वाद्य बंद हो गए, कीर्तन बंद हो गया। कुछ आशंका की जिज्ञासा करने पर ज्ञात हुआ कि पुत्र मर गया। उसे गोद में लेकर प्रभु ने कीर्तन व नृत्य किया, पुनः उसकी आत्मा का आवाहन करके उससे उपदेश दिलाया। उसने कहा कि आपकी कृपा से मैं भगवद्धाम में, भगवद् सेवा में पहुँच गया हूँ। उस सुख के सामने इस संसार के सुख तुच्छ हैं। सम्बन्ध तो मिथ्या हैं ही। इससे सबको संतोष एवं सुख हुआ।

४७.–भजन में भक्ति के आचरण में जब दम्भ होता है, कामनाएँ रहती हैं तब कलियुग बाधा करता है। जहाँ सच्चाई है वहाँ कलियुग के विघ्न से भक्त के सुयश की वृद्धि होती है। अतः वह विघ्न नहीं के बराबर है। कलियुग की अपनी विशेषता है। उस गजेन्द्र की अपेक्षा गजेन्द्र श्रीगोपालदास जी विशेष प्रशंसनीय हुए। गुरुदेव

रसिक मुरारी की कृपा से इन्हें ऐसी वैष्णवता प्राप्त कि इन्हें चरणामृत में, संतों के उच्छिष्ट प्रसाद में, संतों की सेवा में इनकी बड़ी निष्ठा हुई। उस राजा ने इनकी महिमा सुनकर अपने यहाँ बुला लिया तो वहाँ संत का उच्छिष्ट प्रभु के चरणामृत के बिना गजेन्द्र गोपालदासजी ने कुछ खाया पिया ही नहीं। अपना शरीर ही त्याग दिया। संत लोग जब इनसे कहते कि गोपालदास जाड़ा पड़ रहा है कम्बल लाओ। तब ये बाजार जाकर कम्बल की गाँठ ही उठा लाते। सन्तों की सेवा के लिए अन्न आदि का संग्रह भी अनायास कर लाते। इस प्रकार इनकी सेवा देखकर संतों ने इन्हें महान्त बना दिया। गजगोपालदास की जमात घूमती। साधुओं को अपनी पीठ पर चढ़ाकर इन्हें बड़ी प्रसन्नता होती। कुछ व्यापारियों ने गुरुदेव से शिकायत की कि हमारा सामान उठा ले जाते हैं। ये तो अपने पशुत्व से लाभ उठाकर संत सेवा करते थे। गुरुदेव ने समझाया कि इस प्रकार किसी का समान उसकी श्रद्धा के बिना लेना ठीक नहीं। तब तो आप दुकानदार व्यापारी के द्वार पर खड़े हो जाते। बिना माँगे ही रिद्धि-सिद्धि की राशि लग जाती।

४८.—नाभाजी ने लिखा है कि-**'कलियुग विशेष परिचय प्रकट।'** कलियुग के भक्तों पर भगवान की असीम कृपा रही। अब भी रहती है।

'और युगन ते कमल नयन कलियुग बहुत कृपा करी।'

यह श्रीनाभा जी का वाक्य है। इससे तुलसीदासजी ने लिखा-

'कलियुग सम युग आन नहिं, जो नर कर विश्वास॥' मानस उत्तर १३०

४९.—कबीरजी कपड़ा बेचने मण्डी में गए। एक थान कई दिन बाद करघे से उतरा था। एक दुर्बल, उघारा शरीर ग्राहक (प्रभु) आए कपड़े का भाव पूछकर लेने की इच्छा करने लगे। कबीरजी ने भाव बताया। भाव के बिना बाजार की वस्तु नहीं मिलती है तब प्रेम और परमात्मा भाव के बिना कैसे मिल जायगा? ग्राहक ने कहा कि मेरे पास एक पैसा नहीं है। जाड़े के दिन हैं मेरा शरीर नंगा है। श्रीकबीर जी बीस गज के थान में से आधा फाड़ कर देने लगे, श्रीकबीर जी ने कहा-आधा दस गज है लेकर कृपा कीजिए, उसने कहा कि आधे से मेरा काम नहीं होगा। पूर्ण का आदान प्रदान ही उत्तम है। आधी साधना, लेना देना ठीक नहीं है। कबीरजी ने पूरा थान बीस गज का दे दिया। उस थान को बेचकर कच्चा सूत खरीदते थे। लाभ के पैसों से आटा दाल

चावल खरीद कर घर को लाते, तो घर में भोजन बनता। आज पूरे का दान कर देने से घर में लाने के लिए कुछ नहीं रह गया। घर के लोग भूखे थे। खाली जाने में संकोच हुआ अतः बाजार में ही छिपे रहे। मन चिन्तन श्रीराम जी का करते थे अतः श्रीराम जी को चिन्ता हुई। कबीरजी की दृष्टि में सभी प्रभु के रूप हैं। मैं दाता नही हूँ। प्रभु ही अपनी वस्तु को ले गये अतः प्रसन्नता हुई। तीन दिन बीतने पर प्रभु ने देखा कि कबीरजी मेरा चिन्तन-स्मरण कर रहे हैं और घर के लोग कबीर का चिन्तन कर रहे हैं। भक्त कबीर के चिन्तन करने वालों पर दया करके सैकड़ों बैलों, घोड़ों पर आटा, दाल, चावल, चीनी, घी, बादाम, छुहारा, चाँदी के रुपये, सोने की मोहरें लेकर भगवान सेठ का रूप धारण करके आए और द्वार पर माल उतारने लगे। माता ने कहा-अरे! इतना समान कहाँ से लाए हो किसका है? सेठ ने कहा श्रीकबीरदास का है। मैया ने कहा कि किसी दूसरे कबीर का होगा। मेरा पुत्र किसी से कुछ लेता नहीं है। राजा इतना सामान देखकर पकड़ लेगा। यहाँ मेरे घर पर यह समान मत उतारो। भगवान ने कहा दूसरा कबीर नहीं। स्वामी रामानन्द के शिष्य कबीर का माल है। उसका कपड़ा बहुत कीमत पर बिका है। उसीका यह माल है। भगवान माल उतार कर चले गए, तब माताजी ने दो चार लोगों को भेजकर कबीर को बुलवाया। कबीर ने पूछा तो माता ने बताया। कबीर ने माता को प्रणाम किया और कहा कि तू धन्य है तुझे रामजी का दर्शन हो गया, प्रभु की सम्पत्ति मानकर उसे गरीबों को, साधु-संतों को बुलाकर बाँट दिया। केवल कच्चा सूत खरीदने भर को रखा।

काशी के पंडे-विद्वानों ने आकार कबीर से कहा-क्यों रे जुलाहे! तूने हमको धन, सामान नहीं दिया। शूद्रों को, कंगालों को पाँच पाँच सेर आटा दाल चावल एक एक सेर घी और पाँच पाँच मोहरें बाँटी। हम लोग दान के अधिकारी है लाओ, हमको भी दो, नहीं तो इस काशी मे हम तुमको रहने नहीं देंगे। कबीर ने कहा-आप ब्राह्मण मुझ मुसलमान का अन्न-धन नहीं लेंगे, यह जानकर मैंने आपको नहीं बुलाया। अब तो मेरे पास कुछ नहीं है। मेरे घर में घुसकर देख लो। पंडों ने कहा तुम मुसलमान नहीं श्रीरामानन्द के चेला साधु हो, कहीं से लाओ, हमको दो, तभी हम शांत होंगे। पंडा धरना धर कर बैठ गए। कबीर ने बहाना बनाया कि जाता हूँ लेने, मुझे मिलेगा तो मैं

आपको दूँगा। अपना पिण्ड छुड़ाकर कबीर चले गये। पंडें कबीर की आशा किये भूखे प्यासे बैठे हैं यह देखकर पुनः भगवान आए और अक्षय अन्न-धन लाये। कबीर का रूप धारण करके बाँटने लगे। ब्राह्मणों के चरणों में सिर रखकर सभी को प्रणाम करने लगे। भगवान कबीर को अशीर्वाद दिलाने लगे। कबीर की जय हो, रामानन्द स्वामी की जय हो। कबीर की भक्ति बढ़ें। इस प्रकार भगवान ने लीला की और कबीर को बुलाकर उनको दर्शन देकर प्रभु अन्तर्धान हो गए। तब से कबीर के घर में अन्नपूर्णा ने निवास कर लिया। ताना-बाना कपड़े की जरुरत नहीं रही। निरंतर संतों का संग और कीर्तन करके समय बिताने लगे। कबीर कपड़ा बुनते थे। कलियुग में सच्चे भक्त कबीर हुए। पाँच तत्वों से उनका जन्म नहीं हुआ था। उनके शरीर को काल ने नहीं खाया। **'चदरिया भ्कीनी भ्कीनी बीनी।'** शरीर ही चादर है पेट में परमात्मा ने नौ महीने में बुनकर तैयार की है। सनकादि प्रहलाद ने यत्नपूर्वक ओढ़ी। उसी तरह मुभ्क कबीर ने यत्नपूर्वक शरीर को निष्कलंक रखा, गंदा नहीं किया। पाप कर्मो से चादर शरीर मैली होती है। ईश्वर की दी हुई वस्तु का निरादर नहीं करना चाहिए।

५०.—एक रसरंग नामक कवि हुए वे कलम कागज नहीं रखते थे, चलते फिरते कविताएं पढ़ते थे लिखने वाले लिखते थे। निष्किंचन फक्कड़ संत थे। अर्थ की चिन्ता न करके गरीबी से गुजर करते थे। एक सेठ के पास गए उसने बुलाया था। कविताएं सुनकर बोला-बैठो अभी आता हूँ। देर तक उसके न आने पर एक कागज में नीचे लिखा वाक्य लिखकर चले गए-

'कहावै राम के काम करै रामके। धत्तेरे पेट की धत्तेरे सेठ की॥'

बाँके बिहारी के मंदिर वृन्दावन में कविता पढ़ते-पढ़ते मरकर वैकुण्ठ गए।

५१.—नारायण द्वारकाधीश विप्र कुमारों को न जीवित कर सके, न परलोक से ला सके। गाली सुनते रहे, अर्जुन ने प्रतिज्ञा की पर नर-अर्जुन भी असफल रहे। जब नर-नारायण अर्थात् भक्त और भगवान ने संयुक्त प्रयास किया तब सफलता मिली। लीला काल में ऐसा दीखता है, पृथ्वी का भार उतारने में जो महाभारत का युद्ध हुआ उसमें भी दोनों कार्यरत रहे। मरणकाल में भक्तवर भीष्म पितामह ने अर्जुन से तकिया लिया दुर्योधन आदि से नहीं। तकिया का अर्थ है सहारा, आश्रय, भक्त अर्जुन से आश्रय

प्राप्त किया। प्यास लगी तो दुर्योधनादि शीतल जल घट लेकर दौड़े। अस्वीकृत कर अर्जुन से कहा कि जल दो। तब बाण मारकर पाताल गंगा का जल अर्जुन ने पिलाया। अपनी प्यास-आश भक्त के द्वारा बुझाना चाहिए और भक्त ही आश-प्यास को बुझाने में समर्थ है। यह सिद्ध हुआ। पुनः जल का अर्थ है जीवन। भौतिक शरीर को त्यागकर अब दिव्य जीवन की याचना भक्त नर-अर्जुन से की गई जिसकी पूर्ति हुई, इस प्रकार मरणकाल में भक्ताश्रय लिया गया। समक्ष नारायण श्रीकृष्ण उपस्थित थे उनके श्रीचरणों में विनयवाणी, मन से ध्यान, नेत्र से दर्शन कर भगवान की उपासना की गई। द्वादश महाभागवतों में गण्य श्रीभीष्म पितामह ने भक्त और भगवान दोनों की आराधना की। दोनों के गुण गाकर **'भजिबे को दोई सुघर।'** इस वाक्य को सत्य कर दिया। मैंने दिग्दर्शन किया। आप सभी विचार कर देखेंगे तो शायद उक्त वाक्य ठीक ही लगेगें।

५२.—एक ब्राह्मण बालक को अपने विवाह की चिंता नहीं थी, वृद्ध-ब्राह्मण की प्रतिज्ञा भ्रष्ट होने से मिथ्या भाषण का पाप लगेगा। उससे सब पुण्य नष्ट हो जायगा। श्रीधाम में, तीर्थ में की गई प्रतिज्ञा वह भी गोपालजी को साक्षी देकर की गई है, इससे तीर्थ यात्रा का सब पुण्य नष्ट होगा। मिथ्या बड़ा भारी पाप है। इससे वृद्ध ब्राह्मण को बचाने के लिए ठाकुरजी को लिवा ले गया। जिसके साथ सात पग चले उसे मित्र समझना चाहिए। इसके साथ तो कई धामों की लम्बी यात्रा हुई है। साथ साथ धाम का दर्शन हुआ है अब इसे पाप से बचाने के लिए भगवान को ले गया। भक्त कहता था आप आगे चलो, गोपालजी कहते थे कि तुम आगे चलो, बड़ा विवाद हुआ। मैं अनुचर हूँ अतः पीछे चलूँगा। गोपालजी कहते थे कि मैंने उद्धव से कहा है कि निरपेक्ष, निर्वैर, समदर्शी के पीछे-पीछे मैं चलता हूँ उस अपने वाक्य को प्रमाणित करना है अतः मैं पीछे चलूँगा, ठुमुक ठुमुक कर नूपुर बजाकर चलूँगा उसे सुनकर समझना कि गोपालजी आ रहे हैं। भक्त निरंतर नूपुर की ध्वनि सुनने में परमानन्द का लाभ ले रहा था, समाधि में योगी जिस नाद को सुनते हैं उससे अधिक सुखदायक है, नूपुर और वंशी का नाद। भगवान के एक भक्त ने समग्र गाँव को, देश को भगवान का दर्शन करा दिया। लोगों ने स्पष्ट प्रभु वाणी सुनी। पंचलोग, ग्रामवासी कृतार्थ हो गये। आज भी भगवान उस इतिहास को स्मरण करा रहे हैं वहाँ रहकर।

५३.–श्रीरामदास जी समर्थ के पास कोई विद्वान् शास्त्रार्थ करने के लिए आया। आपने समझाया कि व्यर्थ के विवाद में समय को नष्ट न करके प्रभु का गुणगान करो। वह नहीं माना। इस बीच एक लकड़हारा आ गया। स्वामीजी ने लकड़ी के भार को सिर से अलग रखवाकर उससे परिचय पूछा तो उसने कहा कि मैं भील जाति का हूँ कुछ पढ़ा लिखा नहीं हूँ। समर्थ ने भूमि में एक रेखा खींच कर कहा कि इस पर खड़े हो जाओ, खड़े होने पर उसने कहा कि मैं वेद वेदांग का पारदर्शी हूँ और किसी विषय पर प्रश्न उत्तर कर सकता हूँ। समर्थ ने कहा पंडितजी से शास्त्रार्थ करो। उसने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। उसकी भाषा सुनकर पंडितजी मौन हो गये, पुनः दूसरी रेखा पर खड़े करके पूछा गया तो उसने कहा कि मैं भगवान राम का दास हूँ तत्व दृष्टि से मैं ब्रह्म हूँ। पंडित शास्त्रार्थ त्यागकर शिष्य बन गये। लकड़हारा रेखा से हटने पर लकड़हारा ही था। इसी प्रकार समर्थ गुरुदेव की कृपा से हम लोग बोलने में समर्थ हैं।

५४.–चराचर राधाकृष्ण की सम्पत्ति है और राधाकृष्ण चराचर की सम्पत्ति नहीं हैं। जीव मात्र राधाकृष्ण की सम्पत्ति भोग्य है, पर जीवों के भोग्य राधाकृष्ण नहीं हैं। भक्तमात्र राधाकृष्ण की सम्पत्ति हैं भोग्य हैं पर भक्त के द्वारा भोग्य सम्पत्ति राधाकृष्ण नहीं हैं। श्रीराधा की सम्पत्ति भोग्य श्रीकृष्ण हैं श्रीकृष्ण की सम्पत्ति भोग्य श्रीराधा हैं। युगल परस्पर एक दूसरे की सम्पत्ति हैं। अनन्य भाव से श्रीशरणागत श्रीकृष्ण पदकमल का प्रेम पाते हैं। इस पर कृष्णाश्रित जब कृष्ण की कृपा से राधा पद प्रेम करते हैं यह गोपी भाव है। कुब्जा ने कृष्ण को अपनी सम्पत्ति, अपना भोग्य बनाना चाहा पर नहीं बना सकी अतः उसे शुकदेवजी ने दुर्भगा कहा। द्वारका गमनकाल में कुब्जा द्वारका नहीं गई। मथुरा लुटी, उजड़ी तब कुब्जा ने वृन्दावन आकर श्रीराधा की शरण ग्रहण की। जब तत्व का बोध हुआ तो उसे भी गोपी भाव मिला। सकामी श्रीकृष्ण भक्त अन्त में निष्काम भाव को प्राप्त होते हैं यह वैष्णवों की उपासना पद्धति का दिव्य प्रभाव है।

५५.–परम ब्रह्म परमात्मा श्रीरामचन्द्र जी ने केवल राक्षसों का वध करने के लिए अवतार नहीं लिया। उन्होंने मनुष्यों को शिक्षा देने के लिए अवतार लिया। श्रीराम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, श्रीहनुमान जी एवं श्रीजगदम्बा जानकीजी के चरित्रों से प्रत्येक मनुष्यों को, स्त्रियों को शिक्षा लेनी चाहिए। केवल वाणी से प्रवचन करके उपदेश देने से उतना उत्तम प्रभाव नहीं पड़ता है जितना प्रभाव आचरण से पड़ता है। इसलिए श्रीराम

ने वशिष्ठजी को एवं विश्वामित्रजी को गुरु मानकर वेद, वेदान्त, धर्मशास्त्र एवं अस्त्र शस्त्रों के प्रयोग की शिक्षाएँ प्राप्त की। उनकी सेवा करके आशीर्वाद प्राप्त किया। पिता माता की आज्ञा से उस राज्य लक्ष्मी को त्याग किया जिस को प्राप्त करने की इच्छा देवता लोग भी करते थे। श्रीचरण इतने कोमल थे कि उनको दबाते समय श्रीजानकी जी को संकोच होता था कि मेरे हाथ कठोर हैं श्रीराम जी को कष्ट होता होगा। बिना जूता, बिना पादुका नंगे पैरों से श्रीराम जी ने वन गमन किया। शरीर पर जाड़ा, गर्मी, बरसात को सहन करके तपस्या की। अपने सेवकों, भक्तों के ऊपर इतना अनुराग करते थे कि उनके दोषों की ओर ध्यान नहीं देते थे। दोषों को देखकर अनदेखा कर देते थे। एक भी उपकार से, छोटे से उपकार से प्रसन्न हो जाते थे। कोई अनेक अपकार करे तो अपनपौ के कारण स्मरण नहीं करते थे। शबरी, गीध आदि के प्रति ऐसा प्रेम किया कि वह अवर्णनीय है। सुग्रीव-विभीषण आदि को शरण में रखकर उनकी रक्षा की। इससे सभी जीवों को शरण में जाने का रास्ता खुल गया। युद्ध काल में रावण का रथ टूट गया, धनुष-कवच आदि छिन्न-भिन्न हो गये तो श्रीराम ने दया करके युद्ध बंद कर दिया और कहा कि घर जाकर विश्राम करो। स्वस्थ होकर कल फिर युद्ध करना। श्रीजानकी जी का अपहरण करने पर भी क्षमा कर रहे थे पर जब भक्त विभीषण को लात मारी तब इस भक्तापराध से प्रभु ने रुष्ट होकर वध किया और उसका कल्याण किया।

५६.—अयोध्या में जाकर राजगद्दी पर बैठे तब आपके मन में दुःख हुआ कि मैंने पुलस्त्य ऋषि के वंश में उत्पन्न ब्राह्मण रावण का वध किया। वशिष्ठ गुरु से आज्ञा लेकर हरिद्वार में जाकर तप किया। वह तीर्थ ब्रह्मपुरी है। लक्ष्मणजी की तपस्थली का नाम शेषधारा है। मायाकुण्ड के निकट भरतजी ने, मुनि की रेती में शत्रुघ्न ने, हनुमानजी ने हनुमान शिला पर तप किया। प्रत्येक को तप करना चाहिए।

५७.—भगवान श्रीराम ने धरा धाम को त्यागकर, परम धाम जाते समय श्रीहनुमान जी को बुलाकर कहा कि तुम्हें सब कुछ मालूम है। अवतार का कार्य पूर्ण हो गया है। देवगण परमधाम चलने के लिए मुझ से प्रार्थना कर रहें हैं। सुग्रीव से मित्रता, सीता की खोज, लक्ष्मण को प्राणदान, मेघनाद के बंधन से छुटाना आदि मुख्य हैं मैं इन उपकारों का बदला नहीं चुका सकता हूँ। एक एक उपकार के बदले मैं अपने प्राण

दूँ तो भी ऋणी रहूँगा। मैं बदला नहीं देना चाहता हूँ। मैं संकट में था तब तुमने उपकार किए। तुम संकट में पड़ो तो मैं उपकार करके बदला चुकाऊँ यह मैं सोच भी नहीं सकता हूँ। उपकारों के बदले उपकार करने की इच्छा मित्र को संकट में डालने की इच्छा है अतः मैं तुम्हारा ऋणी ही रहना चाहता हूँ।

अब तुम्हारी क्या इच्छा है? उसे मैं पूर्ण अवश्य करूँगा। श्रीहनुमान जी ने कहा– प्रभो! आपके श्रीचरणों में परम प्रेम, आपका नाम मेरे मुख में, तथा कानों में सर्वदा आपकी कथा रहे। जहाँ भी कथा होती हो वहाँ मुझे सुनने को मिले आप ऐसी कृपा करें। श्रीराम जी ने कहा कि–जब तक मेरी कथा इस पृथ्वी पर है तब तक तुम यहाँ रहो। मैं सीता समेत तुम्हारे मन में सदा निवास करूँगा। जब मेरा दर्शन करना चाहोगे मैं उसी समय तुम्हारे सामने प्रकट हो जाऊँगा। तुम मेरा दर्शन जिसको चाहोगे उसे करा सकोगे। भक्त के मनोरथों को पूर्ण करने में, मेरी भक्ति का दान करने में निरंतर समर्थ रहोगे। अयोध्या में राम दुर्ग के द्वार पर मुख्य रूप से रहकर तथा जहाँ पर कोई तुम्हारा स्मरण करेगा, वहीं उपस्थित होकर कथा सुनोगे और भक्तों के मनोरथ पूर्ण करोगे। घोर कलिकाल में भी मेरा नाम, मेरी कथा रहेगी। उसे सुनाने वाले भक्तों पर तुम कृपा करोगे। तुम काल के काल साक्षात शंकर हो, संकट में प्राणी तुम्हारा स्मरण करके त्राण पावेंगे। मेरी तरह तुम प्राणियों पर कृपा करोगे। उनके दोषों को नहीं देखोगे। नामोच्चारण करते हुए पर सर्वदा कृपा करते रहोगे। तुम्हारे ऊपर काल का प्रभाव नहीं पड़ेगा। कलि के दोषों से दूषित प्राणी जब मेरा नाम उच्चारण करे तो तुम उसके सहायक बनना। पापों के प्रभाव से भूत-प्रेत-पिशाच आदि योनियों को प्राप्त लोग प्राणियों को कष्ट देंगे, तुम भूत-प्रेतादि की बाधा को दूर करोगे।

इस प्रकार श्रीहनुमान जी को अजर-अमर बनाकर भक्तों की रक्षा का भार उन्हें सौंपकर अपने दिव्य धाम को गए। आज्ञाकारी श्रीहनुमान जी राम-राम, कृष्ण-कृष्ण, हरि-हरि आदि नामों का उच्चारण सुनकर प्रसन्न हो जाते हैं।

५८.–(श्रीरामस्वरूप पाँडे द्वारा प्रस्तुत भक्तगाथा श्रीजितेन्द्रभाई के पत्र में सद्गुरुदेवजी द्वारा उल्लिखित।)

मेरे गाँव अचर्रा से पाँचकोस की दूरी पर एक भक्त निवास करते थे। गरीब थे घर में वृद्धा माताजी थी। खेती से प्राप्त अन्न द्वारा संत सेवा तथा अपना निर्वाह करते थे। गाँव के बाहर एक शंकरजी का एकान्त में मंदिर था। वे भक्त अधिकतर शिव मंदिर पर रहते थे। प्रसिद्ध संत सेवी थे अत: संतजनों का आना-जाना बना रहता था। एकबार कई संत आ गए। सेवा के लिए आटा दाल आदि सामान लेने घर को आए तो माताजी ने कहा बेटा! घर में लकड़ी नहीं है। लकड़ी ला करके घर में रख दो जिससे मैं रोटी बनाकर भोग लगाकर खा सकूँ। भक्त ने स्वीकार किया पर सहज में उन्हें लकड़ी नहीं मिली। संतों की ओर मन लगा था उनके पास पहुँच गये, संतों की सेवा में लग गए। संतों ने भंडारा बनाया भोग लगाया। पंगत हुई। सेवा में लगे रहे घर में लकड़ी पहुँचाना भूल गए। तब भगवान ने बहुत सी लकड़ियों को लाकर उनका बाड़ा भर दिया। माता मना कर रही थी- तुम्हें पैसा मिला कि नहीं? इतनी लकड़ी का क्या प्रयोजन? पर वह नहीं माने। बड़ा ढ़ेर हो जाने पर माता ने शिव मंदिर पर सूचना भेजी बुलवाया और कहा कि इतनी लकड़ी क्यों मँगवाईं। पीछे सारा बाड़ा भर गया। पैसे कहाँ से दोगे? भक्त ने कहा माताजी! मैं तो भूल ही गया था। मैंने लकड़ी नहीं मँगवाई। पीछे जाकर देखा तो सैकड़ों मन लकड़ी दिखाई पड़ी। गाँव वालों से पूछा तो किसी ने नहीं बताया, लकड़ी देखी गई तो ऐसी थी जो आस पास के जंगल में दुर्लभ है। पुष्ट लकड़ी जो गीली भी जलती है।

५९.-प्रेम का द्रवीभूत स्वरूप श्रीयमुना जी हैं और प्रेम का ही घनीभूत स्वरूप श्रीगिरिराज गोवर्धन हैं। भागवत में इनके तीन रूप गोपियों ने बताये हैं। वे साक्षात हरि अथवा श्रीकृष्ण हैं, पुन: गिरि रूप से अपने फल, जल, पत्र, पुष्प, अंकुरो से श्रीकृष्ण की सेवा करते हैं अत: हरिदास हैं। बैठने के लिए शिलाएँ, वाद्यों के लिए उनकी शिलाएँ ढोल मृदंग आदि का रूप धारण करती हैं। विश्राम के लिए शीतल छाया, गुफाएँ अर्पण करते हैं अत: हरिदास हैं। जितने उपचार भगवान के लिए हैं, उतने सभी उनके भक्तों के लिए, ग्वाल बालों, गोपियों, गोवत्सों के लिए अर्पण करते हैं अत: हरिदास वर्य अर्थात् भक्तों में श्रेष्ठ हैं भक्तराज हैं। जो भक्त और भगवान दोनों की सेवा करते हैं तो वे हरिदास वर्य होते हैं इनके दर्शन, स्मरण, वंदन, पूजन से भक्तों को प्रेम मिलता है, बढ़ता है।

६०.—भागवत में लिखा है कि गोकुल से जब कृष्ण-बलराम सम्पूर्ण परिकर के साथ ब्रज में पधारे और उन्होंने यमुना पुलिन और श्रीगिरिराज का दर्शन किया तो उनके मन में 'उत्तमा प्रीति' हुई। तो ये गोवर्धन नाथ भक्तों के और भगवान के सेवक हैं और भक्तों को तथा भगवान को भी उत्तमा प्रीति-प्रेमाभक्ति देने वाले हैं।

६१.—ये गिरिराज आप सबों के मन में अपनी भक्ति का संचार करें। आपकी गो=इन्द्रियों के बल को बढ़ावें। गो=गायों की वृद्धि करें।

६२.—भगवान श्रीकृष्ण एवं उनके भक्त सुलभ होने के साथ-साथ परम दुर्लभ हैं। द्वारका लीला में, महाभारत में तथा ब्रज में भी इनके ऐश्वर्य माधुर्यमय स्वरूप को, लीला को देखकर भी लोग समझ नहीं पाए। जिनके हृदय में भक्ति थी उन्होंने भक्त भगवान को जाना-माना। शेष लोग नहीं जान सके। महाभारत में धृतराष्ट्र को वेदव्यास, विदुर, भीष्म आदि ने श्रीकृष्ण और पाण्डवों की महिमा समझाई पर उन्हें क्षणिक ज्ञान होता था, दुविधा में पड़कर अन्याय, अत्याचार का अत्याचारियों का ही समर्थन करते थे। भीष्म, द्रोण यह दोनों कृष्ण तत्व को ठीक-ठीक समझते थे पर भगवदिच्छा से इन्होंने अधर्मी कौरवों का पक्ष लिया। ये उस पक्ष में न रहते तो महाभारत का युद्ध न होता, पृथ्वी का भार न उतरता।

'बिधिबस सुजन कुसंगत परहीं। फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं॥' (मानस-बाल० २/१०)

दैववश सज्जन कुसंग में पड़ जाता है पर अन्त में वह अपनी सज्जनता का ही अनुसरण करता है, जैसे दुष्ट सर्प के मुख की मणि, सर्प विष को न अपनाकर सर्प के विष को दूर करती है। दु:ख दरिद्रता को भी दूर करती है। दुष्ट दुर्योधन के अन्न का, संग का दोष दूर कर अन्त में इन्होंने यथायोग्य उत्तम सद्गति प्राप्त की।

६३.—श्रीअश्वत्थामा जी जन्म और अपने कर्मो से महान वेदज्ञ, तपस्वी और महावीर थे, शिव के अवतार भी थे पर इनकी समझ में भक्त और भगवद्तत्व नहीं आया। श्रीकृष्ण अर्जुन दिव्य हैं यह जानकर भी इनके हृदय में पूर्ण विश्वास नहीं था। पाण्डवों को, कृष्ण को अधर्मी ही समझते रहे। अपने पिता की मृत्यु से इनको रोष हुआ, प्रतिशोध की भावना से नारायणास्त्र का प्रयोग किया पर कृष्ण कृपा से पाण्डव सुरक्षित रहे। आग्नेयास्त्र से एक अक्षौहिणी सेना को अश्वत्थामा ने एक क्षण में भस्म

कर दिया। कृष्ण-अर्जुन और उनके रथ को जरा सी भी आंच नहीं लगी। अपने को धिक्कारता हुआ अस्त्र को दोष देने लगा। मरणधर्मा मनुष्य ही श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं ये कैसे बचे? उसी समय वहीं प्रगट होकर वेद व्यास जी ने कृष्णार्जुन तत्व का निरूपण किया इससे उसे ज्ञान हुआ पर भक्ति नहीं आई। इसलिए अंत तक बदला लेने की भावना रही। बालहत्या, गर्भहत्या सरीखे दुष्कर्म अश्वत्थामा करते रहे। सिर की मणि और अपने तेज को नष्ट कर पांच हजार वर्ष तक पीड़ा सहते रहे और तपस्या में लीन रहे। अब यह अनुमान है कि इनकी पीड़ा निवृत्त हो गई होगी। श्रीकृष्ण में भक्ति भी हुई होगी। पुनः अपने विप्र धर्म में स्थित होकर अगले कल्प में सप्तऋषियों में पूजित होंगे। अगर ये कट्टर विरोध न करते तो भक्त भगवत् की उज्ज्वल महिमा का उदय न होता।

दुष्ट जन संत-भगवन्त की महिमा की कोठरी में लगे ताले में ताली का काम करते हैं, अतः इन्हें धन्यवाद मिल जाता है। अश्वत्थामा सरीखे महापुरुष ने भक्त और भगवान की महिमा को नहीं समझा, यह दौर्लभ्य है। भीष्म, द्रोण, भूरिश्रवा आदि के वध में अधर्म दिखाई पड़ता है पर पाण्डवों के हृदय में दृढ़ भक्ति के कारण उन्हें अधर्मी की सी गति प्राप्त नहीं हुई। उनके कर्मों का श्रीकृष्ण ने समर्थन ही किया। पाण्डवों की अधर्म में प्रवृत्ति नहीं थी। अन्याय अधर्म को मिटाने के लिए यदि अधर्म अन्याय हो तो वह ठीक है ऐसा श्रीकृष्ण का मत था। पाण्डव भक्त थे। भक्त रक्षा में प्रभु ने सब कुछ किया अतः भक्त रक्षा प्रण की पूर्ति हुई, उन्हें दोष नहीं लगा। दुर्योधन कर्णादि ने बड़े-बड़े यज्ञ-दान किये पर भक्त-भगवन्त से विमुख होने के कारण उन पुण्यों का उत्तम फल नहीं मिला। इन सबकी अधर्म में प्रवृत्ति थी। धर्म को जानते थे पर उसका आचरण नहीं कर पाते थे, अधर्म को जानते थे पर उससे बच नहीं पाते थे। यह भगवद् विमुखता का प्रभाव था।

भीमसेन को विष, लाक्षागृह में दाह, कपटद्यूत, द्रोपदी का अपमान, वनवास काल में दुर्वासा द्वारा पाण्डवों के नाश का उपाय, बारह वर्ष का वनवास, एक वर्ष अज्ञात वास के बाद भी उन्हें आधा राज्य न देना, सुई नोक के बराबर भूमि न देने का निश्चय, ये सब कौरव पक्ष के अन्याय थे। इनकी अपेक्षा पाण्डवपक्ष से हुए अन्याय तुच्छ थे।

६४.–अभिमन्यु का वध एवं जो ब्रह्मास्त्र नहीं जानते उनको ब्रह्मास्त्र से दग्ध करना आदि अधर्मों को स्वयं द्रोण ने स्वीकार किया। भीष्म ने स्वयं अपनी मृत्यु का उपाय बताया। तकिया और पेय जल प्राप्त कर अर्जुन की बड़ाई की। द्रोणवधार्थ धृष्टद्युम्न की उत्पत्ति थी अतः उसके द्वारा अधर्म स्वाभाविक था। ब्राह्मण स्वधर्म का त्याग करके क्षत्री धर्म स्वीकार करे तो विनाश का कारण बनता है। सर्वत्र भक्त–भगवान की महिमा, परस्पर प्रेम को प्रमाणित करने के लिए लीला हुई। साधु परित्राण, दुष्ट विनाश अवतार के प्रयोजन सिद्ध हुए। पाण्डवों में भक्ति थी अतः उनमें अधर्म का लेश नहीं था। वे प्रातः स्मरणीय है।

इति शुभम्

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्री हनुमते नमः श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः

❋ प्रकीर्ण ❋

१.—आज विजय दशमी है। आज के दिन भगवान श्रीराम ने शमी का पूजन कर लंका विजय के लिए प्रस्थान किया था। आज श्री सीताराम का पूजन करके विश्व कल्याण की भावना करनी चाहिए।

२.—संत के शरीर त्यागने पर हर्ष–विषाद नहीं होना चाहिए। जो संसारी मर कर आवागमन के चक्र में पड़ते हैं वे शोक के योग्य हैं। संत शरीर त्यागकर भगवत्‌धाम में जाता है अतः शोक नहीं करना चाहिए। शरीर भगवत् मिलन में बाधक होता है। उसको त्यागने में दु:ख नहीं है। अब हमें उनके मधुर उपदेश सुनने को नही मिलेंगे, उनका प्रत्यक्ष दर्शन और आशीर्वाद नहीं मिलेगा यह दु:ख की बात है। जीवनमुक्त के शरीर त्याग के बाद किसी कर्मकाण्ड की जरुरत नहीं होती है। सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।

३.—कार्तिक मास भर यदि कोई स्नान–व्रत आदि न कर सके तो अंतिम के पाँच दिन एकादशी से कार्तिक पूर्णिमा तक ही स्नान, व्रत, तुलसी पूजन आदि कर ले तो उसे पूरे मास व्रत का फल मिलता है। इस मास में किया गया थोड़ा भी दान–पुण्य महान फल देता है।

४.—तुलसी शालग्राम को सप्रेम दीप दान करने से हृदय में प्रेम का प्रकाश अवश्य होगा। प्रज्वलित दीप सभी अमंगलों को दूर करते हैं। श्रीराधारानी के स्वरूप में सभी आभूषण दीपकों की तरह चमकते हैं। और स्थानों पर तो दीपक की चमक से दीवाली होती है, श्रीराधारानी के शरीर पर सर्वदा दीपावली रहती है।

५.—जिन पुण्यों का फल यहीं मिल जाता है वे पुण्य नष्ट हो जाते हैं उनसे परलोक में सुख नहीं मिलता है। अपने मुख से पुण्य या पापों का वर्णन करने से पुण्य और पापों का नाश हो जाता है। यश के लिए किया गया पुण्य परलोक में फल नहीं

देता। जिन पापों का ठीक-ठीक प्रायश्चित कर लिया जाता है उन का फल नरकादि की प्राप्ति नहीं होती है। भगवन्नाम ही सर्वश्रेष्ठ प्रायश्चित है, यह बात अजामिल के उपाख्यान में सिद्ध है। पाप और पुण्य मानसिक भावनाओं पर निर्भर रहते हैं। भावना प्रधान होती है क्रिया गौण होती है, जैसे अश्रद्धा से किये गये करोड़ों रुपये के दान से श्रद्धा से किया गया एक पैसे का दान श्रेष्ठ है। अश्रद्धालु दानी में अहंकार होगा और श्रद्धावान दानी में अहंकारहीनता होगी अतः श्रद्धापूर्वक कर्म श्रेष्ठ है। श्रद्धा-अश्रद्धा के भाव सूक्ष्म शरीर पर संस्कार डालते हैं उसी से जीव को स्वर्ग-नरक मिलता है। जिस कर्म का संस्कार हृदय पर न पड़े उस कर्म का फल नहीं भोगना पड़ेगा। ज्ञानी कर्म करता है उसका संस्कार मन पर नहीं होता है अतः वह ज्ञानी कर्म बन्धन में नहीं बँधता है।

६.—नास्तिक मत को छोड़कर सभी धर्म जीव की सत्ता को मानते हैं। जड़ शरीर में जड़ से चैतन्यता नहीं आ सकती है। चेतन के प्रवेश करने पर जड़ चैतन्य प्रतीत होता है। यदि कहें कि भौतिक पृथ्वी जल आदि के मिश्रण से उसमें जीव पैदा होता है तो मरे शरीर को भौतिक विज्ञान से जीवित हो जाना चाहिए। वर्षों तक जो शरीर काम करता रहा वही एक दिन चैतन्यता से शून्य हो जाता है, कुछ देर बाद सड़ने लग जाता है। तब यही माना जायगा कि शरीर में एक शक्ति थी जो अब नहीं रही। जीव की सत्ता सिद्ध हो गई।

७.—इस्लाम का सिद्धान्त है कि प्रलय तक जीव कब्र में रहता है। यह कल्पना युक्तिसंगत नहीं है। जीव स्थूल वस्तु नहीं है जो मिट्टी में गड़ा रह सके। वायु को हम मिट्टी में नहीं रोक सकते हैं। शीशे और मोटी लोहे की चादरें जीव को नहीं रोक पाती हैं क्योंकि वह अति सूक्ष्म है। कालान्तर में कब्रें खुद जाती हैं, तालाब बन जाता है तब फिर जीव बिना कब्र कैसे रह सकता है? सृष्टि अनादि है किये गये कर्मों के फल को भोगने के लिए बार-बार जन्म होता है।

८.—संस्कृत में आदिकाव्य बाल्मीकि रामायण सर्वश्रेष्ठ है, कवियों को प्रेरणा देने वाला है उसी प्रकार हिन्दी में रामचरितमानस हिन्दी कवियों का प्रेरक है। उसकी श्रेष्ठता इसी से सिद्ध होती है, अत्यन्त लोकप्रिय है। अनेक टीका-टिप्पणियाँ, दूसरी भाषाओं में अनुवाद से साहित्य की उत्कृष्टता सिद्ध है। विदेशी रुस आदि की भाषाओं

में तत्सम छन्दों में अनुवाद हुआ है और भारत की भांति अब रामलीला का अनुकरण वहाँ भी होने लगा है। दोहा, चौपाई, सोरठा, छन्द, छप्पय, गेय पदों, खण्ड–प्रबन्ध सभी प्रकार के छोटे–बड़े काव्यों का प्रणयन तुलसीदास के द्वारा हुआ।

बिखरे सनातन धर्म के सभी सम्प्रदायों में समन्वय लाने का सिद्धान्त भी सराहनीय रहा। आराधना की दृष्टि से तुलसी वाक्य मन्त्रवत् प्रयुक्त होते हैं उससे लौकिक–पारलौकिक कामनाएँ लोगों की सिद्ध होती हैं। अवधी उनकी मुख्य भाषा है। जानकी मंगल, पार्वती मंगल की भाषा में बुन्देलखण्डी भाषा का प्रयोग है और महिलाओं द्वारा गाये जाने वाले सोहर छन्दों का प्रयोग है। कृष्ण गीतावली आदि में ब्रज भाषा भी है। रामाज्ञा में रामचरित के वर्णन के साथ ज्योतिष का शकुन विचार भी वर्णित है।

रामचरितमानस आदर्श काव्य इसलिए है कि पिता–पुत्र, भाई–भाई, पति–पत्नी, गुरु–शिष्य, मित्र–मित्र, राजा–प्रजा का कर्तव्य आदर्श पात्रों के चरित्रों में, उपदेशों में निहित है। इतना ही नहीं शत्रुओं के प्रति हुआ व्यवहार भी वर्णित है। **'वैरिहु राम बड़ाई करहीं।'** सारांश यह कि तुलसी रचित काव्य और तुलसी चरित दोनों ही अनुपम हैं।

९.–श्रीहनुमान जी परम वैष्णव हैं। उन्होंने लंका नहीं जलाई थी। विराट पुरुष के उदर में रावणरूपी राजरोग बढ़ रहा था जिससे व्याकुल होकर वह दिन प्रतिदिन दुःखी हो रहा था। देवता, ऋषि, मुनि सभी उपाय करके हार गये रोग को ठीक नहीं कर सके। विराट पुरुष को थोड़ा भी चैन नहीं मिलता था तब श्रीरामचन्द्र भगवान की आज्ञा पाकर रसवैद्य श्रीहनुमान जी ने समुद्र के पार जाकर लंका रूपी राखांक (मिट्टी के पात्र) को ठीक करके राक्षसरूपी जड़ी बूटियों के रस में, लंका के सोने और रत्नों को यत्न से फूँक कर मृगांक बना डाला। मृगांक एक आयुर्वेदीय औषध है जिसे स्वर्ण और रत्नों को भस्म करके बनाया जाता है उस से राजरोग यक्ष्मा, कैंसर, आदि ठीक हो जाते हैं। आग लगाने से जीव जलते हैं। वैष्णव जीव हत्या नहीं करते हैं। विराट पुरुष संसार के हृदय में रावण रूपी राजरोग बढ़ गया था उसे ठीक करने के लिए रसवैद्य हनुमानजी ने लंका को जलाकर मृगांक बनाया उससे रोग शांत हुआ। लंका जल गई, रावण का बल नष्ट हो गया तब संसार का रोग क्लेश दूर हो गया। हनुमानजी रसवैद्य हैं। रसायन से इलाज करते हैं। **'राम रसायन तुम्हरे पासा।'** रस चिकित्सा में परहेज नहीं करना पड़ता है और शीघ्र ही रोगी

ठीक हो जाता है काष्ठ चिकित्सा में परहेज करना पड़ता है। उपासना जगत में रसवैद्य सिद्ध रसिक-सन्त विधि निषेधरूप परहेज नहीं कराते हैं। संसार रोग रस चिकित्सा से ठीक करते हैं। रसिक उपासना रस चिकित्सा है।

१०.–वासनाओं, कामनाओं का, माया के विकारों का त्याग करके उपासना करने वालों पर भक्त और भगवान शीघ्र ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। यह ठीक है पर जीव उनका त्याग तभी कर पाता है जब भगवान की शरण में जाये। शरणागत भक्त का भजन ही भगवान को प्रसन्न करने वाला है। दयामय शक्ति श्रीकृष्ण हैं। श्रीकृष्ण अपनी शक्ति का प्रयोग करते हैं तब जीव का कल्याण होता है। उसका तामस नष्ट हो जाता है। दैत्य हिंसक अपनी शक्ति से दीनों-गरीबों को कष्ट ही कष्ट देता है, फलस्वरूप हिंसक भी स्वयं संकट में पड़ जाता है। हिंसक अपने ही पाप से नष्ट हो जाता है। परोपकारी सज्जन अपनी सज्जनता से बच जाते हैं। सज्जनों का अपमान करने से आयु, बल, बुद्धि और पुण्यों का नाश हो जाता है। अपने इष्ट के स्वभाव से प्रभावित होकर भक्त भी इष्ट के गुणों को धारण करके भगवान को प्रसन्न करता है। सत्य, दया, क्षमा, ब्रह्मचर्य, सदाचार आदि गुण नित्य अखण्ड अनन्त रूप से भगवान में रहते हैं। भक्त जब भगवान को अपने हृदय में लाता है तो वे सत्य आदि गुण भक्त में भी आ जाते हैं। पूर्ण रूप से प्रभु हृदय में आवेंगे तो वह गुण भी पूर्ण रूप में आवेंगे। जैसे-जैसे प्रभु का ध्यान दृढ़ होगा वैसे-वैसे सद्गुण आकर निवास करेंगे। श्रीहनुमान जी के हृदय में श्रीराम पूर्ण रूप से विराजमान रहते हैं, अतः श्रीराम के उत्तम गुण लक्षण हनुमानजी में हैं। ईश्वर के प्रति अति श्रद्धा के कारण श्री हनुमानजी में दुष्ट दलन शक्ति है। अग्नि, जल, वायु आदि प्राकृतिक सृष्टि पर ईश्वर का शासन है तो श्री हनुमानजी की भी सब पर विजय है। सभी अनुकूल हो जाते हैं। भक्त के सभी मनोरथों को भगवान की तरह श्रीहनुमान जी पूर्ण करते हैं। श्रीराम जी तक जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। द्वार पर विराजमान हनुमानजी संकट दूर कर देते हैं। श्रीराम जी के अनेक कर्तव्यों का पालन करके उनको निश्चिंत कर देते हैं। श्रीराम जी स्वतन्त्र स्वच्छन्द आनन्द करें। श्रीभगवान की कीर्ति को सुनने के लिए हनुमानजी आते हैं। जो मन ही मन हरि गुण

गान करते हैं उनके मन में विराजमान होकर श्रवण करते हैं। भगवद् गुण गायक का कल्याण करते हैं। भगवान अपनी कृपा का अनुभव भक्तों को कराते हैं। जय श्रीराधे जय श्रीहरि।

११.–कोई त्यागी, दानी, तपस्वी, विद्वान् होने के बाद यदि भक्तमाल से नहीं जुड़ा, भक्तमाल नहीं सुनी तो उसके सब गुण व्यर्थ हैं। विद्वान् को अहंकार नहीं होना चाहिए। दुष्ट की विद्या विवाद के लिए, दुष्ट का धन अहंकार के लिए, तथा दुष्ट की शक्ति दूसरों को पीड़ा देने के लिए होती है। संत की विद्या ज्ञान के लिए, संत का धन दान के लिए तथा संत की शक्ति दूसरों की रक्षा के लिए होती है।

१२.–अपने को जो कुछ प्रभु ने दिया है उसका सदुपयोग करना चाहिए। अमुक व्यक्ति मुझसे द्वेष करता है यदि यह वस्तु अनुभव में आती है तो समझ लो कि हमारे मन में द्वेष है। अपने में सत्य प्रेम है तो सर्वत्र सत्य और प्रेम के ही दर्शन होंगे।

१३.–शरीर का निरोग रहना उत्तम है। उसकी अपेक्षा मन का निरोग रहना अति उत्तम है। मन के निरोग होने का लक्षण यह है कि **'जब उर बल बिराग अधिकाई।'** (मानस-उत्तर १२१/९) रोगी मन में विषयासक्ति, लोकासक्ति बढ़ती है निरोगी मन में यथालाभ संतोष रहता है। प्रारब्धवश जो कुछ मिले उसमें संतुष्ट रहना यह सामान्य लोगों का विचार है। भक्त भगवत् कृपा से प्राप्त वस्तु में संतुष्ट रहता है। श्रद्धा-सेवा से मन सर्वदा आशीर्वाद देता रहता है। श्रद्धालु को आशीर्वाद माँगना नहीं पड़ता अपने आप ही मिलता है। जय श्रीकृष्ण।

१४.–माया-मोह दूर करने का सरस एवं सरल उपाय श्रीमद्भागवत पठन-श्रवण है। भक्ति देवी दुर्बल हो गईं थी श्रीवृन्दावन आते ही पुष्ट हो गईं। श्रीजी का धाम अपना भक्तिमय है। भक्ति देवी और राधा का एक ही स्वरूप है। प्रेममय श्रीकृष्ण हैं भक्तिमयी श्रीराधारानी हैं। श्रीवृन्दावन भक्ति का अपना धाम है। इसलिए वृन्दावन में आकर पुष्ट संतुष्ट हो गईं। अपना घर पाकर ही प्रसन्नता होती है। अपना घर श्रीकृष्ण हैं। शरण शब्द का अर्थ घर है। श्रीकृष्ण के चरणों में पहुँचे तो अपने घर को पहुँचे। शरण का दूसरा अर्थ रक्षक है। श्रीकृष्ण की शरण में हैं अर्थात् श्रीकृष्ण की रक्षा में हैं। श्रीकृष्ण ही रक्षक है तब किसी का भय नहीं है।

१५.–ईश्वर को, अपने अविज्ञात मित्र को छोड़कर संसारी सुखों को भोगने की जब जीव इच्छा करता है तभी वह पुरंजनी माया (बुद्धिरुपिणी स्त्री) के आधीन होकर नव द्वार वाले पुर मानव शरीर को अपनाता है। भोगासक्त मायाधीन को जब अविज्ञात मित्र ईश्वर स्वयं आकर मिलता है तब वह मुक्त होता है। जीव को मायिक सुखों को भोगने की इच्छा रहती है वह ईश्वर प्राप्त करने की इच्छा ही नहीं करता है तब स्वयं ईश्वर आकर उस पतित का उद्धार करता है।

१६.–कल्याण वर्ष ६० अंक ६ 'महाभारत सार' शीर्षक में वर्णित ५ श्लोकों का भावार्थ :-

ये मनुष्य इस संसार में हजारों माता-पिता, स्त्री-पुत्रों के संयोग-वियोग का अनुभव कर चुके हैं, करते हैं और करते रहेगें। (पर प्रभु कृपा बिना संसार से वैराग्य और प्रभु में प्रेम नहीं होता)।।१।।

अज्ञानी लोगों को प्रति दिन हर्ष ओर भय के हजारों अवसर प्राप्त होते रहते हैं किन्तु विद्वान् मनुष्य के मन पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। (कमल पत्र की तरह निर्लिप्त रहना चाहिए)।।२।।

व्यासजी कहते हैं कि मैं दोनों हाथ उठा-उठा कर पुकार-पुकार कर कहता हूँ पर मेरी बात कोई नहीं सुनता है। सुनो! धर्म का आचरण करने से मोक्ष तो मिलता ही है, अर्थ और काम की भी सिद्धि हो जाती है तो भी लोग धर्म का सेवन क्यों नहीं करते हैं। (माया ने उन्हें मोहित कर रखा है। मायापति की शरण में जाने पर धर्माचरण हो सकता है)।।३।।

मनुष्यों को चाहिए कि वह काम से, भय से, लोभ से अथवा प्राण बचाने के लिए भी धर्म का त्याग नहीं करें। धर्म करना चाहिए। धर्म नित्य है। संसार के सुख और दु:ख सब अनित्य हैं। इसी प्रकार जीवात्मा नित्य है और उसके बन्धन का हेतु मोह अनित्य है।।४।।

यह महाभारत का सारभूत उपदेश है जो सायं-प्रात: इसका पाठ करता है वह सम्पूर्ण महाभारत के पाठ का फल पाकर परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।।५।। जय गोविन्द, जय जय गोविन्द।

१७.—भोगों में आसक्त प्राणी भोगों का संग्रह करने के लिए सबको दु:ख देकर स्वयं सुखी बनना चाहता है। योगी भक्तजन अपने तप से, भजन से विश्व का कल्याण चाहते हैं। भोगी मनुष्य भोग भोगते-भोगते रोगी बन जाता है। भोगों को वह भोग नहीं पाता क्योंकि उनका अन्त नहीं है। भोग ही शरीर को भोग लेते हैं शरीर जर्जर हो जाता है। इसलिए सभी भोगों को शास्त्र की मर्यादा के अनुसार भोगना चाहिए। स्वच्छन्द होकर पशु की तरह नहीं भोगना चाहिए।

१८.—प्रारब्धवश शरीर सुख-दु:ख भोगता है। कष्ट आकर प्रभु की याद दिलाते हैं अत: ये भी अच्छे हैं। जब प्रभु का स्मरण-भजन न बने यही विपत्ति है।

१९.—आज चन्द्र ग्रहण का पर्व है। सर्वाधिक भीड़ काशी में चन्द्र ग्रहण के अवसर पर होती है। सनातन वैदिक धर्म के जितने धर्म ग्रन्थ हैं उनमें नित्य-नैमित्तिक कर्म-धर्मों का विधान किया गया है। उनमें मंत्रों के प्रयोग की विधि है उसी से वैदिक आराधना हो जाती है। जैसे मृत्तिका ग्रहण, दातौन ग्रहण आदि मंत्रों का प्रयोग है उसमें वन्दना हो जाती है। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक कार्य में भगवत् स्मरण प्रधान है। यदि स्मृति में कथित धर्म का पालन हो तो साधक को निरंतर हरि स्मरण करना होगा और चराचर को हरिमय बनाना होगा। ग्रहण पर्व नैमित्तिक है। यदि पर्व पर स्नान न किया जाए तो पाप होगा स्नान किया जाए तो महान् पुण्य होगा। इस अवसर पर छोटे-बड़े सभी जलाशय गंगा के समान फलदायक हो जाते हैं। इस अवसर पर किया मंत्र जपादि सिद्ध हो जाता है। अत: लोग अपने-अपने मंत्रों को सिद्ध करते हैं।

२०.—**काल धर्म नहि ब्यापहि ताही। रघुपति चरन प्रीति अति जाही॥**

(मानस-उत्तर १०३/७)

यद्यपि तम: प्रधान कलयुग है। तमोगुण की वृद्धि हो रही है परन्तु जिसे प्रभु चरणों में अति प्रीति है उसे कलिकाल का दोष स्पर्श नहीं करेगा।

'अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति।'

जहाँ तृण घास आदि नहीं है वहाँ पर यदि कोई अग्नि डाल दे तो अग्नि बढ़ेगी नहीं, स्वयं शांत हो जायगी। इसी प्रकार जिस सज्जन के पास क्षमा है, शांति है उसका दुर्जन कुछ भी नहीं कर सकेंगे।

२१.–कार्तिक मास में विशेष सेवा, भजन–कीर्तन करना चाहिए। इस मास में किया पुण्य अक्षय होता है। थोड़ा भी बहुत के बराबर होता है। एक वैश्या किसी मंदिर के समीप दीवाल की छाया में बैठी थी। उसने पान में चूना लगाया। चूना अधिक था अतः उसने उसे मंदिर की दीवाल में लगा दिया। इस पुण्य से उसकी सद्‌गति हुई। कार्तिक मास में मंदिर में सफेदी–सफाई कराने से पुण्य होता है। इस मास में ठाकुरजी के, तुलसीजी के एवं तीर्थों के समीप दीपदान की विशेष महिमा है। मंदिर में किसी ने दीप जलाया था। वह बुझने वाला ही था इस बीच एक चूहा उस पर कूदा तो दीप की बत्ती तेजी से जल उठी। चूहे की मृत्यु हो गई उसे दीपदान का फल मिला। उसकी उत्तम गति हुई। मथुरा, अयोध्या आदि तीर्थों में कल्पवास की विधि है। एक मास धाम में वास, स्थान की परिक्रमा आदि की महिमा है। अपने गाँव के देवताओं का पूजन, दर्शन एवं अपने गाँव की परिक्रमा, नगर कीर्तन कार्तिक में, विशेष कर अक्षय नवमी को तथा एकादशी से पूर्णिमा तक दान–पुण्य आदि विशेष कर्तव्य हैं।

२२.–हम लोगों को शास्त्र का सिद्धान्त मानना चाहिए। वेद शास्त्र को छोड़कर अपने मन से कल्पित मिथ्या आचरण करने से भक्ति नहीं होती है। प्रेम में नेम नहीं होता है, यह कह कर कुछ लोग सदाचार का त्याग करते हैं पर यह ठीक नहीं है। प्रेम के अष्ट सात्विक भावों के उदय होने पर शरीर की सुधि नहीं रहती है उस अवस्था में यदि कोई नियम भंग होता है तो पाप नहीं लगता है। जानबूझकर यदि कोई वैष्णवों के आचार का त्याग करता है तो वह भ्रष्ट हो जाता है।

२३.–अपने खर्च से जो अन्य संतो को यात्रा कराते हैं उन्हें विशेष पुण्य की प्राप्ति होती है। पुण्य प्राप्ति में श्रद्धा कारण है केवल कर्म नहीं है। उसी कर्म को अश्रद्धा उपेक्षापूर्वक किया जाय तो स्वल्प पुण्य प्राप्त होता है।

२४.–पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, वायु ये पाँच तत्त्व हैं इन्हीं से सारी सृष्टि उत्पन्न होती है। सर्वप्रथम इन्हें गुरु मानकर इनके गुण ग्रहण करना चाहिए। जल मधुर और शीतल होता है, अग्नि तेजस्वी है। आकाश सब को अवकाश (स्थान) देता है। वायु सर्व व्याप्त है, शुद्ध करता है। इनको नमस्कार करके संसार के व्यवहार में प्रवृत्त होना चाहिए। यह ईश्वर के पाँच तत्त्व सृष्टिकर्ता हैं इन्हीं के द्वारा संसार बनता है। संसार में भी ये सर्व व्याप्त

रहते हैं। मैत्री होने पर यह शरीर में रहते हैं। इनका संघटन ही जीवन है, इनका विघटन मृत्यु है।

२५.–जिस वर्ण में, जिस आश्रम में जन्म है तदनुसार पूर्वजों की परम्परा से प्राप्त वैष्णव धर्म का पालन करते हुए जीवन यापन करना चाहिए। प्राचीन ऋषियों ने मनुष्य को चार शिक्षाएँ दी हैं :-

१. बारह महीनों में से आठ महीने तक ऐसा संग्रह करना चाहिए कि वर्षा के चार मास सुखपूर्वक बीतें। मकान की मरम्मत, अन्न आदि का संग्रह जो वर्षा में सम्भव नहीं उसे कर लेना चाहिए।

२. दिन भर इस प्रकार व्यवहार-व्यापार करना चाहिए, वस्तुओं का संग्रह करना चाहिए कि रात्रि में शांति के साथ भगवत् स्मरण हो और सुख से निद्रा आए। वर्षा में भी लोग चतुर्मास मनाते हैं, विशेष भजन-साधन करते हैं अतः आठ मास उद्योग विशेष के हैं।

३. युवावस्था में इस प्रकार का उद्योग करना चाहिए कि वृद्धावस्था में शरीर के निर्बल होने पर भजन-साधन में विघ्न न हो। युवा उपार्जन की अवस्था है। वृद्धावस्था में उपार्जन में कम, भजन में विशेष मन लगाना चाहिए।

४. मानव जन्म पाकर जीवन भर ऐसा कर्म, धर्म, आचरण करना चाहिए कि यह जीवन भव सागर से पार जाने के लिए जहाज बन जाय। मनुष्य शरीर को पाकर जीवन का लक्ष्य यह रहे कि आवागमन का चक्र छूट जाये। संसार में जन्म हो पर पुण्यमय जन्म हो। जहाँ हम भक्ति कर सकें ऐसा देश हो। जिस संग में हमको सत्संग हो ऐसा संग मिले। जिस परिवार से भजन में सहायता मिले ऐसा परिवार मिले। यह भवसागर से पार जाना है। संग्राम में धर्मयुद्ध करते-करते लड़कर मरने वाला क्षत्रिय और निरंतर प्रभु का चिन्तन करने वाला संसार चक्र में पड़कर दुःख नहीं पाता है, यह विदुरजी ने धृतराष्ट्र से कहा है। फिर कहा जो निर्धन होकर, जन परिवार हीन होकर तपस्या न करे और विद्या-धन को प्राप्त करके उसका दान न करे इन दोनों प्रकार के लोगों को पत्थर बाँधकर पानी में डुबा देना चाहिए। श्रीविदुर जी के कहने का तात्पर्य यह है कि वर्ण-धर्म का पालन और प्रभु चिन्तन कर्त्तव्य है। जो ज्ञान-भक्ति, अन्न, धन, प्रभु ने दिया है उसका दान अवश्य करना चाहिए। विद्या, ज्ञान, भक्ति का जितना

दान किया जाय उतनी ही उसकी वृद्धि होती है। दूसरी संसारी चीजें दान से शुद्ध होती हैं। दान में श्रद्धा प्रधान है। श्रद्धा से दिया गया थोड़ा दान भी बहुत हो जाता है।

२६.–भूत-प्रेतादि के द्वारा जो लोग मारण मोहनादि का प्रयोग करते हैं उन्हें भूत अपने परिकर में मिलाते हैं। गीता का वाक्य है–भूत पूजक भूतों को, देव पूजक देवों को, मेरे पूजक मुझे प्राप्त होते हैं।

२७.–जो लोग दरिद्रता के दु:ख रूपी ज्वर से जल रहे हैं, जलाये जा रहे हैं, माया पिशाची के द्वारा जो परिमर्दित हैं, घोटे जा रहे हैं, रौंदे जा रहे हैं, माया पिशाची ने जिन्हें संसार समुद्र में गिरा दिया है ऐसे पीड़ित लोगों के कल्याण के लिए श्रीमद्भागवत गरज रहा है, उनके कल्याण के लिए उद्घोष कर रहा है। दरिद्र वही है जो असन्तुष्ट है। संसारी वस्तुओं का लोभी दरिद्र है। धन, जन प्रतिष्ठा के दु:ख से जो दु:खी है, माया पिशाची आशा के छीटें देकर जिन्हें घोट रही है ऐसे लोग भी अर्थात् सकामी विषयी भी यदि श्रवण-पठन करें तो उनका कल्याण करने वाला है। परमहंसों को परमानन्द देनें वाला है ही।

२८.–धर्म के चार पद हैं। **तपः शौचं दया सत्यम्।** इनमें तीन कलि में शिथिल या नष्ट हो गये हैं, एक केवल सत्य ही शेष है। इस एक पैर से धर्म चल रहा है। इससे यह सिद्ध हुआ, सत्य यह चारों युगों में सुरक्षित रहता है शेष क्षीण हो जाते हैं। किसी काल में जो नष्ट नहीं होता है एक रस रहा आता है वह नित्य है, ब्रह्म है, सत्य है। सत्य चारों युगों में बना रहता है अत: चारों पादों में सत्य ही सर्वश्रेष्ठ है। इसलिए श्रीमद्भागवत के आदि मध्य और अंत के मंगलाचरण में सत्य की वन्दना है। उसी से इस विश्व की उत्पत्ति आदि होती है। वह सत्य श्रीकृष्ण हैं उनके सभी स्वरूप सत्य हैं, उनके नाम-रूप-लीला-धाम सत्य हैं। उनके भक्त, उनकी भक्ति सत्य है, उसके उपदेष्टा सत्य हैं। वे सत्यस्वरूप कृष्ण सत्यात्मक हैं। सत्य ही उन्हें प्राप्त करने का एक मात्र साधन है। वे त्रिकाल में सत्य हैं। सत्यस्वरूप पृथ्वी, जल, आकाश, सूर्य, अग्नि आदि को प्रगट करने वाले हैं। उनमें सत्य है वे सत्य में हैं। उनका चरित्र भागवत पुराण सत्य है। उसका आश्रय सर्वतोभावेन ग्रहण करना चाहिए। **न ह्यम्मानि तीर्थानि** यह दो बार श्रीकृष्ण और एक बार शंकरजी के द्वारा कहा गया है। जो बात तीन बार कही जाती है उसी को ग्रन्थ का उद्देश्य समझना चाहिए। तीन बार एक वाक्य कहा

गया है इससे भक्त महिमा द्योतक, भक्त परत्व को प्रमाणित करने वाला यह पुराण भागवत अर्थात् वैष्णव पुराण है। **न नाकपृष्ठम्**–इसे वृत्तासुर ने कहा, यज्ञ पत्नियों ने कहा, और नाग पत्नियों ने कहा। तीन स्थानों पर कह कर मुख्य निष्काम भक्तियोग की महत्ता सिद्ध की गई है। भागवत रहस्य को भागवत बनकर ही जाना जा सकता है, विद्या, व्याकरण टीका आदि के द्वारा नहीं। श्रीकृष्ण का वाङ्ग्मय स्वरूप है यह कई विद्वानों ने कहा है।

एक बार केशी घाट पर बैठ कर कृष्ण कर्णामृत के रचियता श्रीबिल्वमंगल जी श्रीमद्भागवत जी का पाठ कर रहे थे। इसी बीच एक विद्वान् पंडे ने आकर दौड़ो-दौड़ो चोर-चोर कहा। यह शब्द सुनकर बहुत से लोग एकत्रित होकर पूछने लगे कि चोर कहाँ है? उसने कहा-**श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद् वैष्णवानां धनम्।** (भा.स. न. ६-२२) यह श्रीमद्भागवत वैष्णवों का परम धन है। यह शैव मस्तक में त्रिपुण्ड लगाकर भागवत का पाठ कर रहा है, यही चोर है। अनधिकारी पाठक चोर है। उस समय श्रीबिल्वमंगल जी ने आँसू भर कर गद्गद वाणी से कहा **'शैवा वयं ना खलु तत्र विचारणीयं पंचाक्षरी जपपरा नितरां तथापि। चेतोमदीयमतसी-कुसुमावभासं, स्मेराननं स्मरति गोपवधू किशोरम्।'** हम शैव हैं इसमें संदेह नहीं, वेशभूषा भी शैवों की सी ही है। नित्य पंचाक्षरी (नमः शिवाय) मंत्र जप में तल्लीन रहता हूँ परन्तु मेरा मन अलसी पुष्प के समान कान्ति वाले मुस्कुराते हुए श्रीकृष्ण में सर्वदा आसक्त रहता है। मन, वाणी, शरीर की प्रेमासक्ति देख कर लोग आश्चर्यचकित हो गये और कहने लगे शैव होते हुए भी तुम हृदय से परम वैष्णव हो, श्रीमद्भागवत तुम्हारा अपना धन है। तुम पाठ के अधिकारी, ईमानदार हो। एक स्थान पर धनं के बजाय प्रियं पाठ है वह भी ठीक है।

२९.– अधिक मास पुण्यमास में गाय की, संत-भगवन्त की सेवा में जो धन लगता है वह धन्य है। पवित्र समय पवित्र देश में किया गया थोड़ा भी पुण्य अधिक फल देता है। पवित्र कर्म से बुद्धि शुद्ध होती है। उससे मन में सुख-शांति स्थिर बनी रहती है। परिवार का मंगल होता है, धन-धान्य की वृद्धि होती है। भक्त जिस शांति का अनुभव करता है वह शांति करोड़पति को और देवताओं को भी नहीं मिलती है।

३०.–संसार जैसा आज है वैसा ही पहले था आगे भी ऐसा रहेगा। प्रकृति में परिवर्तन अनिवार्य है।

३१.–हिंसक अपने पापों से कष्ट पाते हैं। समदर्शीजन भय से मुक्त हो जाते हैं।

३२.–संत-भगवन्त सद्भाव एवं सेवा से सन्तुष्ट होते हैं तो बिना माँगे ही आशीर्वाद की प्राप्ति होती है। सेवा धर्म कठिन है। सेवा का अवसर भगवान की कृपा से मिलता है।

३३.–प्रभु की कृपा से प्रयाग सार्वकालिक तीर्थ है। मुदमंगलमय सन्त समाज जंगम तीर्थराज है, जो स्थावर से उत्तम फल देता है। राम भक्ति गंगा, ब्रह्म विचार सरस्वती है। विधि निषेधमय कलिमलहरनी श्रीयमुना जी हैं। विश्वास अक्षय वट है।

३४.–परमात्मा की असीम अनुकम्पा से यत्र तत्र सर्वत्र मंगल हो। **'सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः।'** बालक को दत्त भगवान ने गुरु माना। बाल स्वरूप श्रीराम का ध्यान सर्वोत्तम है। भगवान श्रीसीताराम, श्रीराधाकृष्ण, श्रीगोपेश्वरनाथ, श्रीबाँकेबिहारी, श्रीद्वारिकाधीश बालक का मंगल करें, बालक चिरंजीवी हो। सत्यवादी, धार्मिक हो। स्वस्थ रहे।

३५.–**'जो अपराध भगत कर करई। रामरोष पावक सो जरई।'** अपना काम बनाने के लिए दूसरों का काम नहीं बिगाड़ना यह सज्जन का स्वभाव है।

३६.–भगवान की कृपा से सत्संग चलता रहे। भगवन्नाम संकीर्तन करते रहें। शनिवार मंगलवार को श्रीहनुमान चालीसा का पाठ करते रहना चाहिए। बालकों को कंठस्थ हो जायगा। बालकों को कुछ चौपाईयाँ, कुछ दोहे, कुछ श्लोक जो सरल हों उन्हें कंठस्थ करा देना चाहिए। छोटे स्त्रोतों का पाठ करें वे सब बालक निर्भय निश्चिंत हो जायेंगे।

३७.–वर्तमान समय में परिवार नियोजन का प्रचार-प्रसार भारत सरकार कर रही है उस पर विदेशी दबाव है। गर्भहत्या बड़ा भारी पाप है। प्रभु इच्छा से जो संतानें प्राप्त होनी हैं उनमें बाधक न बनें। संतानें अधिक होगीं तभी सेना में, पुलिस में भेजा जा सकता है। कई देशों ने संख्या घटाकर हानि का, राष्ट्रक्षति का अनुभव किया। वर्तमान में हिन्दू संख्या घट रही है, मुसलमान-ईसाई आदि की संख्या बढ़ रही है। भविष्य में

देश का शासन मुसलमानों के हाथ में जायेगा। हिन्दू संस्कृति का सर्वथा विनाश हो जायेगा। संयम से संख्या घटाइये कृत्रिम उपायों से नहीं।

३८.–विग्रह सप्त पुरी में अयोध्यापुरी को मस्तक कहा गया है। अवन्तिका को पाद कहा है, मध्य काँचीपुरी है। द्वारका को नाभि प्रदेश कहा गया है। वाराणसी को नासिका कहते हैं। मथुरा ग्रीवा है। पुरीमय विग्रह सनातन धर्म की मूर्ति है। सभी पुरियों की विशिष्ट महिमा है।

३९.–सत्य, दया, क्षमा, अहिंसा, सच्चाई का यथाशक्ति पालन करने का पूर्ण प्रयत्न करते रहें। इसके बिना आत्म कल्याण नहीं होगा। परस्पर वैष्णवों में प्रेम बना रहे। सभी सन्मार्ग पर चलें। सभी सुखी रहें, ऐसा प्रयत्न करते रहना चाहिए। प्रभु सबका कल्याण करें। समय से वर्षा हो, सुकाल बना रहे। धर्म की जय हो। अधर्म का नाश हो। जय श्रीसीताराम।

४०.–वर्तमान कलिकाल में तमोगुण की वृद्धि हो रही है। भ्रष्टाचार बढ़ रहा है। दुष्ट प्रसन्न हैं। संत, गाय, ब्राह्मणों को कष्ट है। यह कलियुग का धर्म है इसलिए भगवान भी सहन कर रहे हैं। अपराध का दण्ड ईश्वर शीघ्र तत्क्षण न देकर समय पर देता है।

हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश ये दैव के अधीन हैं, हम इनको रोक नहीं सकते हैं। बिना इच्छा किये ही दु:ख की प्राप्ति होती है, ऐसे ही बिना इच्छा किये सुख की भी प्राप्ति हो जाती है। यदि जन्म मिला है तो मरण भी निश्चित ही है। अत: अपने धर्म का, कर्तव्य का पालन अवश्य करते रहना चाहिए। जितनी अच्छी-बुरी घटनाएँ घटें उनसे शिक्षा लेकर अपने ज्ञान-वैराग्य को, भक्ति को सुदृढ़ करना चाहिए। घबड़ाने से संकट दूर नहीं होता है। प्राणी के मन में यदि धैर्य है, ईश्वर में विश्वास है तो उसे दु:ख नहीं व्याप्ते हैं। वह निर्लेप रहता है। अवतार लेकर भगवान कष्ट भोगते हैं। शिक्षा देते हैं।

४१.–**'स्त्रियो यत्र पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:।'** जहाँ-जहाँ पर स्त्रियों का सन्मान होता है वहाँ पर देवतागण विहार करते हैं। जहाँ पर महिला जगत का अपमान होता है वहाँ-वहाँ तामसी दैत्य विहार करते हैं। स्त्री से तात्पर्य माताएँ, बहिनें, लड़कियाँ इनका सन्मान। सन्मान=आदर, भोजन वस्त्र प्रदान मात्र आदर नहीं है। उनके चरित्र की

रक्षा, उनके प्रति दुर्भाव का न होना। हर संकट को सह कर पतिव्रता के पात्यव्रत की रक्षा करना पुरुषों का धर्म है। स्वयं नारी जगत अपने को सुरक्षित रक्खे। इसलिए धर्म शास्त्र ने स्त्री को स्वच्छन्द घूमने की आज्ञा नहीं दी है। **'पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। पुत्रस्तुस्थविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्रयमर्हति।'** कुमारावस्था में पिता, विवाह के बाद पति उसके बाद पति का यदि अभाव हो तो पुत्रों को माता की रक्षा करनी चाहिए अर्थात् अनुशासन में रखना चाहिए जिससे उनकी पवित्रता नष्ट न हो। पिता-माता से बढ़कर पूज्य कोई दूसरा नहीं है। दोनों में माता का नाम पहले है। **'मातृ देवो भव पितृ देवो भव।'** माता को आराध्य देवता, पिता को आराध्य देवता मानना चाहिए, यह वेद शास्त्र का उपदेश है। माता-पिता गुरु हैं, उसके बाद अक्षर का उपदेशक गुरु है। जो वर्ण माला का बोध कराता है। उसके बाद गायत्री उपदेशक, पुनः भक्ति-ज्ञान का उपदेष्टा गुरु सद्गुरु है। उसी के द्वारा साधक का आत्यान्तिक कल्याण होता है।

ईश्वरावतार व्यासजी ने नारद को, नारद स्वयं अवतार है, उन्होंने सनकादिकों को, सनकादिकों ने हंस भगवान को गुरु माना। कृष्ण जगतगुरु हैं उन्होंने गर्ग से गायत्री मंत्र लिया और उज्जैन गुरुकुल में रहकर वेद-वेदांग, चौसठ कलाओं की शिक्षा प्राप्त की। जहाँ से शिक्षा मिले उसी को गुरु माना जाय।

४२.-अनाधिकार चेष्टा करना ठीक नहीं है। जिसे कीर्तन में अश्रद्धा है ऐसे व्यक्ति के आने से कीर्तन में आनन्द कम हो जाता है। द्वेषी व्यक्ति के आने से सत्संग का आनन्द कम हो जाता है।

४३.-नाम का प्रभाव पड़ता है। यति नामक ययाति के ज्येष्ठ पुत्र ने राज गद्दी स्वीकार नहीं की और कहा मेरा नाम यति है, यति का अर्थ सन्यासी होता है, अतः मैं यति बनकर जीवनयापन करुँगा।

४४.-सभी के मंगल कल्याण को मनाने वाले का मंगल होता है।

४५.-कार्तिक मास की सेवा श्रीकृष्ण प्रेमप्रदायिनी मंगलमयी है। शरीर से जो कार्य सम्भव न हो उसे यदि सच्चे मन से किया जाय तो भी महान फल मिलता है। अन्तिम पाँच दिन (एकादशी से कार्तिक की पूर्णिमा तक) ही स्नान व्रत, तुलसी पूजन आदि कर लें तो उसे पूरे मास व्रत का फल मिलता है। मंदिर की पुताई करने से उत्तम लोक की प्राप्ति होती है।

४६.—वृन्दावनेश्वरी राधारानी की हम सबों पर ऐसी कृपा हो कि सद्बुद्धि बनी रहे, आवे। वे अपने नाम, रूप, लीला, धाम की भक्ति प्रदान करें। वैष्णवों में प्रेम रहे। परोपकार की भावना दृढ़ रहे।

४७.— **मंगल मूरति लाड़ली मंगल मूरति लाल।**
मंगल मूरति सहचरी मंगलमय सब काल॥

स्वस्तिमान श्रीनयन कुमार जी के जन्म दिन ११/९/९८ को मंगलमय आशीर्वाद।

राधाकृष्ण मंगल की मूर्ति हैं, उनका नाम मंगलमय है, उनकी लीला मंगलमयी है। उनकी सेवा में रहने वाले ग्वाल-बाल गोपीजन मंगलमय हैं। इनकी कृपा से स्वस्तिमान नयन कुमार का मंगल हो। श्री नयन कुमार के ज्ञान की कृष्णगोविन्द रक्षा करें। श्री नयन कुमार के सम्पूर्ण अंग प्रत्यंग की रक्षा श्रीराधारानी करें।

ध्रुव बालक का दर्शन करने प्यारवश नारायण भगवान पधारे। बालक की सरस्वती सोयी थी। वह स्तुति नहीं कर पा रहे थे। अपना पाञ्चजन्य शंख ध्रुवजी के कपोल पर स्पर्श करा दिया तो सरस्वती जाग गई। ध्रुवजी ने स्तुति की। वे भगवान चिंरजीव नयन कुमार की वाणी की, विद्या की रक्षा करें।

सत्य, दया, क्षमा, सदाचार, सत्संग की प्राप्ति नयन कुमार को होवे। राधारानी की कृपा दृष्टि नयन कुमार के ऊपर बनी रहे।

हे गोपाल, हे गोविन्द, हे मदनमोहन, हे श्यामसुन्दर, हे वृन्दावन बिहारी आप नयन कुमार पर कृपा करें।

यदि श्रीकृष्ण मंगलमय हैं तो नयन कुमार का सर्वदा मंगल हो।

श्रीजमुनाजी की दिव्य धारा नयन कुमार का मंगल करे।

श्रीराधावल्लभ, राधारमण, राधादामोदर, राधाश्यामसुन्दर, नयन कुमार का सदा मंगल करें।

ग्राह से गजेन्द्र की रक्षा करने वाले चक्रसुदर्शनधारी चि० नयन कुमार का मंगल करें।* जय जय श्रीराधे।

४८.—ईश्वर के सम्बन्ध में अनुभव उन्हीं को होते हैं जो लोग सत्य, दया, क्षमा, अहिंसा, अचौर्य आदि सद्गुणों को धारण करके संयमित जीवन बिताते हैं। ब्रह्मा का कार्य सृष्टि बढ़ाना है यह रजोगुणी कार्य है। शास्त्र मर्यादा का पालन करते हुए स्व पत्नी में सन्तान उत्पन्न करने से ब्रह्माजी प्रसन्न होते हैं। शिवजी सृष्टि के संहारकर्ता है। दूसरा

*चि. श्री नयनकुमार जी बाल्यावस्था में अतिशय रुग्ण हो गये थे। चिकित्सकों को उनके जीवन की कोई आशा नहीं थी। ऐसे में सद्गुरुदेव श्री महाराजजी ने इस पत्र के रूप में अपना अमोघ आशीर्वाद भेजकर उन्हें जीवन प्रदान किया। श्री नयनकुमार जी वर्तमान में मुंबई में कार्यरत हैं।–सम्पादक

कोई संहारकर्ता संहार कार्य करके शिव को प्रसन्न नहीं कर सकता है क्योंकि उसे अधि कार नहीं है। कभी-कभी प्राणियों में प्रवेश करके स्वयं शंकर ही संहार कार्य करते हैं। विष्णु भगवान स्वयं सत्त्व प्रधान हैं, पालन करना सात्विक कार्य है। जो कोई प्राणियों का पालन करता है वह विष्णु का प्रतिनिधि है विष्णु उस पर प्रसन्न हो जाते हैं। अन्न, जल, औषधि, विद्या, ज्ञान-भक्ति का दान करके जो प्राणियों की सेवा करता है वह विष्णु लोक को प्राप्त करता है। इनमें विद्या, भक्ति, ज्ञान का दान सर्वश्रेष्ठ है। सन्मुख आये व्यक्ति को जब कोई जय श्रीसीताराम, जय श्रीराधेश्याम आदि प्रभु के नामों का उच्चारण करके अभिवादन करता है तो दूसरा भी नाम लेता है, नाम लेना भक्ति का मुख्य अंग है इस प्रकार भक्ति का दान होता है। भक्ति प्रचार के साधन सत्संग, कीर्तन, पूजन आदि का आयोजन भक्ति का दान है। साधक को साधन में सुविधा देना जिससे वह भजन-साधन कर सके यह भी भक्ति का दान है। जो वस्तु योग्य पात्र में दी जाती है, जिसके देने में फल की आकांक्षा नहीं रहती है, वह निष्काम दान अति उत्तम है। निष्काम दानादि करके कर्म को जब भगवान के लिए अर्पण कर दिया जाता है तब उसका अनन्त फल होता है। जिसके अन्न, वस्त्र से पुष्ट होकर साधक भजन-साधन करता है तो उसका आधा फल दान दाता को मिल जाता है। श्रद्धा प्रधान है। विशिष्ट श्रद्धा से किया गया थोड़ा दान भी बहुत फल देता है। दानादि सत्कर्मों के बाद मन में आया अहंकार कर्म का नाश कर देता है।

४९.-ईश्वर की कृपा जीवों पर सदा बरसती रहती है। राग-द्वेष रखने वाले विमुख प्राणी उसका अनुभव नहीं कर पाते हैं। शरणागत भक्त, शान्त को सदा प्रभु कृपा का अनुभव होता है।

५०.-प्रभु जैसे रक्खें वैसे रहना है। रामजी का बड़ा भारी वात्सल्य है। मुझ दुष्ट को सन्त बनाकर, मुझ मूर्ख को विद्वान् बनाकर मेरी पूजा प्रतिष्ठा कराई। इस योग्य मैं नहीं था, अब भी नही हूँ। **प्रभु अपने नीचहु आदरहीं**। भक्तवत्सल ही नहीं जीववत्सल प्रभु हैं।

५१.-एक सन्यासी की कुटी के सामने एक ऐसी स्त्री का घर था जो रूपवती परपुरुषगामिनी थी। लोग उसके घर आते तो सन्यासी एक पत्थर उसके द्वार पर रख देते। पत्थरों का ढेर देख कर उसने सन्यासी से पूछा तो सन्यासी जी ने कहा कि यह

तेरे पापों का पहाड़ है, मरने पर यह पत्थर गले में बाँधकर तुझे नरक में डुबा देंगे। यह सुनकर उस स्त्री के मन में बड़ा भारी पश्चाताप हुआ। मर गई। थोड़े दिन बाद सन्यासी जी भी मरकर जमराज के यहाँ गए। सन्यासी जी को नरक मिला और उस स्त्री को स्वर्ग। पूछने पर यमराज ने बताया कि आप उसके पापों की गिनती करते थे अतः आपको पाप लगा और नरक मिला। उसने अपने पाप को जाना तब उसे दुःख हुआ। पश्चाताप से पापों का प्रायश्चित हो गया। प्रभु से क्षमा याचना की तो स्वर्ग मिला। दूसरे के पापों-पुण्यों का निर्णय करने वाले आप कौन हैं? अपने पापों की आलोचना करो दूसरे के पापों की नहीं। जय श्रीराम।

५२.—श्रीहनुमान जयंती चैती पूर्णिमा को होती है। हनुमत् कुञ्ज में भी पूजन कीर्तन करके हनुमत् जयंती मनावेंगे। भक्तों को भगवान तक किसी कामना को लेकर जाने की आवश्यकता नहीं है। भगवान के द्वार पर ही सब मनोरथ हनुमानजी ही पूर्ण कर देते हैं। साधु सन्त के वे रक्षक हैं तब हम अपने में साधुता लाने का प्रयास करें। साधु-सन्त की तरह के विचार-आचार, साधु-सन्त की तरह ही लोगों से व्यवहार व्यापार करें तब बिना प्रार्थना किये ही अपने स्वभाव से ही हनुमानजी रक्षा करेंगे। यदि हम में असुर भाव है हम दुष्टों के अनुसार आचरण करेंगे तो प्रार्थना करने पर भी हमारी रक्षा नहीं होगी। इसलिए-

कबहुक हौं यहि रहनि रहोंगो।

× × × × ×

सन्त सुभाव गहोंगो॥

इस पद के गान, पठन, मनन से साधुता आवेगी।

५३.— दर्शन करते समय हमारी यही भावना थी कि हम तो आपको देख नहीं सकते हैं। दृष्टि में ऐसा सामर्थ्य नहीं है पर आप दयामय होने के कारण हमको देख लीजिए। जीव को कृपा करके आप देख लें अथवा जीव आपका दर्शन कर ले, दोनों का एक ही लाभ है। हमारे साथी दर्शन करके तृप्त नहीं हुए।

पिता-माता को परमेश्वर मानकर उनकी सेवा करने वाले भक्तवर पुण्डलीक को भगवान ने दर्शन दिया, अतः सभी को अपने पिता-माता के चरणों में सायं-प्रातः प्रणाम करना चाहिए।

ज्ञानेश्वर विष्णु के अवतार थे। उनके दोनों भ्राता–ब्रह्मा शिव थे, मुक्ता बाई योग माया थी। यहाँ ज्ञानेश्वरी घर–घर पढ़ी जाती है। भक्तों में आमतौर से भक्ति है। नामदेव, ज्ञानदेव, तुकाराम, एकनाथ इनका नित्य ही वन्दन होता है।

५४.–वर्तमान में निर्गुण सगुण की उपासना की दो धाराएँ हैं। श्रीरामानन्द सम्प्रदाय में दोनों धाराएँ प्रचलित हैं। कम से कम पाँच सम्प्रदाय निर्गुणी हैं और वे रामानन्द सम्प्रदाय की शाखाएँ हैं। समन्वय सिद्धान्त का पोषण रामानन्दी सन्त करते हैं। सभी नाम, रुप, धाम माननीय हैं। भगवान भगवान सब एक हैं। सन्त सन्त सब एक हैं। आचार्य आचार्य सब एक हैं।

दार्शनिक भेद केवल साधकों के मस्तिष्क भिन्नता के कारण है। उदारता से विवेकपूर्वक विचारने पर भेद द्वेषकारक नहीं है। सबको सबका समर्थन करना चाहिए। आस्तिक सम्प्रदायों में मतभेद को दूर कर संगठित रहना चाहिए।

५५.–कन्या सत्यवती के गर्भ से महर्षि पराशर के द्वारा वेदव्यास का जन्म निन्दनीय नहीं है, क्योंकि कन्यात्व नष्ट नहीं हुआ। दस मास गर्भ भार ढोना नहीं पड़ा। ऋषि के अति तेजस्वी वीर्य एवं सत्य संकल्प से क्षण मात्र में वेदव्यास प्रकट हो गये तथा तपस्या करने के लिए प्रवृत्त हो गये। बाल्यावस्था प्राकृत बालक की तरह नहीं हुई। जन्म जात ज्ञानी भक्त हुए अतः नाम मात्र का भी दोष नहीं है।

इसी प्रकार कन्या कुन्ती में सूर्य से कर्ण का तत्क्षण जन्म हुआ। कुन्ती का कन्यात्व नष्ट नहीं हुआ। सूर्य के संकल्प से कवचधारी कर्ण का जन्म हुआ। इसमें दोष का लेश नहीं।

पाण्डु ने मृगरूपधारी मैथुन में प्रवृत्त ऋषि को मार डाला। उन्होंने शाप दे दिया अतः पाण्डु सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकते थे। उन्होंने कुन्ती को आज्ञा दी। पति पाण्डु की आज्ञा से देवों के अंशों से पाण्डवों का जन्म हुआ। कुन्ती का पतिव्रत नष्ट नहीं हुआ। पति आज्ञा के प्रताप से कुन्ती प्रातः स्मरणीय है। अहिल्या, द्रौपदी, तारा, कुन्ती, मन्दोदरी पंच कन्यायें हैं। श्रीसीताराम।

५६.–प्रत्येक पुरुष लक्ष्मी की कामना करता है। ऋषियों ने प्रार्थना की–मुझे अनपगामिनी लक्ष्मी चाहिए अर्थात् जो लक्ष्मी मेरे पास आवे, वह स्थायी रूप से रहे, मेरे

पास से कभी न जाय। इस वाक्य पर विचार करें तो ज्ञात होगा कि जो भौतिक सम्पत्ति है वह स्थायी नहीं हो सकती है। आवेगी और जावेगी। तब अनपगामिनी लक्ष्मी का अर्थ होगा कि जो लक्ष्मी भगवान को नहीं छोड़ती है वह लक्ष्मी मेरे पास आवे। जिस लक्ष्मी को पाकर भगवान को भूल जाना पड़े तो वह लक्ष्मी नहीं चाहिए। अनपगामिनी लक्ष्मी आवे ऐसा कहकर ऋषि प्रार्थना करते हैं कि मेरे पास वह सम्पत्ति आवे जिसका कभी नाश न हो। सोना, हाथी, घोड़ा आदि मिलें फिर उनका नाश न हो, यह सकाम भावना का अर्थ भी ठीक है पर ऋषि का तात्पर्य है कि भौतिक सम्पत्ति नाशवान है वह तो छूटेगी। चाहे हम छोड़कर चले जावें चाहे वह हमको छोड़कर चली जाय। जिस लक्ष्मी का नाश नहीं है वह है-आध्यात्मिक सम्पत्ति। इसके रहने पर ज्ञान से युक्त ऐश्वर्य होगा, धार्मिक आचरण से सुख होगा, मन स्वस्थ रहेगा। धन धान्य ऐसा होगा जिससे दान और प्रभु सेवा सम्पन्न होगी। जय होगी अर्थात् काम क्रोधादि के ऊपर विजय होगी। ऐसी लक्ष्मी को प्राप्त करने की इच्छा करनी चाहिए। जिस लक्ष्मी को पाकर विवेक नष्ट हो जाता है ऐसी लक्ष्मी को प्राप्त करने की इच्छा नहीं करनी चाहिए। विवेक के नष्ट होने पर अनेक अपत्तियाँ आ सकती हैं। लक्ष्मी गुणों पर अर्थात् अच्छे उत्तम गुणों पर रीझकर गुणवान के पास स्वयं आती है।

तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ। धरमशील पहि जाहि सुभाएँ॥ (मानस-बाल० २९३/३)

धर्मशील पुरुष के पास सुख सम्पत्तियाँ बिना बुलाये ही पहुँच जाती हैं। ऐश्वर्य की तीन गतियाँ कही गईं, दान-भोग-नाश। **'सो धन धन्य प्रथम गति जाकी।'** (मानस-उत्तर० १२६/७) दान में धन की गति उत्तम है। अपने भोग में आना मध्यम है। जो दो गतियों से बचाकर संग्रह ही संग्रह करता है उसका सदुपयोग नहीं करता है उसका नाश संभव है। इसलिए जो दान करते समय प्रसन्न रहते हैं वे प्रभु के कृपापात्र हैं। जो लक्ष्मी, नारायण के साथ आती हैं वह गरुड़वाहिनी हैं सद्बुद्धि देने वाली हैं। जो उलूकवाहिनी हैं वह विवेक को नष्ट करती हैं। लक्ष्मी भक्ति स्वरूप है, भक्ति लक्ष्मी ही हैं। ऐसी ही लक्ष्मी को प्राप्त करने की इच्छा करनी चाहिए।

५७.-माया से परे परमात्मा अपनी शक्तियों द्वारा इस सृष्टि की रचना करके उसमें प्रविष्ट हो जाता है अतः वह सर्वदा सब को मिला हुआ है। लेकिन इस विश्वास

के बिना ईश्वर के निकट रहकर भी प्राणी दु:खी हैं। ज्ञानी विश्वासी सुखी है। जैसे मनुष्य स्वप्न में अपने द्वारा रचित संसार में विविध कर्मों को करता है उसी तरह ईश्वर ने अपने आप में माया से जगत की रचना कर ली है और उसमें प्रवेश करके अनेकों रूपों से स्वयं ही प्रकाशित हो रहा है। जो लोग कथा-कीर्तन एवं भगवत् प्रतिमाओं का पूजन-वन्दन करते हैं उनका हृदय शुद्ध हो जाता है। उसमें प्रभु प्रकाशित होकर भक्त को आनन्दित करते हैं। जिनका चित्त अहंकारवश लौकिक-वैदिक कर्मों में लगा है वासनावश ऐसे लोगों के हृदय में रहकर भी प्रभु उनसे बहुत दूर हैं। सत्संग-हरिचर्चा के द्वारा जिनका अन्त:करण शुद्ध है उनके लिए चित्तवृत्ति से पकड़ में न आने वाला परमात्मा अत्यंत निकट है।

५८.-मोह और अहंकार के कारण किसी शरीर को कोई राजा श्रेष्ठ माने पर उसका यह मानना मिथ्या है। शरीर में खाया पिया अन्न-जल अपवित्र हो जाता है, शरीर की नश्वरता इसी से सिद्ध है। उत्तम से उत्तम खाद्य उत्तम से उत्तम पेय सब शरीर के संयोग से मल मूत्र हो जाते हैं। ऐसे नाशवान् शरीर के लिए किसी जीव को पीड़ा पहुँचाना पाप ही है। नाशवान् शरीर से अविनाशी प्रभु की सेवा, पर उपकार यदि बन जाय तो शरीर की सार्थकता है। जितनी वस्तुएँ हैं वे और जीव सब दोषमय हैं पर प्रभु को समर्पित होने पर शुद्ध प्रभु के तुल्य पवित्र हो जाते हैं अत: स्वयं आत्मसमर्पण करना चाहिए और जो समर्पित हैं उनका आदर करना चाहिए। अपने आश्रित को वात्सल्यवश प्रभु अपने तुल्य ही बनाना चाहते हैं तथा बना ही लेते हैं। वैष्णव धर्म की, वैष्णव की, सत्संग-कीर्तन की बहुत बड़ी महिमा है। उसे हम कहते सुनते हैं पर मानते नहीं हैं। हृदय से उस महिमा में विश्वास नहीं करते हैं।

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥ (मानस-अयो० १२६/३)

जो जानना चाहते हैं, प्रभु अपने रूप आदि का उन्हें ज्ञान करा देते हैं तब वह जीव भी सच्चिदानन्दमय हो जाता है।

'जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुना सागर कीजिअ सोई॥' (मानस-अयो० २६८/२)

५९.-जब हम किसी के साथ अन्याय करके अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं तब हमारा मन बिगड़ जाता है। मन-बुद्धि का अशुद्ध हो जाना बहुत बड़ी हानि है।

उस मन में ईश्वर के गुण रूपों का दर्शन नहीं होता है। **निर्मल मन जन सो मोहि पावा।** (मानस-सुं० ४३/५) निर्मल मन में श्रीकृष्ण विराजते हैं।

६०.—किसी ग्रंथ को पढ़ते हैं अथवा सन्तों के उपदेश को सुनते हैं तो संसार असत्य है और संसार भगवान का स्वरूप है। जैसे **'दुःखालयमशाश्वतम्'** (गीता) यह संसार दुःख का स्थान है और **'वासुदेवः सर्वमिति'** (गीता) सब कुछ भगवान ही हैं। अधिकारी भेद से दोनों वाक्य ठीक हैं। ज्ञानी साधक के लिए संसार को दुःखालय कहा गया है। इससे वह संसार से अलग रहेगा किसी से सम्पर्क नहीं करेगा। संसार में आसक्ति के परिणामों का सबको अनुभव है। आसक्ति से शरीर त्याग के बाद भी संसार में आना पड़ता है और दुःख उठाना पड़ता है। जो संसार से सुख चाहता है उसके लिए दुःख ही मिलता है। जो भावुक भक्त हैं वे संसार को प्रभु का स्वरूप समझते हैं क्योंकि यह प्रभु से प्रकट हुआ है। संसार का बीज ईश्वर है, अतः वृक्ष भी ईश्वर ही है। ज्ञानी साधक अपने सुख के लिए मोक्ष चाहता है। भक्त भगवान को प्रसन्न करने के लिए उनसे प्रेम करता है, अपना सर्वस्व अर्पण करता है। प्रभु से कुछ नहीं चाहता है। ईश्वर प्रेम का भूखा है। भक्त के प्रेम को स्वीकार करता है और भक्तों से प्रेम करता है। ईश्वर को ज्ञान की भूख नहीं है। ज्ञान की पूर्णता होने पर भक्ति अटल हो जाती है तब वह नित्य प्रभुमय संसार को देखता है।

६१.—एक लड़की सुदामा कुटी में अपने भाई के साथ आई है जो भोजनादि बनाकर भगवदर्पण करती है। कई दिनों से खाती पीती नहीं है। एक बाई मेरे यहाँ ठहरी वह भी कच्चा शाक फल, वह भी थोड़ा खाकर रहती है। भोजन पर संयम सात्विकता का सूचक है। इसने कुछ समय नीम के नीचे रहकर एक गिलास दुग्ध से जीवन धारण किया। आज भी जगत में एक से बढ़कर एक संयमी है।

६२.—यदि सच्ची बात कहूँ तो वर्तमान जगत के प्राणी प्रायः इस योग्य नहीं हैं कि मैं उनके सामने कुछ कहूँ। जैसे गायक के कण्ठ से शुद्ध स्वर तब निकलता है जब साज-बाज मिले हों। बेसुरे या कनसुरे साज-बाज के साथ उसका राग भी बेसुरा हो सकता है। यदि अधिकारी सामने बैठा हो तो अपने आप हृदय के अनुभव का

उद्‌गार होता है। एक बार मैंने कहा कि मेरे निकट कोई है ही नहीं अत: मैं क्या कहूँ? लोगों ने कहा कि पच्चीस व्यक्ति बैठे हैं फिर आप ऐसा क्यों कहते हैं? जो मन से, अन्त:करण से निर्मल एकाग्र है वह मेरे पास है शेष लोग दूर हैं। ऐसों के सामने भगवच्चर्चा समय के सदुपयोग के लिए तथा मनोरंजन के लिए होती है। सकाम वक्ता हो तो उसके लौकिक स्वार्थ की सिद्धि हो जाती है पर विशुद्ध पारमार्थिक लाभ नहीं होता है। नहीं तो एक ही बार के सत्संग से जीव कृतार्थ हो जाय।

६३.–कई मुसलमान लोग नानक साहब को मक्का मदीना ले गए। समदर्शी सिद्ध संत चले गए। लोगों का विचार था कि इन्हें नमाज पढ़ाकर मुसलमान बना लेंगे। सब लोग नमाज पढ़ने लगे। आगे आगे पेशे इमाम बोलता उसके पीछे सभी बोलते, जैसे वह सिजदा करता वैसे वैसे लोग सिजदा करते, पर श्रीनानक जी मौन ज्यों के त्यों खड़े रहे। इन्होंने पेशे इमाम के वाक्यों को दुहराया नहीं साथ में सिजदा भी नहीं किया। इसे कुफ्र मानकर नानक साहब को काफिर माना और मौलवी ने कहा–इससे अल्लाह ताला का अपमान हुआ है, इसको कत्ल कर देना चाहिए। नवाब भी नमाज पढ़ने में था उसके सामने पूछा गया कि आपने नमाज क्यों नहीं अदा किया। नानकजी ने कहा कि मैंने सब कुछ किया परन्तु पेशे इमाम की तरह या तुम लोगों की तरह नहीं। पेशे इमाम शरीर से यहाँ थे पर मन से नहीं। मन से घर में बीबी बच्चों के साथ मलीदा बनाने की सोच रहे थे। इमाम से पूछा गया तो उन्होंने स्वीकार किया। नवाब ने नमाज पढ़ी कि नहीं? पढ़ी तो कैसी पढ़ी? इसके उत्तर में श्रीनानक जी ने कहा कि नवाब भी नमाज में एकाग्र नहीं था यह सोच रहा था कि घोड़े मँगाने हैं कन्धार से मगाऊँ या काबुल से? नवाब ने नतमस्तक होकर स्वीकार किया कि सत्य है। सभी लोगों ने श्रीनानक जी को कंधे पर उठाया और कहा आप औलिया फकीर हैं आपके लिए सब दिशाएँ खुली हैं चाहें जहाँ विचरण करो।

६४.–सत्संग की महिमा श्रीभागवत आदि शास्त्रों में कही गई है। सत्संग से भगवत् प्राप्ति होती है, निश्चय होती है। सभा में बैठकर भक्तों के, विद्वानों के मुख से कुछ सुनना, भगवत् कथाओं, गुणानुवादों का कथनोपकथन सत्संग है। सज्जनों का संग करने से सत्य, सदाचार, ईश्वर में विश्वास आदि शुभ गुणों का उदय होता है। श्रवण

से यदि विशिष्ट गुणों का उदय न हो, केवल श्रवण मात्र हो, उससे मनोरंजन का लक्ष्य हो तो लाभ कम होता है। परन्तु नियम से नित्य सत्संग अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहेगा। इसके बाद संत ने कहा कि-सत् के संग का नाम सत्संग है। सत् के संग के लिए असत् का त्याग करना पड़ेगा। सत् ही सत्य है। वाणी का सत्य ईश्वर को प्रसन्न करता है। मिथ्यावादी ईश्वर से दूर है। मुख से जो कुछ कहो वही करो। उससे जरा भी आगे-पीछे मत जाओ। केवल यही समझ में आ जाय तो जीवन सफल हो जाय। सत्यवादी मनुष्य का हृदय निर्भयता, दया आदि से पूर्ण हो जाता है। अतः मिथ्या भाषण करके किसी प्रकार का लाभ नहीं उठाना चाहिए।

भागवत में शुक्राचार्यजी ने जो मिथ्या का समर्थन किया वह आपद्धर्म है। स्त्री के साथ, हँसी में, विवाह में, जीविका के लिए झूठ बोलना निन्दनीय नहीं परन्तु कोई उस परिस्थिति में सत्य भाषण करे तो वह वंदनीय होगा और भगवत् को प्रसन्न करने वाला होगा। सत्य भाषण से यदि जीविका नष्ट हो जाय, प्राण ही चले जावें तो भी हानि नहीं है। लौकिक हानि के बाद पारलौकिक महान लाभ तो होगा।

६५.—अरब देश का एक मुसलमान बालक परदेश को चला। उसकी माता ने पाँच सोने की मुहरें उसके पहनने के कपड़े में सिल दीं और कहा कि समय पर इन मुहरों से काम चलाना। माताजी ने आशीर्वाद के साथ अन्तिम उपदेश दिया कि बेटा! झूठ मत बोलना, झूठ बोलने से खुदा नाराज हो जाता है। सच बोलने से खुश हो जाता है। माता को प्रणाम कर बालक चला और ऊँटों के काफिले का साथ पकड़ा। चलते-चलते संयोगवश लुटेरों ने काफिले को लूटा। उसके बाद अलग खड़े इस बालक से डकैतों के सरदार ने पूछा-क्यों रे लड़के! तेरे पास तो कुछ नहीं है? लड़के ने निर्भीकतापूर्वक कहा-हाँ, मेरे पास पाँच मुहरें हैं। ऐसा कहते कहते मुहरें कपड़े से निकाल कर दिखा दी। सरदार ने उसकी सत्यवादिता और निर्भयता से सन्तुष्ट होकर पूछा कि तूने मोहरों को झूठ बोलकर क्यों नही छिपाया और तू निर्भय क्यों है? उसने अपनी माता के उपदेश को कह सुनाया। सत्य भाषण से ईश्वर की प्रसन्नता है तब भय किसका? मिथ्या भाषण से ईश्वर नाराज हो जाय तो सर्वत्र भय ही भय है। यह सुनते ही उस डकैत ने बालक के चरणों में प्रणाम करके कहा-तू मेरा गुरु है, आज से मैंने डकैती छोड़ी, बिना उसके छोड़े सत्य

भाषण नहीं होगा। सबका माल वापस कर दिया और साथियों से कहा–सत्य को अपनाओ तो मेरे साथ चलो। झूठ को, डाकाजनी को अपनाओ तो मुझसे दूर हो जाओ। सारे काफिले पर भी इसका अच्छा प्रभाव पड़ा। हम जानबूझकर झूठ बोलते हैं तुच्छ स्वार्थ के लिए और चाहते हैं परमात्मा का ज्ञान और दर्शन। सो कैसे हो सकता है। गो–ब्राह्मण के प्राणों की रक्षा में मिथ्या भी सत्य है, प्रशंसनीय है पर अन्य में शुक्र वाक्यों के अनुसार आपद् धर्म है। झूठ बोलना अनिवार्य नहीं है।

६६.–सात्त्विक विचार, परोपकार की भावना, सत्य, दया, क्षमा आदि से मन–बुद्धि की पवित्रता होती है और भगवान प्रसन्न होते हैं। तीर्थ दो प्रकार के होते हैं– १. मानस, २. भौम। दया, क्षमा, सत्य आदि मानस तीर्थ हैं। भूमि के तीर्थ वृन्दावन, अयोध्या, काशी आदि हैं। मानस तीर्थो के साथ जो कोई भूमि के तीर्थो का सेवनादि करता है उसकी सद्‌गति होती है और उसके मन में भक्ति का उदय होता है।

६७.–ऐश्वर्य ज्ञान से ईश्वर महतो महीयान है और मैं संसारी विषयी तुच्छ जीव हूँ इस भाव के कारण वह ईश्वर को नितान्त अपना नहीं मान पाता है। उक्त मत सर्वथा ठीक ही है। मन की ईश्वर में तल्लीनता ही मुख्य है। ममत्व अपनपौ में होता है। प्रभु हमारे हैं मैं उनका हूँ इसमें संदेह न रहे यह ज्ञान सहज होना चाहिए।

६८.–देवत्व काष्ठ या पाषाण में नहीं होता बल्कि भक्त की भावना में रहता है। योग दर्शन का एक सूत्र है उसका अर्थ है कि सुखी के प्रति मैत्री, दुःखी के प्रति दया, पुण्यात्माओं के साथ प्रसन्नता और पापी जनों के साथ उपेक्षा का व्यवहार करने से चित्त प्रसन्न रहता है। यह पवित्र भावना है। भावानुसार प्राणी भुक्ति, मुक्ति, सद्‌गति, दुर्गति प्राप्त करता है। समुद्र को अंजलि, सूर्य को दीपक दान करने से उनका कुछ हित नहीं होता है, परन्तु वे अपने भक्त की भावना देखकर प्रसन्न होते हैं। इसी प्रकार संत तथा भावग्राही जनार्दन भगवान भी श्रद्धा, सेवा, भक्ति–भाव से संतुष्ट हो जाते हैं। भगवान अपने भक्तों पर कृपामयी दृष्टि रक्खें। श्रीराधे। सर्वेभवन्तु सुखिनः।

६९.–जिस देवता की आराधना करनी हो, उसी देवता का सा स्वरूप धारण करना चाहिए। जो जिसकी आराधना करता है, चिन्तन करता है वह उसी का रूप हो जाता है। जो जिसमें श्रद्धा करता है, वह भी वही है। अदेव देव का अर्चन नहीं कर सकता है। इसका तात्पर्य है कि देव सदृश होकर देव की आराधना करो। अपना इष्ट

जैसे परोपकारी शुद्ध प्रेममय है तो अपने में भी उन गुणों को स्थापित करने की चेष्टा करनी चाहिए। मंत्राक्षरों का प्रत्येक अंग में न्यास करने से शरीर मंत्रमय देवमय होता है। इष्ट के प्रसाद रूप वस्त्र, आभूषण, कण्ठी, तिलक, तत्सम शील स्वभाव आदि को धारण करने से ही आराधना सिद्ध होती है। तात्पर्य दानव वेषभूषा, विचार धारण करने वाला देव की पूजा नहीं कर सकता है। तामसी तान्त्रिक घोर सिद्ध भगवान का चरणामृत नहीं लेते हैं। एक कोई हड्डी या मलिन वस्तु सदा पास रखते हैं तभी उन्हें सिद्धी मिलती है। जो इष्ट सदृश रूप-गुण नहीं धारण करते वे इष्ट की आराधना में सफल नहीं होते हैं। आजकल लोग वैचारिक शुद्धि के बिना ही आराधना करते है अतः असफलता अविश्वास होता है। पार्षद भगवद् रूप होते हैं परन्तु सेव्य और सेवक में सदा भेद बना रहता है, रहना चाहिए उसके बिना भाव ही नष्ट हो जायगा। स्वयं ईश्वर बनकर नहीं, ईश्वर की तरह बाहर भीतर से पवित्र बनकर ईश्वर की सेवा करनी है।

७०.–शास्त्रों में श्रद्धा विश्वास की महिमा है। तुलसीदासजी ने शिव पार्वती को विश्वास और श्रद्धा का रूप बताया है। **'भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।'** (मानस-बाल मंगलाचरण २)कभी-कभी अन्ध श्रद्धा और अन्ध विश्वास से लोग भ्रमित होकर वास्तविक श्रद्धा विश्वास के रूप को नहीं पहचान पाते हैं। विद्या, बुद्धि, विवेक से भी विश्वास का स्थान ऊँचा है। विद्या, बुद्धि, विवेक से जो बात समझ में नहीं आती है उसे विश्वास के द्वारा समझा जा सकता है। नारद ज्योतिष शास्त्रज्ञ थे। विद्या से जाना कि अजर अमर विष्णु इसके पति होंगे। पर विवेक को माया ने हर लिया था अतः उसे अपने पक्ष में लेकर अजर अमर बनने की इच्छा हुई अतः विद्या से विवेक श्रेष्ठ है। विश्वास के दुरुपयोग से बचने के लिए विवेक, बुद्धि, विद्या का सहारा उचित है क्योंकि बुद्धि और विवेक से विरुद्ध विश्वास वास्तविक विश्वास नहीं है। अखाद्य एवं अपेय को प्रसाद कहकर कोई दे तो प्रसाद में विश्वास रखने वाला विवेकी उसे ग्रहण न करे यही उचित है। गुरु वाक्यों में विश्वासी अनुचित उचित का विचार न करें। ऐसे वाक्यों का तात्पर्य यह है कि प्रथम विवेक से गुरु तत्त्व का जो साक्षात् कर चुका है वह उचित अनुचित का विचार न करें। तथाकथित गुरु जिसे स्वयं विवेक नहीं, जिसमें गुरुता नहीं, वह यदि किसी भोले अविवेकी शिष्य से कहे कि मैं ही ईश्वर

रूप हूँ बिना विचारे मेरी बात मानो तो ऐसी स्थिति में मनाने और मानने वाले दोनों ही अन्धकार में प्रवेश करेंगे। इसलिए ऐसा समझना चाहिए कि अज्ञान के साथ जोड़ा हुआ विश्वास वास्तविक विश्वास नहीं हैं अथवा यों कहिए कि यह विश्वास का दुरुपयोग है। दूसरी बात यह है कि निषिद्ध कर्म के साथ विश्वास को जोड़ना भी विश्वास का दुरुपयोग है। जैसे कोई कहे कि मुझे अपेय में, अखाद्य में, हत्या में विश्वास है तो क्या इस विश्वास से उसका कल्याण होगा? कदापि नहीं। भारत का एक वाममार्गी सम्प्रदाय ऐसा ही है वह वेद बहिष्कृत और निन्द्य है। उसे मांस, मदिरा, स्वतन्त्र मैथुन में विश्वास है।

७१.–संतों की सम्मति है कि ईश्वर के संबंध से विश्वास करना चाहिए क्योंकि उसे ज्ञानगिरागोतीत कहा गया है। ज्ञानेन्द्रियों से उसे नहीं जाना जा सकता है। उसे विश्वास से ही जाना, पाया जायगा। ईश्वर की सत्ता में विश्वास, उसकी शक्तिमत्ता, असीम करुणा, न्यायी, हितैषी, जीव का सर्वश्रेष्ठ परमाश्रय है ऐसा विश्वास होना परम आवश्यक है।

७२.–हीरा से जौहरी की, दवा से वैद्य की, मंत्र से गुरु की महिमा अधिक है क्योंकि उसकी महिमा बताने वाले, प्रयोग कराने वाले वे ही हैं अन्यथा हीरा, औषधि, मंत्रों से हमारा कल्याण नहीं हो सकता। परन्तु जौहरी स्वयं हीरा नहीं बन सकता, वैद्य औषधि नहीं हो सकता, गुरु भी मंत्र या ईश्वर अपने को नहीं कहता। मैं ही सृष्टि का कर्ता, माया का अधीश्वर हूँ ऐसा वह नहीं कहता। इस प्रकार गुरु की, आचार्य की महिमा सिद्ध है। **'बिना सर्व त्यागे भवति भजनं नेह सुपते।'** बिना सर्व त्याग के भजन नहीं हो सकता है पर वल्लभाचार्य ने कहा यदि त्याग न कर सको तो उसका श्रीकृष्ण के लिए उपयोग करो। वही एक निर्दोष स्वामी ईश्वर है।

७३.–यात्रा में प्राय: नित्य नियम, नित्य कर्म के बाद चलने, खाने और थककर सोने की इच्छा होती है। दैनिक भजन, पाठ, स्वाध्याय संक्षेप से ही हो पाता है। भावुक सज्जन अपनी भावुकता से तीर्थ में वास्तविक स्नान करते हैं। तीर्थो में जो जलाशय हैं वे प्राय: दूषित जल युक्त हैं वे यात्री को पूर्णरूप से पवित्र नहीं करते हैं परन्तु तीर्थ का तीर्थत्व सदा सुरक्षित है। मथुरा में मधु, लवणासुर, कंस आदि भी हुए, पर उससे

मथुरा की महिमा में कमी नहीं आई। कलि में यवनों की मसजिदें, उनके व्यवहार-व्यापार भी तीर्थत्व को मिटा नहीं सके। यही उसकी दिव्यता का प्रमाण है। धाम नित्य है दिव्य एवं भव्य है इसके स्वरूप का अनुभव कोई-कोई बिरले भावुक ही कर पाते हैं।

७४.—ज्ञानी और भक्त में अन्तर न होते हुए भी ज्ञानी की अपेक्षा भक्त श्रेष्ठ है। प्रभु उसे प्यार करते हैं। ज्ञानी मार्ग भूलता है तो भटक जाता है पुनः उसे अपना मार्ग मिलना कठिन हो जाता है। भक्त यदि मार्ग भूलता है तो उसे भगवान स्वयं रास्ते पर लाते हैं। ज्ञानी गिरता है तो उसका उठना कठिन है। भक्त कदाचित् गिर पड़े तो उसे भगवान उठाते हैं। उसका कारण यह है कि ज्ञानी को अपना बल होता है और भक्त को भगवान का बल होता है। इसलिए भक्त शिशुवत् प्रिय है और ज्ञानी प्रौढ़ पुत्रवत्।

७५.—श्रीराम ने वशिष्ठ एवं विश्वामित्र दोनों को ही गुरुत्व प्रदान कर दोनों के मन से द्वेष दूर किया और परस्पर प्रेम स्थापित हुआ। भगवान धन हैं, भक्त धनी है। धन धनी के अधीन रहता है अतः धन से धनी बड़ा है। भगवान से भक्त बड़ा है। इसमें दृष्टांत बलि और वामन का। दो पग में सारा धन, धनी दो पग से ज्यादा थे पर अपने को एक पग में नपवाकर बड़े हो गए। भगवान हार गये, बँध गए प्रेम बंधन में। धन के इच्छुक को चाहिए कि धनी की उपासना करे।

७६.—भाग० २/१०/२ में भागवत के दस लक्षण कहे हैं। इनमें जो 'दशम्' आश्रय है उसी का ठीक-ठीक निश्चय करने के लिए सन्तजन 'नव' का वर्णन करते हैं। **'कथा इमास्ते कथिता महीयसां।'** अर्थात् जो महापुरुषों की कथाएँ कही गईं वे नव के अन्तर्गत ईश कथा, मनवन्तर आदि ही हैं। इनके बिना दशम जो ब्रह्म उसका अर्थात् आश्रय का निश्चय नहीं हो सकता है। जिस साधन से साध्य की प्राप्ति होती है उसका महत्व साध्य से कम नहीं होता है। साध्य प्राप्त होने पर भी सिद्धजन साधन की उपेक्षा या निन्दा नहीं करते हैं। कुंभनदास को साक्षात् श्रीकृष्ण प्राप्त थे इतने पर भी वे सत्संग चाहते थे। प्रभु ने पूछा सत्संग का फल मेरी प्राप्ति हो गई अब उसकी इच्छा क्यों करते हो? तो कुंभनदास ने कहा कि बिना सत्संग, मिले मिलाए आप खो सकते हो। जिन संत गुरुओं की कृपा से आप मिले हैं उनका आश्रय नहीं छोड़ सकता हूँ। इस पर प्रभु बहुत प्रसन्न हुए। इस सिद्धान्त के अनुसार 'महीयसां कथा' को केवल वाणी विलास या मनोरंजन मात्र नहीं कहा जा सकता है।

७७.–भागवत को ऐसा रस कहा गया है कि जिसमें गुठली और छिलका सरीखी त्याज्य कोई वस्तु नहीं है। माहात्म्य में एक श्लोक एक चरण की भी महिमा कही गई है अतः **'वचो विभूतीर्न तु पारमार्थ्यम्।'** इस वाक्य में वैष्णव विद्वान् इस प्रकार अन्वय करते है कि ज्ञान–वैराग्य का उपदेश करने के लिए ही ये महापुरुषों की कथाएँ कही गई हैं इन्हें आप **'वचो विभूतीः न'** अर्थात् वाणी का वैभव मात्र न समझें तु अर्थात् परन्तु **'पारमार्थ्यम्'** इन्हें परमार्थ तत्त्व से युक्त समझें। इनमें परमार्थ का ही पूर्णरूप से समावेश है।

७८.–अवतार चरित्रों के साथ जो हिरण्यकशिपु, रावण, कंस आदि की चर्चा आती हैं वह भी भगवान से संबंधित होने के नाते पवित्र ही हैं। उसके बिना ईश्वर के दया, क्षमा, पराक्रम आदि का बोध नहीं हो सकता अतः निरर्थक नहीं है। श्लोक १४ के बाद ५ में फिर श्रीकृष्ण की निर्मल भक्ति को प्राप्त करने के लिए निरंतर उन्हीं महापुरुषों के, श्रीकृष्ण के गुणानुवाद को श्रवण करने की विधि कही गई है। अतः निषेधात्मक जो 'न' है वह **'वचो विभूतीः'** से अन्वित है। पारमार्थ्यम् से नहीं। शास्त्रों में ग्रंथियाँ भी होती हैं। कभी उनके तात्पर्य को समझने में भ्रम होता है परन्तु वाक्य का वही अर्थ माना जाता है जिसका पूर्व और पर से विरोध न हो। महापुरुषों के चरित्रों को वाणी का विलास मात्र कहने से वैष्णव सिद्धान्त का मूलोच्छेद हो जाता है।

७९.–भगवान के चरित्रों के संबंध में श्रीतुलसीदास जी का कथन है कि–

'उमा राम गुन गूढ़ पण्डित मुनि पावहिं बिरति।
पावहिं मोह बिमूढ़ जे हरि विमुख न धर्म रति।।' (मानस–अर सो०१)

ठीक शास्त्रों, पुराणों के वाक्य भी ऐसे हैं कि उनसे नास्तिक विमुख अपनी विमुखता, नास्तिकता का ही पोषण करते हैं। इसी से मनमुखी अध्ययन अहितकर और गुरुमुख से पठन हितकर माना गया है। वेद के मंत्रों का अर्थ करने की खुली छूट नहीं है।

८०.–महापुरुषों का भूलकर भी अपमान नहीं करना चाहिए। एक बार सनकादिक श्रीप्रह्लाद जी का दर्शन करने आए। द्वारपाल ने सूचना दी। श्रीप्रह्लाद जी ने कहा–कह दो अभी नृसिंहजी की पूजा कर रहें हैं। द्वारपाल के मुख से उत्तर पाकर सनकादिक

ब्रह्मलोक को चले गए। प्रह्लादजी से उपेक्षा हुई। उन्हें बैठने के लिए भी नहीं कहा गया अतः भक्तापराध बन गया। परिणाम यह हुआ कि प्रह्लादजी की बुद्धि में विकार आ गया। उनका दैत्य भाव जाग्रत हो गया। निरंतर प्रभु को स्मरण करने वाले भक्त प्रह्लादजी के मन में आया कि विष्णु भगवान ने मेरे पिता और पिता के भाई का वध किया मुझे अपना दास बना लिया, यह भी अनुचित किया। मैं तो दैत्य कुल का हूँ, उसकी संहिता के अनुसार विष्णु हमारे शत्रु हैं अब मैं अपने पिता, चाचा की मृत्यु का बदला लूँगा। ऐसा विचार करके प्रह्लादजी ने दैत्य सेनापतियों को आज्ञा दी कि सेना तैयार करके विष्णु लोक पर अभी आक्रमण कर दो। दैत्यगण तैयार हो गए। पार्षदों ने भगवान विष्णु को समाचार दिया कि सावधान हो जाइये। आपके भक्त आप पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहे हैं। भगवान को आश्चर्य हुआ कि यह क्या हुआ? मैं प्रह्लाद को अभयदान देने के बाद अब उन पर अस्त्र-शस्त्र कैसे चलाऊँगा। सोच विचार कर भगवान ने नारदजी का स्मरण किया। झट नारदजी आ गये। भगवान ने कहा आप का चेला बदल गया है उसे जाकर समझाओ। श्रीनारद जी ने आकर देखा तो प्रह्लादजी ने कवच धारण कर लिया था। नारदजी के चरणों में प्रह्लादजी ने नमस्कार किया। नारदजी ने ध्यान किया तो उन्हें मालूम पड़ गया कि सनकादिकों के अपराध से बुद्धि बदल गई है फिर तो नारदजी ने सनकादिकों का ध्यान किया। वे भी आ गए। नारदजी के दर्शन से बुद्धि कुछ सुधरी। नारदजी की आज्ञा से प्रह्लादजी ने सनकादिकों का पूजन-वन्दन किया तब बुद्धि शुद्ध हुई, विचार बदला। दैत्यों को वापस बुलाया कि रहने दो अभी आक्रमण नहीं करना है। सनकादिकों के अंश से ही श्रीप्रह्लाद जी का अवतार है। कई दिन तक सत्संग करके प्रह्लादजी संतुष्ट हुए और भूल पर पछिताए। संत के अपराध से सदा बचते रहने की प्रतिज्ञा की।

८१.—जीव के साथ जो भगवान के अनन्त उपकार हैं उनकी अहैतुकी कृपा है उसे कभी नहीं भूलना चाहिए। अपने साधन-भजन का भी अहंकार नहीं करना चाहिए। भगवान अपनी कृपा से जीव को प्राप्त होते हैं साधन बल से नहीं।

एक तपस्वी ने बहुत समय तक वन में रहकर कठोर तप किया। भगवान उसे दर्शन देने के लिए आए। उसने प्रणाम किया प्रभु ने कहा हम प्रसन्न हैं वरदान माँग लो। तपस्वी को अपनी तपस्या का अहंकार हो गया। उन्होंने कहा-मैं किसी से कुछ

नहीं माँगता हूँ तो आप से भी क्यों माँगू? मेरी तपस्या के वश उसके प्रभाव से आप आए हैं। अतः हम तो अपनी तपस्या के फल से मिलने वाला ऐश्वर्य चाहते हैं जितनी हमारी तपस्या है उसके बदले हिसाब करके दे दो। भगवान मन ही मन मुस्कराये और बोले हिसाब साथ नहीं लाया हूँ फिर किसी दिन आकर हिसाब बताऊँगा। भगवान अन्तर्धान हो गए। दूसरे दिन ईश्वर की माया से गर्मी का ऐसा प्रकोप हुआ कि उस वन के सभी कुण्ड कूप आदि सूख गए। अब तपस्वी को प्यास लगी, चारों ओर बहुत दूर तक जल नहीं मिला, प्राण निकलने लगे। इतने में एक किसान एक घड़ा जल लेकर निकला, उससे तपस्वी ने जल माँगा। उसने कहा यह जल बड़ा कीमती है ऐसे नहीं मिलेगा। बड़ी प्रार्थना करने पर जीवन की आधी तपस्या के बदले आधा घड़ा जल उसने दिया। प्यास बुझाई प्रसन्न हुए। भगवान ने आकर हिसाब बताया कि कई हजार वर्षों का नरक आप को मिलना चाहिए। आप पर मेरा बहुत बड़ा कर्ज है। आपने आधी तपस्या से आधा घड़ा जल लिया। जीवन भर के तप से एक घड़ा जल आपका था पर जाने कितना जल, वायु, सूर्य, चंद्र की रोशनी फल-फूल, धरती का आपने उपयोग किया यह सब क्या तुम्हारा बनाया है? तपस्वी को होश आया चरणों में पड़ गया। प्रभु ने कृपा की। नर शरीर पाकर भवसागर पार न करने वाला आत्महा है। स्वयं उसका दोष है अन्य का नहीं।

८२.—श्रीनारद जी कृष्ण लीला को देखकर बोले-अरी यशोदा! मैं तेरे भाग्य की बड़ाई कहाँ तक करूँ। जिसके दर्शन ब्रह्मा, इन्द्र, शंकर को दुर्लभ हैं, प्रेमीजन कठिनाई से दर्शन पाते हैं वह परिपूर्ण ब्रह्म तुम्हारी गोद में बैठने के लिए मचल कर धरती पर लोट रहा है। बड़ा भारी सौभाग्य है तुम्हारा। रोते कृष्ण को देखकर माता की महिमा गाने लगे।

८३.—बिल्वमंगल ने एक श्लोक में कहा है-अरे ब्रह्म को ढूँढ़ने वालों सुनों! तुम वेदान्तरूपी वन में खोजते-खोजते थककर निराश हो गए हो अब इधर गोपियों के घरों में आओ, देखो, उपनिषद् का ब्रह्म कृष्ण ऊखल में बँधा है इसे प्राप्त कर लो। इससे श्रेष्ठ कोई तत्त्व नहीं है।

८४.–**'कृष्णं वंदे जगद्गुरुम्।'** गुरुओं के गुरु भगवान श्रीकृष्ण हैं। अर्जुन को श्रोता बनाकर गीता में, उद्धव को श्रोता बनाकर श्रीभागवत में सभी मनुष्यों के लिए उपदेश दिए हैं। सारे जगत का कल्याण करने वाले उपदेश हैं अतः वे जगद्गुरु हैं। स्वयं ब्रह्म से उत्पन्न जगत भी ब्रह्म है। ज्ञानी भक्त की दृष्टि में संसार नहीं ब्रह्म ही है। अनेक रूपों को धारण कर प्रभु ही इस जगत के रूप में हैं। ज्ञानी भक्त की दृष्टि में संसार नहीं है और विमुख नास्तिक कि दृष्टि में ब्रह्म नहीं है। कपूर की गंध को कुत्ता और केशर की गंध को गधा नहीं पहचान सकता है।

८५.–भावुक जिसका अनुभव करता है उसे नास्तिक नहीं जान सकता है। जो पदार्थ रागी विषयी को प्रिय हैं वे विरागी को अप्रिय होते हैं। रागी को मान-बड़ाई अमृत के समान लगती है। विरागी को वह विष के समान प्रतीत होती है। संसार के सुख तो तुच्छ और क्षणिक हैं, देवताओं के सुख भी विरागी को अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर पाते हैं। संसार के सुखों से मन के हटने पर परमात्म सुख अपने आप मिलने लग जाता है।

८६. श्रीकृष्ण ने गोवर्धन के रूप में प्रकट होकर अपने को सबके लिए सुलभ कर दिया। गोवर्धन को समझने से श्रीकृष्णतत्त्व समझ में आ जाता है। बड़े भारी वजन और अति हल्के प्रभु हैं। सब गुरुओं के गुरु गोवर्धननाथ हैं, इसी से गुरुपूर्णिमा को अपार जन, देव, दानव, मानव दर्शन और प्रदक्षिणा करते हैं।

८७.–**'गोषु दत्तं न नश्यति।'** गाय के निमित्त दिया गया दान कभी नष्ट नहीं होता है अर्थात् वह अक्षय पुण्य है।

८८.–संसार मृगतृष्णा के समान है इसमें एक बूंद भी जल नहीं है। सुख के लोभ से प्राणी संसार की उपासना करता है पर सुख यहाँ है ही नहीं तो मिलेगा कैसे? दुःखालय और अशाश्वत् संसार में मृग की तरह जीव भागता-दौड़ता है, केवल श्रम ही हाथ लगता है। एक देहाती आदमी शहर में आया तो उसका मित्र मिल गया उसने कहा कि तुमने कभी सिनेमा नहीं देखा है, चलो सिनेमा दिखलाऊँ। दोनों जाकर बैठे तो सिनेमा में नदी का प्रवाह दिखाई पड़ा। देहाती को प्यास लगी थी वह उठकर पानी पीने दौड़ा। मित्र ने पकड़ लिया और कहा कि वहाँ पानी नहीं है, दिखाई तो पड़ता

है पर पीने को नहीं मिलेगा। इसी तरह संसार में सुख दिखाई देते हैं। सुख की आशा से संसार में प्रवेश करने पर दुःख ही मिलते हैं। बड़े से बड़े सेठ साहूकारों से पूछ लो वे मन से या तन से या धन से दुःखी होंगे। अतः संसार के विषयों का भोग जीवन धारण करने के लिए शास्त्र की आज्ञानुसार करना चाहिए, उपासना इष्टदेव की करनी चाहिए। लोग कहते हैं कि विज्ञान ने हमको बहुत आगे बढ़ा दिया है बड़ी तरक्की हुई है। एक अखवार का कार्टून था। इन्दिरा गांधी मरकर गई तो वहाँ बापूजी मिले उन्होंने पूछा कहो देश की कितनी तरक्की हुई। इन्दिरा ने कहा पूरा वर्णन तो नहीं कर सकती पर आप गणित लगाकर समझ लीजिए। आपको तीन गोलियाँ लगीं थी ओर हमको पच्चीस गोलियाँ लगीं। इसके बाद वहाँ राजीव गांधी से पूछा गया तो उन्होंने बताया कि गोलियों के स्थान पर बमों का प्रयोग होता है, यह है नये विज्ञान की तरक्की। बालक विद्यालय से पढ़कर आते हैं तो पुस्तकें रखने के पहले टी० वी० का बटन दबाते हैं। छोटे बड़े स्त्री पुरुष युवा बालक एक साथ गन्दे भद्दे चित्रों को देखते हैं इससे चारित्रिक हानि होती है समय का दुरुपयोग होता है आँखे खराब होती हैं। जो समय अध्ययन भजन में लगना चाहिए वह टी० वी० देखने में लग जाता है अतः सावधानी से टी० वी० को देखो। हो सके तो देखना बन्द ही कर दो।

८९.–**'कबहुँकि दुःख सब कर हित ताकें।'** (मानस–उत्तर १११/१)

सभी का भला चाहने वाला दुःखी नहीं होता है।

९०.–कोई पद ग्रहण की लोलुपता संसार में अच्छी नहीं है, इस दृष्टि से ही मैंने सम्मति प्रदान की थी कि जो इच्छुक हों वे उसे ग्रहण करके जनता की सेवा करें। परन्तु यदि विशेष बहुमत ने आपको पद भार सौंपा है सो ठीक है। आप जनता की सेवा कीजिए। आपने पदलिप्सा से पद पाने की चेष्टा नहीं की, दूसरों के आग्रह पर ग्रहण किया यह अनुचित नहीं है। अपने को जितना निःस्वार्थ रक्खा जा सके उतनी ही लोकप्रियता प्राप्त होगी। अब मैं भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि वे आपको सुचारु रूप से कर्त्तव्य निभाने की शक्ति प्रदान करें। आप भी सावधान रहें। पद पर रहकर किसी के साथ अपकार न बने और साथ-साथ अहंकार न आवे बस इसी में कल्याण है। मेरी सम्मति पदलिप्सा को त्यागने की थी, है। सेवा करने से रोकने की नहीं।

९१.–जीव भगवान का दास है। यह संसार की किसी वस्तु का मालिक नहीं है। अपने एक रोम का भी मालिक नहीं है। दास होकर जब यह संसारी वस्तुओं का स्वामी बनता है तब इसे अनेक दुःख प्राप्त होते हैं। **'दासोऽहं कौशलेन्द्रस्य'** मैं श्रीराम का दास हूँ, इसे ही दृढ़ करना चाहिए।

९२.–ईश्वर की भक्ति में श्रद्धा-विश्वास की सबसे पहले आवश्यकता है। जो भक्त प्रकृति के हैं ऐसे लोग तो हृदय में भक्ति को लेकर जन्म लेते हैं वे बड़भागी हैं। परन्तु जिनमे भक्ति के, आस्तिकता के संस्कार नहीं हैं, नई सभ्यता में पले हैं, कुसंग में पड़े हैं ऐसे लोगों को ईश्वर में, उसकी सत्ता में विश्वास ही नहीं होता है। वे तो प्रत्यक्ष में ही विश्वास करते हैं। ईश्वर को कोई प्रत्यक्ष दिखा नहीं सकता है क्योंकि स्थूल नहीं हैं। पत्थर किसे कहते है तो उठाकर उसे दिखाया जा सकता है कि यह पत्थर है। इस तरह ईश्वर को नहीं दिखाया जा सकता है। शास्त्र, संत कहते हैं उनकी बातों में विश्वास करके भगवन्नाम रूप की आराधना करने पर ईश्वर हृदय में अपना अनुभव कराता है। अन्ध विश्वास के बिना काम नहीं चलेगा। बिना तर्क के बात मान लेने पर उसकी सत्यता का बोध हो जाता है। **'क'** को यदि कोई **'क'** न माने, तर्क करे कि इसे **'क'** कहते क्यों हैं? यह **'क'** नहीं है, ऐसा अविश्वासी नहीं पढ़ सकेगा।

९३.–**'श्रीरामः शरणं मम'** इसे याद रखना चाहिए, जपना भी चाहिए। **'श्रीराम तवास्मि'** (हे श्रीराम मैं आपका हूँ आपका दास हूँ) यह मन में समझने और जपने के मंत्र हैं। जिसे याद न हो उसे याद करा देना चाहिए।

९४.–भक्तों के कष्टों को दूर करने के लिए श्रीहनुमान जी सदा तत्पर रहते हैं। मैं-आप सभी श्रीहनुमान जी से विनती करें कि आप अपने दासों के दुःख दूर कीजिये। भक्तजन अपने हृदय में समस्त विश्व के कल्याण की भावना करते हैं।

९५.–कार्तिकमास में किए गये पुण्य अक्षय होते हैं। परिक्रमा, तुलसी पूजन, दीपदान आदि की विशेष महिमा है। ब्रज में भी विशेष रूप से इस मास का आदर होता है।

९६.–इन्द्रप्रस्थ ही दिल्ली है। यहाँ पाण्डवों के, द्रौपदी तथा कुन्ती के प्रेम से लोकपावन संत एवं भगवान श्रीकृष्ण बार बार आते जाते रहते थे और प्रेमपूर्वक यहाँ

रहते भी थे। इसी से इस भूमि में भक्ति के परमाणु व्याप्त हैं। स्त्री-पुरुष एक से एक बढ़कर प्रेमी दिखाई पड़ते हैं। उनके भजन-साधन, प्रेम को देखकर हमको संकोच होता था कि हम इनको क्या सत्संग सुनावें। अधिकांश लोग विशुद्ध भक्ति का वरदान माँगते थे। हमको कपट भक्ति मत देना। मैं कहता था उसे तो मैं अपने पास रक्खूँगा तुम्हें निष्कपट प्रेम ही मिलेगा।

९७.–वृद्धों की, गायों की सेवा से पूर्ण कल्याण है। परोपकार ही भक्ति है उसी से प्रभु प्रसन्न होते हैं।

९८.–**'हरिस्मृतिः सर्व विपद् विमोक्षिणी।'** सभ्य का प्रथम लक्षण तितिक्षा है। सहनशीलता से सभी आपत्तियाँ दूर हो जाती हैं। धरती की भाँति सज्जन में सहनशीलता रहती है। उसका विविध प्रकार है उसका आश्रय लेना ही है।

९९.–मंगलमय परमात्मा के सभी विधान मंगलमय ही होते हैं। भक्त का यह दृढ़ विश्वास रहता है।

१००.–वैष्णव तीन प्रकार के होते हैं :–

(एक). वे जो अनुभव योग्य हैं जैसे व्यास, शुक, नारद, प्रह्लाद, तुलसीदास, नरसी, सूरदास आदि। इनका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं है। इनके रूप-लीला आदि का एकाग्र मन से अनुभव करके, उनमें प्रेम करके कृतार्थ होना चाहिए।

(दो). जो वैष्णव वर्तमान हैं इनका दर्शन, सत्संग, सेवा करके आदेश उपदेशों का पालन करके भवसागर पार करने का दृढ़ निश्चय करना चाहिए।

(तीसरे). वे हैं जो भजन में बाधक बनकर दु:ख देते हैं। संत-भगवन्त की निंदा करते हैं। उनसे शत्रुता या मित्रता नहीं करनी चाहिए। नामापराध और वैष्णवापराध समान ही है, इनसे सर्वदा बचने का प्रयत्न करना चाहिए।

'उदासीन नित रहिय गोंसाईं। खल परिहरिय स्वान की नाईं॥'

१०१.–भगवान का पूजन, अपना स्नान आदि कृत्य समय से करना चाहिए।

प्रात: सोकर उठने से पूर्व भगवत् स्मरण करके शय्या का त्याग करना चाहिए। स्नान करते समय गंगा, यमुना, अयोध्या आदि तीर्थों का स्मरण करना चाहिए।

अपने से छोटों को शिक्षा देने के लिए स्वयं बुरी आदतों को त्यागकर अच्छे आचरण करना चाहिए। छोटे लोग बड़ों के आचरण से शिक्षा लेते हैं।

१०२.–प्रभु जैसा चाहेंगे वैसा ही होगा। जो होगा सो ठीक ही होगा।

१०३.–करुणामय प्रभु की सदा ही जीवों पर कृपा रहती है। प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी प्रभु कृपा का फल हैं।

१०४.–जन्म ही मृत्यु का कारण है। प्रारब्धवश दूसरे रोगादि कारण बनते हैं। अभिमन्यु की मृत्यु पर युधिष्ठिर को शोक मोह हुआ। उसे दूर करने के लिए वहाँ महाभारत में मृत्यु का निरुपण हुआ है। काल ईश्वर का ही स्वरूप है। मृत्यु मंगलमयी होती है। जब तक शरीर है ईश्वर से मिलन में बाधक है। शरीर नष्ट होते ही प्रभु से मिलन होगा अतः मृत्यु का स्वागत है। एक मृत्यु के बाद पुनर्जन्म और जन्म के बाद मृत्यु यह क्रम जो चौरासी चक्र का है भयोत्पादक है। मृत्यु वह उत्तम है जो अन्तिम हो। वैष्णव लोग चौरासी चक्र से बचकर जन्म लेते हैं। शरीर धारण कर आराधना-भजन, सत्संग करते हैं। ऐसे जन्म-मरण से भक्त भयभीत नहीं होते हैं। उनका जन्म केवल भक्ति का आचरण करने कराने के वास्ते होता है।

१०५.–**'अंघ्री अम्बुज पांशु को जनम जनम हौं जांचिहौं।'** भक्तचरण कमल की रज को मैं जन्म जन्मान्तर में माँगता हूँ। उसे सिर पर धारण का सौभाग्य मिले तो जन्म-मरण से भय नहीं है। जन्म का उद्देश्य सत्संग-भजन है अतः मोक्ष कैवल्य अभीष्ट नहीं है। शरीर के बिना भजन नहीं होगा। धाम में सेवा का सौभाग्य मिले अथवा पृथ्वी पर मिले। ब्रह्मलीन होने पर सेव्य सेवक भाव का नाश हो जाता है अतः वह अनिष्ट है।

१०६.–जब मानव के मन में शुभ भावनाएँ, शुभ संकल्प होते हैं तब वह पवित्र है, सकुशल है। अन्यथा अपकारी, अनाचारी न तो कभी शुद्ध है और न उसका मंगल है। पवित्र उद्देश्य के होने पर सामान्य धर्म भी महान फलदायक होते हैं। उद्देश्य के हिंसात्मक होने से पुण्य कर्म भी पापमय हो जाते हैं।

१०७.–हमारा जन्म भारत में हुआ है। हम सनातन वैदिक धर्मावलम्बी हैं। यह अनादि धर्म है। इस्लाम धर्म और कुरानशरीफ उनके पैगम्बर हजरत मुहम्मद चौदह सौ वर्ष पहले नहीं थे। ईसा तथा ईसाई धर्म उन्नीससौ सत्तानवे वर्ष पूर्व नहीं था। इसी तरह बौद्ध धर्म तीन हजार वर्ष पहले नहीं था। आज इन धर्मों के अनुयायी करोड़ों हैं पर

सनातन वैदिक धर्म अनादि और अनंत है। इस धर्म में रीतियाँ हैं उनमें अहिंसा, सत्य, क्षमा, अस्तेय, दया आदि गुण हैं। दूसरे धर्मों में इस प्रकार के उत्तम गुण आदि से अन्त तक नहीं हैं, अतः इस धर्म में राम-कृष्ण की उपासना भी सनातनी है। उसी की आराधना तन मन से करनी चाहिए। प्रभु हृदय के प्रेम को देखकर रीझ जाते हैं। अपनी शरण में आए पर कृपा करते हैं। अपनाकर फिर त्याग नहीं करते हैं। उन्हीं की शरण में हम हैं। वे ही विश्व कल्याणकर्ता हैं। उनकी कृपा सब पर बनी रहे।

भवसागर के पार का सारा साज समाज सुलभ है फिर यदि हम न तरे तो हमारे समान अज्ञानी कौन होगा?

१०८.—बालकवृन्द अध्ययन में ध्यान दें। दयामयी श्रीकिशोरी जी, श्रीहनुमान जी हमारे सबके ऊपर कृपा बनाए रहें। धर्म की, गाय की रक्षा हो। विश्व का कल्याण हो। महत्वाकांक्षा अपने मन में नहीं रखना चाहिए। लोग हमको जो पद दें उस पद पर रहकर सेवा करनी चाहिए।

१०९.—संत, सती आदर के योग्य हैं। सती नारी सबका मंगल करें।

११०.—स्वामी रामानंदाचार्य ने प्रकट होकर अपने प्रभाव से यवनों के अत्याचारों को रोका और हिन्दू धर्म की रक्षा की, नहीं तो शायद आज ये हिन्दुओं के मठ मंदिर न दिखाई पड़ते। यदि आप यह कहें कि उन्होंने यवन राज्य को सर्वथा समाप्त क्यों नहीं कर दिया, हिन्दूसाम्राज्य की स्थापना क्यों नहीं की, तो उत्तर यह है स्वयं भगवान और आचार्य युगधर्म के अनुसार अपने तेज को, अपने रूप को प्रकट करते हैं। कलि के अन्तर्गत जितना उचित था उतना किया। क्योंकि कलियुग को और उसके धर्म को बनाने वाले प्रभु ही तो हैं अतः सीमित दमन किया।

सत्युग में तप, त्रेता में यज्ञ, द्वापर में पूजा में शक्ति थी पर कलियुग में संघ में शक्ति है। **'संघे शक्ति कलौयुगे।'** हिन्दू मात्र को संघटित होकर धर्म रक्षा, राम जन्म भूमि मंदिर बनाना चाहिए इसी से विश्व कल्याण है।

१११.—आप लोगों का स्मरण बार-बार आ रहा है। आना भी चाहिए। इस मृत्यु लोक में यदि परस्पर स्नेह है तो यही स्वर्ग है यदि द्वेष है तो यह लोक नरक ही है।

११२.–इष्ट की, हनुमानजी की उपासना से अरिष्ट ग्रह शांत हो जाते हैं।

'ब्रह्मामुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च।
गुरुश्चशुक्रः शनि राहु केतवः सर्वे ग्रहा शान्तिकराभवन्तु॥'

इस मंत्र को सायं प्रातः पढ़ने से ग्रह शांत हो जाते हैं। इन ग्रहों की पूजा गोपालार्चन और रामार्चन में भी होती है। इनकों हम क्रूर मानते है तो डर लगता है यदि इन्हें सौम्य भक्त माने तो ये भय कारक नहीं हैं।

सूर्य देव–प्रभु के नेत्रों से प्रकट हुए ये भगवान के नेत्र हैं। वर्ष, ऋतु, मास, सृष्टि, पालन, लय सब कुछ के कर्ता कहकर उपनिषद में इन्हें नारायण भी कहा गया है। ज्ञानमय प्रकाशकर्ता को हनुमानजी ने गुरु बनाया। सूर्यवंश में रामावतार हुआ, आदि-आदि प्रकार से इनमें सद्भाव रखने पर सूर्य से भय नहीं होगा।

चन्द्रमा–वेद में **'चन्द्रमा मनसोजातः चक्षोः सूर्योऽजायत।'** ऐसा लिखा है। श्रीकृष्ण के मन से चन्द्रमा प्रकट है। चन्द्रमा श्रीकृष्ण का मन है। तापहारी है, शांत सौम्य प्रकाशकारी है। राम कृष्ण आदि शब्दों के आगे लगकर धन्य हो जाता है। इस वंश में श्रीकृष्ण का अवतार हुआ अतः ये भी धन्य हैं। पुनः ब्रह्मा के अंश से माता अनसूया से प्रकट हुआ। अत्रि-अनसूया का पुत्र होने से यह भक्त ग्रह है। श्रीकृष्ण भक्तों के अनुकूल रहता है। इससे भी डरना नहीं चाहिए। गुणों के सामने दोष नगण्य हैं।

मंगल–भू देवी लक्ष्मी हैं अतः लक्ष्मी नारायण के पुत्र मंगल हैं। जैसा इनका नाम है उसी प्रकार ये मंगलमय हैं। धरती माता के पुत्रों को धरती के पुत्र से डरने की जरुरत नहीं है क्योंकि उसके साथ स्वतः भ्रातृभाव सिद्ध है।

बुध–यह सच्चा नाम है। बुध=पण्डित। पण्डित समदर्शी होता है। चन्द्र का पुत्र है। उसके गुण इसमें हैं, ये अति सुन्दर हैं, सुन्दर हृदय वाले हैं सौम्य हैं, सौम्यगुणों से युक्त हैं अतः इनसे डरे नहीं।

बृहस्पति–देवताओं के, ऋषियों के गुरु हैं अतः हम लोगों के भी गुरु ही हैं। गुरु का स्वरूप अति कृपामय है। गीता में श्रीकृष्ण ने इन्हें अपनी विभूति बताकर पूज्य बताया-**'पुरोधसां च मुख्यं मा विद्धि पार्थ वृहस्पतिम्।'** भागवत में लिखा है कि ये ब्राह्मणों के, सज्जनों के सर्वदा अनुकूल ही रहते हैं अतः भक्त को इनसे भय नहीं है।

शुक्राचार्य–दैत्यों के गुरु हैं। सभी शास्त्रों के प्रवक्ता हैं। महर्षि भृगु के वंश में हैं। अपने तामसी स्वभाव से दैत्य इनके सात्विक उपदेशों को नहीं मान पाते हैं।

'मन्त्रतः तन्त्रतश्छिद्रं देश कालार्हवस्तुतः सर्वं करोति निश्छिद्रं नाम संकीर्तनं तव' परमतत्त्व नाम भगवान के महत्व के ज्ञाता हैं। मन्त्र–तन्त्र–देश–काल–वस्तु आदि के दोषों को दूर करने वाला आपका नाम है। नाम लेने से सभी कर्म निर्दोष हो जाते हैं। ऐसे तत्त्वज्ञ भक्त हैं शुक्राचार्य। **'कवीनामुशना कविः'** कहकर प्रभु ने कहा कि कवियों विवेकियों में उशना=शुक्र मैं ही हूँ। भक्त भगवत्स्वरूप होने से ये भी भक्तों के अनुकूल हैं। इनकी महिमा जानकर इनमें श्रद्धा रखने वाले को इनसे भय नहीं होगा।

शनिदेव–सूर्य के पुत्र शनिदेव बड़े भक्त हैं। एक बार ये श्रीकृष्ण के चरण कमलों का ध्यान कर रहे थे। उस समय इनकी समाधि लग गई थी। इसी समय परम सुन्दरी इनकी पत्नी आयी और प्रार्थना करने लगी कि मेरी ओर देखकर मुझे प्रसन्न करो। शनिदेव सिर को नीचे कर के ध्यानमग्न बैठे थे। पत्नी के आने का उन्हें कुछ पता नहीं। पत्नी ने कुपित होकर शाप दिया कि मेरी ओर नहीं देखते हो सिर झुकाये बैठे हो। इसी प्रकार सिर को झुकाये रहो यदि सिर उठाकर देखोगे तो जिस के ऊपर आपकी दृष्टि पड़ेगी वह नष्ट होगा, उसका अमंगल होगा। कुछ देर बाद जब इनकी समाधि खुली तो शनिदेव की पत्नी को दुःख हुआ। उसने बताया कि मैंने आप को शाप दिया है। इससे शनिदेव ने दुःख नहीं माना। तब से शनिदेव सिर को नीचा रखने लगे किसी को नहीं देखते थे। श्रीकृष्ण का ध्यान करते रहते थे। एक बार पार्वतीनन्दन गणेश का उत्सव था। सभी गणेश दर्शन से प्रसन्न हो रहे थे। शनिदेव गणेश की ओर नहीं देख रहे थे। पार्वतीजी ने कहा कि तुम मेरे पुत्र की सुन्दरता देखो। उन्होंने शाप की बात बताई फिर भी पार्वतीजी ने आग्रह किया तो शनि ने गणेश को देखा। उसी क्षण गणेश का सिर उड़ गया। पार्वती व्यथित हुईं। हाथी का सिर लगाकर शिव ने जीवित किया। तात्पर्य यह कि शनिदेव श्रीकृष्ण के भक्त हैं।

राहु–दैत्य थे। अमृत पान मोहिनी के हाथों से करके भाग्यशाली हुए। सर्वज्ञ प्रभु ने कृपा करके अमृत पिलाया। चक्र से सिर काटा गया। एक के दो हो गए। अब ये

दैत्य नहीं रह गये, देवता हो गये। प्रभु के रूप चक्र सुदर्शन हैं इनका स्पर्श होते ही सारे पाप मिट जाते है। चक्र स्पर्श से ये दिव्य हो गए। भगवत् स्वरूप हैं। इनकी इस महिमा का जिसे ज्ञान है उसे इनसे भय नहीं होता है। हमारे पाप कर्मो का फल हमें दु:ख देता है। ग्रह दु:ख दाता नहीं है। आकाश में इनकी स्थिति है। पापियों के कर्मानुसार उनके लिये दु:ख दाता हैं जैसे यमराज महाभागवत हैं पापियों को दण्ड देते हैं, भक्तों का स्वागत सत्कार करते हैं। पापियों को दण्डदाता होने से उनकी वैष्णवता में, भक्ति में कोई फर्क नहीं पड़ता है। **'सर्वेभक्ताः भगवन्तश्च।'** संसार में एक तत्त्व ईश्वर है उसके बाद दो तत्त्व हैं भक्त और भगवान इनसे भिन्न कुछ नहीं है।

११३.—लंका के युद्ध में सर्वत्र हनुमानजी के नारे दो श्लोकों में लिखे गये हैं :—

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणभिपालितः॥
दासोऽहं कौसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनुमाञ्शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः॥

अत्यंत बलशाली राम की जय हो। महाबली लक्ष्मण की जय हो। राघवेन्द्र के द्वारा पालित वानरराज सुग्रीव की जय हो। मैं कौशलेन्द्र श्रीराम का दास हूँ। उनके लिए विश्व का कोई कार्य कठिन नहीं है। ऐसे श्रीराम का दास हूँ। हनुमान मेरा नाम है, मैं वायु का पुत्र हूँ और राक्षसों का संहार करने वाला हूँ। उक्त श्लोक अभयदान देने वाले हैं। इनमें श्रीहनुमान जी की अनन्यता, वीरता, उपासना प्रकट है वह सभी भक्तों के लिए अनुकरणीय है।

११४.—सर्वत्र होली होती है ब्रज में होरा होता है। 'जग होरी ब्रज होरा।' उत्सवों में श्रावणी, दशहरा, दीवाली, होली चार मुख्य हैं। क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र ये चारों के पर्व हैं। कृष्ण से संबन्धित होने पर यह उत्सव गुणातीत हो जाता है अन्यथा यह शूद्र त्यौहार है। अधिक खान-पान में, रागरंग में लोग मतवाले हो जाते हैं। तमोगुण प्रधान रहता है। दीवाली वैश्य वर्ण की है लक्ष्मी पूजन प्रधान है। लंका विजय महोत्सव भी इसे मानते हैं। दशहरा आश्विन शुक्ल में अस्त्र-शस्त्र संचालन शक्ति प्रदर्शन आदि कर्म क्षत्रियों के हैं। ब्राह्मणों का त्यौहार श्रावणी है। विशेष स्नान, ऋषि-देव पूजन, विप्र कर्म प्रधान रहता है। ऋषि पूजन भी होता है।

११५.–आकाश से गिरा जल जैसे नाला नदी के मार्ग से घूम फिर कर समुद्र को ही जाता है उसी प्रकार गाय, ब्राह्मण, संत, देवी, देवताओं को किया गया नमस्कार भगवान श्रीकृष्ण को ही पहुँचता है। छोटे-बड़े, ऊँच-नीच में सर्वत्र प्रभु सम हैं अतः सर्वत्र नमस्कार किया जा सकता है। नीच को नमस्कार स्वार्थवश न करें। नाम का उच्चारण कर सबको नमन करें। वंदनीय की वन्दना से आयु, लक्ष्मी, कीर्ति की वृद्धि होती है।

११६.–आदान-प्रदान ही संबंध का द्योतक है **'सुर साधु चाहत भाव सिंधु कि तोष जल अंजलि दिए।'** देवता और संत लोग भाव प्रेम से संतुष्ट होते हैं वस्तु से नहीं, पर वस्तु बिना हृदय के भाव का पता नहीं लगता है। एक दीपक से सूर्य और एक अंजलि जल से समुद्र संतुष्ट हो जाता है। दीपक जल वस्तुमात्र सूर्य और सागर को क्या लाभ पहुँचा सकते हैं परन्तु इससे हृदय की श्रद्धा का परिचय पाकर वे देव एवं संत द्रवित हो जाते हैं। थोड़ी वस्तु को भी बहुत मान लेते हैं।

११७.–वेद शास्त्रों का अध्ययन कराकर आचार्य शिक्षा देते हैं कि सत्य बोलो धर्म का आचरण करो, फिर कहते हैं कि जो हमारे शुभ आचरण हैं उनका ही तुम सेवन, अनुकरण करो। मेरे अशुभ आचरणों का अनुकरण कदापि न करो। क्योंकि ईश्वर के अतिरिक्त कोई भी सर्वथा दुर्गुणमुक्त और सद्‌गुणयुक्त नहीं है। आचार्य यदि ऐसा न कहें तो कोई भी उपदेश के अधिकारी न होंगे। उपदेशक को स्वयं सदाचार युक्त होना चाहिए पर यदि शिष्य को कोई दोष दीखे तो उक्त वाक्यों के अनुसार उनका ग्रहण या अनुकरण करना चाहिए।

११८.–शुद्ध सदाचारी के पास तामसी शक्तियाँ आकर पीड़ा नहीं दे सकती हैं। हृदय में भक्ति की निष्ठायें दृढ़ करके तुच्छ चमत्कारों से प्रभावित नहीं होना चाहिए।

११९.–युधिष्ठिर को प्रभु ने सिखाया कि **'अश्वत्थामा मृताः'** कहो। पर उन्होंने नरो या कुंजरो यह जोड़ दिया। प्रभु आज्ञा से पूर्ण मिथ्या बोल देते तो आज्ञा पालन धर्म होता। अश्वत्थामा हाथी मरा है ऐसा कहते तो सत्य का पालन होता। बीच की बात कही अतः आज्ञापालन और सत्य दोनों में से एक का भी पूर्ण लाभ नहीं मिला। युधिष्ठिर का रथ धरती से चार अंगुल ऊपर उठकर चलता था, मिथ्या भाषण से धरती पर चलने लगा। अतः दुविधा में नहीं पड़ना चाहिए।

१२०.—अश्वत्थामा दुर्वासा आदि का भक्त विरोधी चरित्र देख सुनकर भी इनमें अश्रद्धा न हो, इनका तिरस्कार न किया जाय क्योंकि ये शिव के अवतार हैं। यदि ये ऐसा विरोध न करते तो भक्त महिमा का प्रकाश न होता। ये प्रातः स्मरणीय है। अश्वत्थामा आगे सप्तऋषियों में रहकर पूजा प्राप्त करेंगे। महान विरोधी ही महान भक्त की कीर्ति को उज्ज्वल बनाता है। ब्राह्मण की महिमा अपने स्थान पर सुरक्षित रहे। प्रतिकूल को अनुकूल मानना भक्तमाल का सिद्धान्त है।

१२१.—ब्रह्म तो अविनाशी है, उससे प्रकट होने के कारण जगत को भी कुछ आचार्य अविनाशी कहते हैं। इसकी परम्परा कब से चली है यह पता नहीं। ईश्वर का जगत भी अनादि अनन्त है। यदि यह जगत न हो तो ईश्वर की सत्ता-महत्ता को स्थान कहाँ मिलेगा? जगत से ईश्वर की, माया की सिद्धि होती है। जगत का अध्ययन किये बिना ज्ञान और भक्ति का तत्व समझ में नहीं आ सकता। ईश्वरीय ज्ञान के लिए जगत की आवश्यकता है। जिसके द्वारा ईश्वर का ज्ञान हो वह भी ईश्वर ही है। भक्ति से भक्ति होती है। जगत में जिसे ईश्वर का दर्शन या अनुभव नहीं हुआ उसे फिर ईश्वर दर्शन का अनुभव नहीं होगा। अतः प्राणियों अप्राणियों में सर्वत्र राधा-कृष्ण का ही आरोप करना चाहिए। कुछ काल में इस विचार के दृढ़ होने पर सभी बातें स्वतः बन जाती हैं।

१२२.—आज दशहरा है। **'विजयं ते महाबाहो सर्वत्र समदर्शन।'** प्रभु की, सत्व तत्त्व की ही सदा विजय है। उनका मंगल मनाने से जीव का भी मंगल होता है। सर्व विधि कल्याण होता है। शमी जिसे ब्रज में छोंकरा भी कहते हैं उसका पूजन करके श्रीराम ने आज विजयदशमी के दिन लंका पर विजय के लिए प्रस्थान किया। लोक में आज के दिन रावणवध लीला का प्रदर्शन प्राचीन प्रथा मात्र है।

१२३.—यदि हम सत्य, अहिंसा, सदाचार, क्षमा, दया आदि को अपने में स्थान दें तो हम सकुशल हैं। ईश्वर के आश्रित भक्तजन सकुशल हैं। विमुख नास्तिक लोक में सुखी होने पर भी वह सकुशल नहीं हैं क्योंकि उनका भविष्य दुःखमय है। जीवन में भगवद् भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है। भक्ति रहित योग यज्ञ आदि व्यर्थ हैं क्योंकि वे इस लोक तथा परलोक के क्षणिक सुखों को, भोगों को देने वाले हैं। अतः लोक के सभी कामों को करने के साथ प्रभु स्मरण करना चाहिए। हृदय से ईश्वर के आश्रित रहना

चाहिए। यदि कोई कहे कि हम स्वयं उपार्जन करते हैं ईश्वर का इसमें क्या साझा? तो यह प्रश्न होगा कि धरती, जल, आकाश, वायु, अग्नि ये तुमने बनाये हैं क्या? यदि ये ईश्वर के बनाए हैं तो उत्पादन में ईश्वर का हक है। उसे दिए बिना जो उपभोग करते हैं वे चोर के समान दण्डनीय हैं। ईश्वर को अर्पण करके किसी वस्तु को अपने काम में लाना चाहिए।

१२४.—संसार सम विषम दोनों रूप धारण करता है। माया अपना नृत्य करती है। सन्तजन उससे बचे रहते हैं। हम सरीखे मोहित होकर ईश्वर को दोष देते हैं। वस्तुत: जो कुछ होता है वह शरणागत भक्त के कल्याण के लिए ही होता है। भक्त भी कभी इस बात को समझ जाते हैं कभी नहीं समझते हैं। परिणाम सामने आने पर सब कुछ समझ में आता है तब भक्त ईश्वर को धन्यवाद देता है। संसार में इस समय तमोगुण की वृद्धि दीखती है। इससे विश्व की रक्षा परमात्मा ही करेगा। श्रीहरि: शरणम् श्रीहरि: शरणम् श्रीहरि: शरणम्।

१२५.—लोग नित्य मर-मर कर जमपुर को जा रहे हैं पर हम अपने को अजर-अमर मानकर यहीं रहना चाहते हैं यही सबसे बड़ा आश्चर्य है। देखते हुए नहीं देख रहे हैं। जानते हुए भी हम अनजान हैं। श्रीलाड़िली लाल कृपा करें तो कुछ काम बने। नहीं तो हम बिगाड़ते हैं, विश्वास की कमी है।

१२६.—सहयोग के लिए परमुखापेक्षी होना पड़ता है। सहयोगियों के पास अनेक विघ्न रहते हैं। खास समय पर इनकार कर देते हैं। जितना कुछ अपने से हो सके उतना करने के लिए तैयार होकर कार्य आरम्भ करना चाहिए। आगे हरि इच्छा।

१२७.—साधु-सज्जनों के सभी कार्य सज्जनता से बनते हैं। वे दुर्जनता का आश्रय लेकर किसी काम को नहीं बनाते हैं, भले काम बिगड़ जाए क्योंकि कुछ बिगड़ेगा तो लौकिक काम ही बिगड़ेगा। आध्यात्मिक कार्यों पर यानी साधन-भजन पर कोई असर नहीं पड़ता है।

१२८.—लोभवश कोई तुमसे धन चाहता है, अपनी सिद्धाई दिखा कर यदि कोई धन चाहता है वह धन लेकर के कल्याण नहीं कर पाएगा और उस धन आदि से अपना कल्याण भी नहीं कर सकता है। अर्थात् लोभी को दिया गया दान भी व्यर्थ है। लोभ तो सब पापों की जड़ है और वह हमारे भीतर घुसा बैठा है। मैं इस बात पर विचार

करता हूँ कि वाणी से तो कह देता हूँ कि मुझे लोभ नहीं है पर फिर लोभ की वृत्ति मन के भीतर दिखाई पड़ती है। विकारों का मन से निकलना कठिन है। शास्त्र में कहा है सत्व शुद्धि अर्थात् अन्तःकरण मन-बुद्धि-चित्त की और अहंकार की शुद्धि के बिना मन से विकार निकलते नहीं हैं। साधन बल से तो हम कुछ नहीं कर पाते हैं तब एक मात्र संत-भगवन्त की कृपा का भरोसा रह जाता है उसके भी हम पात्र नहीं हैं। स्वयं वे अपनी उदारता से अपने पतित पावन नाम को सत्य करने के लिए कृपा करें तभी हमारा उद्धार संभव है।

१२९.–पात्रता के अभाव में आशीर्वादों का वास्तविक लाभ नहीं मिलता। जैसे-रावण, होलिका, भस्मासुर आदि।

१३०.–धर्मशीलता को त्यागकर हम सुख सम्पत्ति चाहते हैं अतः मूढ़ हैं।

१३१.–भारतीय जनता कर्म भूमि में मानव जन्म पाकर धन्य-धन्य हो जाती है। हम लोग जंक्शन पर खड़े हैं। सब ओर की जाने वाली गाड़ियाँ खड़ी है। ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, साकेत वैकुण्ठ, रमा वैकुण्ठ, गो लोक वैकुण्ठ, इन्द्रलोक, शिवलोक, वरुणलोक, पितृलोक, नरक भी हैं। जहाँ जाना चाहो वहीं का टिकट लो अर्थात् उसी प्रकार के कर्म करो। कर्मों के अनुसार नरक-स्वर्ग को हम जा सकते हैं। जिसकी जैसी रुचि हो वह वैसा पुण्य करे या पाप करे। वेद-पुराण-शास्त्र और गुरुजन कहते हैं यदि दूसरों को दुःख दोगे तो नरक को जाना पड़ेगा। सुख दोगे तो स्वर्ग वैकुण्ठ मिलेगा। संसार के सभी प्राणी परमात्मा की सन्तान है अतः अपने ही हैं। ऐसा समझकर सच्चाई के साथ व्यवहार करने पर श्रीसीताराम जी प्रसन्न होते हैं।

१३२.–**'अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।**
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्।।'

नित्य वृद्धों की सेवा एवं बड़ों को प्रणाम करने का जिनका सहज स्वभाव हो गया है ऐसे लोगों की आयु, विद्या, यश और बल की वृद्धि होती रहती है। इन चारों

को बढ़ाने के लिए लोग अनेक प्रयत्न करते हैं पर सफलता दुर्लभ रहती है। बड़ों को प्रणाम और उनकी सेवा से सब कुछ मिल जाता है, सुरक्षित रहता है। प्रणाम का तात्पर्य नम्रता से है। जिसे प्रणाम करते हैं हमें उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए।

१३३.–**'भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाईं।'** (मानस-बाल० ६/२)

साधक साधु भी प्रकृति के अधीन होकर भलाई करने से चूक जाता है। जो जीव प्रकृति के वश में हैं, उनसे भूल होना, उनमें शंका होना स्वाभाविक है। श्रद्धा विश्वास से गणेश प्रतिमाओं ने दुग्ध पान कर आस्तिकों के हृदय में भक्ति भाव भर दिया। कई अविश्वासियों ने परीक्षा करके घटना को सत्य माना। किन्ही नास्तिकों के हृदय में आस्तिकता का उदय हुआ पर बहुतों ने इसे दंभ-पाखण्ड माना।

द्रौपदी बढ़ी साड़ी के बीच थी। उसका अंग उघरा नहीं। साड़ियों के पर्वत लग गए पर दुर्योधन, दुःशासन इतने पर भी कृष्ण की, द्रोपदी की महिमा को देखकर भी न समझ सके। प्रभु कृपा बिना, संत कृपा के बिना ईश्वर चरित्र में विश्वास नहीं हुआ। वर्तमान काल में गर्भ हत्या, गो हत्या आदि महान पापों से बचने के लिए प्रभु ने गणेश दुग्धपान घटना घटाई। मानव को चैतन्य करने के लिए यह घटना प्रभु ने घटाई है। इसे मानकर लोग लाभान्वित हुए। पाप बुद्धियों के न मानने से उन्हें हानि हुई है।

१३४.–पवित्र कर्मों से ब्राह्मण आदि योनियों में जन्म, पापों से कूकर शूकर चाण्डाल आदि योनियों में जन्म मिलता है। जाति का निर्णय जन्म से ही होता है कर्म के अनुसार मानने पर दिन में कई वर्णों के कर्म करेगा तो बार-बार जाति बदलेगी। जन्म और कर्म दोनों से वर्ण की पूर्णता होती है पर प्रधानता जन्म की है। कर्म न रहने पर ब्राह्मण बन्धु कहा जाएगा, प्रायश्चित करने पर वह पुनः ब्राह्मण है। सत्संग से शूद्र में भी उत्तम गुण आ जाते हैं। वह ब्राह्मण की तरह आदरणीय हो जाएगा, पर ब्राह्मण अगले जन्म में बनेगा। खान-पान-विवाह आदि में वर्ण की मान्यता आवश्यक है। अनन्य भक्त की कोई जाति नहीं है, पर वह अपने को उच्च वर्ण का नहीं कहेगा।

१३५.–जिसके अन्न को खाकर संत भजन करते हैं, उसका फल भोजन कराने वाले को मिलता है। तीर्थमें किया गया पुण्य विशेष फलदायक है।

१३६.–प्रातः काल सबसे पहले धरती माता को नमस्कार करके तब धरती पर पैर रखना चाहिए। धरती ये लक्ष्मी हैं। भू देवी भगवान के दायें रहती हैं। इनके ऊपर हम लोग बड़े उत्पात करते हैं पर धरती माता असंतुष्ट नहीं होती हैं। उनमें क्षमागुण विशेष रूप से है। जिसमें क्षमा गुण है वही बड़ा है। बदला लेने की भावना न रखकर प्राणियों के अपराध को क्षमा करना चाहिए। दण्ड देना राजा का काम है और मरने के बाद यमराज का काम है। हमारा क्षमा करना काम है। प्रभु सद्बुद्धि प्रदान करें।

१३७.–भूल जाना यह जीव का सहज स्वभाव है। जीव ने माता के गर्भ में ईश्वर के सामने यह प्रतिज्ञा की है कि इस बार गर्भ से निकलकर आप की प्रसन्नता के लिए ही कर्म करूँगा। जिससे फिर गर्भ में कष्ट न भोगना पड़े। पर बाहर आते ही माया के प्रभाव में आकर गर्भ की प्रतिज्ञा को भूल कर ऐसे कर्म करता है कि पुनः पुनः गर्भजन्य कष्ट सहने पड़े। शास्त्र और संत याद दिलाते हैं कि तुमने गर्भ में प्रतिज्ञा की है उसका पालन करो पर इस बात में उसे विश्वास नहीं होता है। कर्मजाल बहुत कठिन है। कर्मफल भोगने के लिए जन्म लेकर पुनः ऐसे कर्म करता है कि उन्हें भोगने के लिए कर्मवश गर्भ में आना पड़े, चौरासी लाख योनियों में जाना पड़े। अपनी इन्द्रियों को तृप्त करने के लिए शास्त्र मर्यादा के विरुद्ध कर्म आवागमन के चक्र में डालते हैं। परोपकार के लिए किए गए कर्म करके उन्हें ईश्वर को समर्पण कर देने पर आवागमन के चक्र में जीव नहीं पड़ता है। निष्काम कर्म करने में घाटा नहीं हैं। अपने निमित्त किए गए कर्म से अपना लाभ सम्भव नहीं है। परोपकार और ईश्वर के निमित्त किए कर्मों से जीव सच्चा लाभ प्राप्त करता है। लोक परलोक सुखमय हो जाते हैं। परोपकारी ही सच्चा संत है। ईश्वर और उनके भक्त बिना कारण ही के उपकार करते हैं। जय श्रीकृष्ण जय श्रीराधे।

१३८.–प्रातःकाल का पकाया अन्न सायंकाल तक बिगड़ जाता है फिर उसी के रस से पुष्ट हुए शरीर की नित्यता कैसे हो सकती है अर्थात् शरीर नाशवान् है। इसके लिए दूसरे जीवों को कष्ट देना उचित नहीं है। जहाँ-जहाँ जन्म हुआ उन सभी शरीरों से न जाने कितने पुत्र, मित्र, शत्रु हो गए आज उन सगे सम्बन्धियों के प्रेम को भूल गए अतः ये नित्य के साथी नहीं हैं। क्षण भर के सुख व्यर्थ हैं। दयालु परमात्मा माता

के समान सभी जीवों पर कृपा करता हैं अत: जीव का कर्तव्य है कि ईश्वर को और उसके भक्तों को न भूले। उनकी सदा सेवा करे।

१३९.–मसूरी का प्राकृतिक दृश्य अनुपम है। उसे देखने तथा मौज-शौक के लिए संसारी ही अधिक आते हैं। कई मन्दिर एवं सन्तों के आश्रम हैं। संतों का आवागमन कम होता है। सत्संग यदा कदा कहीं कहीं होता है। प्रकृति के सौन्दर्य भी ईश्वरीय हैं जिसका लक्ष्य जैसा है उसे वैसे दर्शन हैं। सौन्दर्य, माधुर्य, बल, कला, साहित्य, संगीत देखकर लोग उस पर मोहित होते हैं अपने मोहवश, परन्तु वह सौंदर्य आदि आया कहाँ से? यह विचारने वाले मूल ईश्वर को ही श्रेय महत्व देते हैं।

'जित देखौ तित श्याममयी है' एवम् **सिया राम मय सब जग जानी। करहुँ प्रनाम जोर युग पानी॥** का अनुसंधान करने वाले प्रत्येक प्राणी को, प्रत्येक पदार्थ को ईश्वर से सम्बन्धित-सम्पर्कित देखते हैं, अनुभव करते हैं यही वास्तविक सत्य है। सन्त-भगवन्त की कृपा से ऐसी दृष्टि जिनकी बन गई वे ही महाभागवत एवं श्रेष्ठ भक्त हैं उनमें और ईश्वर में ऐक्य है। **'हरिजन की अतिशय ठकुराई।'**

१४०.–ईश्वर सबको चैतन्यता प्रदान करता है। सारा संसार जड़ है। ईश्वर की चैतन्यता से चैतन्य होता है। ईश्वर स्वतन्त्र है। सारा जगत उसके अधीन है। जो भक्त ईश्वर के अधीन हो जाते हैं उनके अधीन ईश्वर हो जाते हैं। जय श्रीराधे जय श्रीकृष्ण।

१४१.–शरद ऋतु का उत्सव प्रधान रूप से वृन्दावन में होता है। वृन्दावन में रासोत्सव महारास पूर्णिमा के दिन होता है। यह उत्सव जनकपुरी में पुष्प वाटिका में श्रीसीताराम प्रथम मिलन के रूप में मनाया जाता है। अयोध्या में श्रीरामराज्याभिषेक के रूप में मनाया जाता है।

१४२.–भाग्य का भोग परमात्मा सर्वत्र प्रदान करता है। ईश्वर का वरदहस्त भक्त के सिर पर है। भगवान की दया बनी रहे।

१४३.–सायं-प्रात: थोड़ा भी समय भगवान की पूजा में लग जाए तो परम मंगल की प्राप्ति होती है।

१४४.–चि० दीर्घायु अध्ययन अध्यापन में लगे रहकर अपनी बुद्धि को पवित्र करें। ब्रह्मचारी विद्यार्थियों के नियम का पालन करें। खान-पान को सात्विक रखें। सूर्य को अर्घ्य नमस्कार, गायत्री जप नित्य करें। सज्जनों का संग करें। श्रीस्वामी हरिहरानन्द को

स्मरण करके उन्हें नमस्कार अवश्य कर लिया करें। अध्यापक आचार्य के पढ़ाए पाठ को सावधानी से कण्ठस्थ करें, अभ्यास करें। अपने से छोटों को पढ़ाया भी करें। मेरे लिए कभी-कभी पत्र लिखा करें। पिता-माता की आज्ञा का पालन करें। गाय में श्रद्धा रखें। पूर्वजों के, अर्जुन-कृष्ण-राम के उत्तम चरित्रों का अध्ययन करें। संसारी मिथ्या उपन्यास न पढें। सर्वदा प्रसन्न रहें।

१४५.–ठाकुर की माया से प्रेरित हम संसार की ओर जा रहे हैं पर भगवान की कृपा हमको कृपा करके ठाकुर की ओर आकृष्ट कर रही है। जब अपने ऊपर संकट आवे तो समझो कि प्रभु अपनी ओर आकृष्ट कर रहे हैं। जैसे-जैसे संकट आता है वैसे वैसे भक्त की भक्ति बढ़ती है अतः संकट से डरना नहीं है। नल दमयन्ती के ऊपर भारी संकट आया पर वे अपने धर्म से हटे नहीं। सब संकट दूर हुए वे प्रातः स्मरण के योग्य हैं। क्लेश नाशन के लिए उनका स्मरण किया जाता है–

कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्य च।
ऋतुपर्णस्य राजर्षेः स्मरणं कलि नाशनम्॥
पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्य श्लोको युधिष्ठिरः।
पुण्य श्लोका च वैदेही पुण्य श्लोको जनार्दनः॥

नल, युधिष्ठिर, श्री वैदेही जी और जनार्दन भगवान ये पुण्य श्लोक हैं। इनका चरित्र परम पवित्र है। अतः ये प्रातः स्मरणीय हैं। श्रीरामजी ने श्रीभरतलालजी को सबसे श्रेष्ठ बताया-**'पुन्यसिलोक तात तर तोरे।'** सभी पुण्य पवित्र चरित्र वालों में भरतजी आप श्रेष्ठ हैं। ये पवित्र चरित्र वाले हैं। इनके चरित्र में कोई दोष नहीं है, अतः इनके स्मरण से प्राणी पवित्र हो जाता है। नल दमयन्ती का चरित्र पढ़ने से क्लेश झगड़े नष्ट हो जाते हैं।

१४६.–विपत्ति के समय धैर्य, सम्पत्ति आदि के बढ़ने के समय क्षमा ये गुण सन्तों के हैं। संकट के समय भगवत् का स्मरण सहज ही होता है। अगर संसार में मनुष्य कष्ट का, संकट का अनुभव न करे तो वह ईश्वर की ओर क्यों जाएगा। सुख में संसारी प्राणी सुखों को भोगने में आसक्त हो जाता है। कोई एक बिरला मनुष्य जिसने पूर्व जन्म में श्रीकृष्ण की आराधना की है वह इस जन्म में आराधन में लग जायेगा।

पर सभी जीव जो आवागमन के चक्र में हैं वे जन्म लेते ही ईश्वर की आराधना में नहीं लग पाते हैं उन्हें सत्संग की प्राप्ति हो अथवा भयभीत होने पर वे ईश्वर की शरण में जाते हैं। रामजी का कथन है कि-

'जौं सभीत आवा सरनाई। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं॥' (मानस-सुं ४३/८)

जो माया या शत्रु के भय से डरकर मेरी शरण में आता है, रक्षा की प्रार्थना करता है मैं उसे प्राणों की तरह आदर देकर उसकी रक्षा करता हूँ। जीव मेरी शरण में आवे इसलिए भी वे कभी-कभी संकट में डाल देते हैं। भय-संकट देकर अपनी ओर आकृष्ट करते हैं।

१४७.-सद्गुरुदेव कहते थे कि जब विमुखों की संख्या बढ़ जाती है तो प्रभु अकाल दुर्भिक्ष प्रकट कर देते हैं। भूखे प्राणी कंठी-तिलक धारण कर नाम कीर्तन करके साधुओं के स्थान में जाकर पेट भरते हैं। भूखवश संत-भगवन्त की शरण में जाते हैं। कष्ट का स्वागत करके कष्ट निवृत्ति के लिए प्रभु की शरण में जाना चाहिए। संकट दूर हो जाएगा तब मैं भजन करूँगा, ऐसा कहने वाले भजन नहीं कर सकते हैं। संकट के समय भजन करने वाला, संकट के दूर रहने पर भी भजन करेगा।

१४८.-हनुमान जी मात्र दास्य रस के आचार्य नहीं हैं बल्कि भक्ति के पंच रसाचार्य भी हैं। ज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं। ज्ञानी-भक्त किसी को न तो मारता है और न किसी से मारा जाता है। लंका में जिन राक्षसों ने आपके शरीर का स्पर्श पाकर शरीर त्यागा वे सब मोक्ष के भागीदार हुए। भक्त का परोपकारी स्वभाव होता है, अतः लंका दहन कर आपने स्वर्ण भस्म बनाई। रावणरूप राजरोग को दूर किया।

१४९.-**'हरिर्हरतु पापानि।'** प्रभु मिलन में जो बाधक है, वही पाप है। उसे प्रभु दूर करें।

१५०.-आप सभी सत्संगी भाइयों के प्रेम से, सेवा से मन अति प्रसन्न है। लालपर में मोटे भैया के प्रेम से श्रीवृन्दावन का सा सुख मिला। ऐसा प्रेमी समाज दुर्लभ है। भविष्य में प्रभु जन्म दें तो ऐसे ही समाज में दें। मैंने तो विरक्त वेषभूषा, भाषा का आश्रय लेकर मात्र उदरपूर्ति की है। हृदय में भक्ति-ज्ञान के अंश को नहीं देख रहा हूँ। ऐसा लगता है कि अनन्त जन्मों तक ज्ञान-भक्ति से दूर रहूँगा। आप भक्त जन अनुराग करते हैं। इसका लाभ मिलेगा, ऐसी आशा है। इसी से निश्चिंत हूँ।

१५१.–**'दक्षिणा ज्ञान संदेशः।'** (भागवत) दक्षिणा श्रीलक्ष्मी जी का नाम है। रुचि प्रजापति और मनु (पुत्री) कन्या आकूति के गर्भ से इनका जन्म हुआ। यज्ञ भगवान के साथ आपका विवाह हुआ। दक्षिणा के बिना यज्ञ, ब्राह्मण भोजन आदि व्यर्थ हैं। दक्षिणा और यज्ञ भगवान का अवतार लोक कल्याणार्थ हुआ। दक्षिणा दो प्रकार की होती है। लौकिकी और आध्यात्मिकी। दोनों की महिमा है। दाता-गृहीता की विशुद्ध श्रद्धा से दोनों प्रभु को प्रसन्न करने वाली हैं। दोनों की आवश्यकता है। धन, धरती, अन्न, वस्त्र आदि लौकिकी दक्षिणा लोक व्यवहार में उपयोगी है। भगवत् सेवा में और जीवन यापन में भी परम आवश्यक है। इसका प्रयोग यदि यज्ञ में किया जाए तो वह यज्ञ सात्विक, सफल और प्रभु को प्रसन्न करने वाला होगा। बिना दक्षिणा का यज्ञ तामसी, असंतोष को पैदा करेगा। प्रभु से विमुखता प्रदान करेगा। अतः केवल भोगों को भोगने में शरीर परिवार के पोषण में उसका उपयोग होगा। अहं-मम का विस्तार होगा। ज्ञान का संदेश अर्थात् उपदेश, यह आध्यात्मिकी दक्षिणा है। लोक में, परलोक में भक्तिदात्री है। यह सूक्ष्म है। यज्ञ करने और कराने वाले इसे दे सकते हैं। लौकिकी-स्थूल दक्षिणा धन आदि यज्ञकर्ता यजमान ही दे सकता है। यज्ञ कराने वाला आचार्य इसे नहीं दे सकता है। ज्ञान का संदेश-उपदेश यजमान स्वयं और आचार्य भी ज्ञानमय-भक्तिमय आचरण करके देता है। शिष्य अपनी विशुद्ध भक्ति के आचरण से गुरु को प्रसन्न करेगा। उससे गुरु भी प्रेरणा प्राप्त करेगा। भक्ति को दृढ़ करेगा। इसमें शिष्य और यजमान अहंकार नहीं करेगा। वाणी, मन से भी अहंकार नहीं करेगा कि हमने दक्षिणा दिया। लेने वाला भी लेने का अहंकार नहीं करेगा। अहंकार शून्य आदान-प्रदान सात्विक और निर्गुण है, निर्दोष है। स्थूल पदार्थों के आदान-प्रदान में अहंकार रहेगा और वह सदोष है। यदि दाता-गृहीता की निर्गुणा श्रद्धा है तो वह स्थूल सोना-चाँदी-धन आदि की दक्षिणा भी अति सात्विकी एवं निर्गुण हो जायेगी। ज्ञान-भक्ति का वाणी से उपदेश उत्तम है पर आचरण करके उपदेश देना उत्तम से भी उत्तम है। ऐसे श्रीनरसी जी के एवं जलाराम बापू आदि सभी भक्तों के उपदेश आज भी सारी सृष्टि को दक्षिणा वितरित कर रहे हैं। ऐसे महादान दाताओं को बार बार नमस्कार है।

१५२.–भारत में सात बातें गौरव की हैं। उन्हीं से यह धरती टिकी हुई है, नहीं तो डूबकर रसातल को चली जाती। रहती तो नरक के समान दु:ख देने वाली होती। १. गाय २. ब्राह्मण ३. वेद ४. सती माताएँ ५. सत्यवादी ६. निर्लोभी और ७. दानी।

१. गाय–दूसरे राष्ट्रों में दूध के लिए गाय पाली जाती है। वे गाय की पूजा नहीं करते हैं। यहाँ सेवा और पूजा दोनों होती है। रोम-रोम में देवताओं का वास तो है ही। गोदूध, गोदधि, गोघृत, गोमूत्र, गोबर भी पावनकारी है। गाय के बिना यज्ञादि धर्म सम्पन्न नहीं हो सकते हैं। गो सेवा से अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थ तथा पंचम पुरुषार्थ श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति होती है। सबके आराध्य श्रीकृष्ण हैं, श्रीकृष्ण की आराध्या गौ है। गौ को पशु न मानकर माता मानते थे। गोपाल नाम स्वीकार कर सबको गौ पालन की शिक्षा श्रीकृष्ण ने दी। गाय विश्व की माता है।

२. ब्राह्मण–भारत में सनातन वैदिक धर्म में ब्राह्मण जगद्‌गुरु है। धर्म के रहस्य को बताने वाला, अपने तप-तेज से विश्व का कल्याण करने वाला, दान लेकर लोगों को पुण्य प्रदान करने वाला है। ऋषि मंत्रो के दृष्टा हैं अत: पूज्य हैं।

३. वेद–वेद ईश्वर के श्वास-प्रश्वास हैं अनादि हैं। ऋषि इनके कर्ता नहीं हैं, दृष्टा हैं। उसके रहस्यों के उपदेश सुनकर, समझकर प्राणी धन्य हो जाता है। वेद का तात्पर्य इतिहास, महाभारत, वाल्मीकि रामायण, अठारह पुराणों में वर्णित है। कलियुग में रामचरितमानस तथा अन्य भक्तों की वाणियों को भी वेद के तुल्य कहा जाता है। इसके अनुसार आचरण करना चाहिए।

४. सती–पतिव्रता स्त्री अपने पति को आत्मसमर्पण करती है। पति को छोड़कर दूसरे पुरुष को नहीं मानती है। सती होना, साधु होना कोई प्रथा मात्र नहीं है, यह तो अनिवार्य धर्म है। सती होने पर कानूनी रोक लगाना गलत है और किसी स्त्री को जबरदस्ती जलाना भी पाप है। स्वेच्छा से वह अर्धांगिनी नश्वर शरीर त्यागकर पति लोक में जाती है यह उसका अधिकार है। ऐसी पतिव्रताओं के प्रताप से लोग अपने धर्म का पालन कर अपने को कृतकृत्य बना लेते हैं।

५. सत्यवादी–सत्य से बड़ा कोई धर्म नहीं, असत्य से बड़ा कोई पाप नहीं है। सत्य व्यवहार से जगत चल रहा है। मिथ्या में अविश्वास होगा। आपस में विश्वास

के बिना काम नहीं चलता है। मिथ्यावादी का परिवार सम्पन्न नहीं रह सकता है। सत्यवादियों के सहारे धरती टिकी है।

६. **निर्लोभी**—लोभ सभी पापों की जड़ है। लोभ ही पाप का बाप है। लोभवश प्राणी हिंसा-चोरी आदि कुकर्म करता है। लोभ का त्यागने वाला सन्तोषी किसी को कष्ट नहीं देता है।

७. **दानशील**—ईश्वर के द्वारा मिला ज्ञान, वैराग्य, प्रेम, विद्या, अन्न, वस्त्र, धन आदि का समाज में वितरण करके रहना ही धर्म है। वितरण से वृद्धि होती है। दान न करने से उनका नाश हो जाता है। दानी में संतोष होता है। संतोषी को उत्तम रत्नों की प्राप्ति होती है।

इन सातों को स्वीकार करने वाला प्राणी श्रीकृष्ण का कृपापात्र बन जाता है। विश्व का उससे उपकार होता है। स्वयं सुखी रहकर वह दूसरों को सुखी रखता है। उसमें दया, क्षमा गुण आ जाते हैं। अतः दानी पृथ्वी को धारण-पोषण करने वाला है। भक्त भगवान की जय।

१५३.—भक्तों का सत्संग में प्रेम, श्रीसंत सेवा में प्रेम देखकर हमारे मन में संकोच होता है। हम अपनी पूजा कराते हैं, पर स्वयं संतो की सेवा यथोचित नहीं करते हैं। भक्तों की सेवा विधि देखकर शिक्षा मिलती है कि हमको भी इसी प्रकार संत सेवा करनी चाहिए।

१५४.—अपने द्वार पर उपस्थित साधु, संत, गौ, ब्राह्मण का पूजन न करके दूर देशस्थ का पूजन करते हैं यह ठीक नहीं। अपने गाँव-घर के जो भजन, पूजन, सत्संग करते हैं उनकी पूजा करके फिर बाहर के लोगों का पूजन करना चाहिए। भाई, स्त्री, पुत्र, मित्र जो भगवान के भक्त हैं, घर में विराजमान भगवान की, आए अतिथि की पूजा करते हैं, वे संत हैं उनकी सेवा करना हमारा कर्तव्य है। अन्यथा घर में नाग देवता प्रकट हो गए तो उन्हें मारते-भगाते हैं। नागपंचमी के दिन सर्प की पूजा करने जाते हैं। भक्त यदि अपने गाँव-घर का होता है तो उसकी उपेक्षा होती है। गाँव के जोगी को जोगना (नकली जोगी) कह कर उसका तिरस्कार होता है। दूसरे गाँव, देश के जोगी को

देखकर उसे सिद्ध मानकर पूजा जाता है यह ठीक नहीं। भक्त गाँव का हो, घर का हो उसकी पूजा होनी चाहिए। घर के, गाँव के वैष्णवों में प्रेम हो। प्राय: दु:ख में भगवान की भक्ति करते हैं सुख में नहीं। ऐसी भक्ति कच्ची है। पक्की भक्ति दु:ख और सुख में समान रहती है। सुख में स्मरण करने वाले को दु:ख नहीं होता है।

१५५.–अहंकारवश जीव संसार को अपना मानता है पर वह यदि अपना होता तो सदा साथ–साथ रहता। ईश्वर अपना है जो सर्वदा जीव के साथ रहता है। वह नरक में भी जीव के साथ को नहीं छोड़ सकता है। कृपामय श्रीकृष्ण आप पर दया करें।

१५६.–महाभारत में श्रीकृष्ण प्रत्यक्ष सबको दर्शन दे रहे थे पर भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, विदुर आदि को छोड़कर किसी ने कृष्ण को नहीं पहचान पाया क्योंकि उनके ऊपर संतों की कृपा नहीं थी। दुर्योधन को श्रीकृष्ण ने अपना विराट् रूप भी दिखाया फिर भी वे उन्हें पहचान नहीं सके। अपने चारों ओर माया का परदा डाले रहते हैं। लोग माया को देखते हैं कृष्ण को नहीं। अतएव राम, कृष्ण को माया मनुष्य कहा जाता है। वे ईश्वर अपनी माया से मनुष्यों के समान दिखाई पड़ते हैं। प्रभु स्वयं अपना स्वरूप दिखावें तब जीव उन्हें देख सकता है, स्वयं मिले तो जीव उनसे मिल सकता है अपने प्रयत्न से नहीं।

१५७.–परम मंगलमय भगवान श्रीसीताराम जी की कृपा से हमारा आपका सभी का मंगल है और होगा। यही मन में दृढ़ विश्वास रखना चाहिए। बड़े बड़े बलवानों के, बुद्धिमानों के भी सभी मनोरथ पूरे नहीं हुए। जो भक्ति सम्बन्धी हैं उन मनोरथों की पूर्ति यदि दूसरे जन्म में हो तो श्रीजी की कृपा समझो। मन में चिंतनशक्ति प्रभु की दी हुई है उसके अनुसार सबके बुरे भले मनोरथ इस जन्म में तथा अगले जन्मों में भी पूर्ण होते हैं। पर दुष्ट मनोरथों का पूर्ण होना नरकों का निवास है। भक्त के मनोरथों की पूर्ति में भगवद्धाम का निवास, सत्संग की प्राप्ति होती है।

१५८.–प्राणी अन्न–जल के अधीन होकर इतस्तत: भ्रमण करता रहता है। संसार में प्रेमी लोग इच्छा होते हुए भी एक स्थान पर नहीं रह पाते हैं। साधु–संत परोपकारी स्वभाव वश एक स्थान पर भी रहते हैं और भ्रमण भी करते रहते हैं उन्हें प्रणाम और धन्यवाद है।

१५९.—जब कोई पत्र लिखने लगता है तो सर्वप्रथम शरीर की बात आगे आती है क्योंकि उसका ही अहंकार मन में भरा है। ज्ञात हो कि शरीर न कभी अपना था और न कभी अपना रहेगा। शरीर प्रभु का है। इसे जैसे चाहें प्रभु रक्खें। प्रारब्ध के अनुसार सुख दु:ख मिलेंगे। अत: हमको चिन्ता नहीं करनी चाहिए। सर्वदा प्रभु का नाम ही लेना चाहिए। बिना संत-भगवन्त के नाम मुख से नहीं निकलेगा। संत-भगवन्त की कृपा बिना उनका सत्संग प्राप्त न होगा।

१६०.—पारस्परिक स्नेह, विश्व कल्याण की शिक्षा स्पष्ट रूप से श्रीकरपात्री जी से मुझे प्राप्त हुई। इसलिए विश्व कल्याणार्थ कुछ नाम स्मरण जप आदि करता हूँ।

१६१.—इस समय सारे संसार में घोर अशान्ति है। विनाश के कगार पर संसार खड़ा है। इस विश्व शांति को स्थापित करने के लिए नित्य एक माला नाम जप या एक स्तुति का पाठ करके प्रार्थना करनी चाहिए।

१६२.—वर्तमान समय में अनेक कल्पित मत मतान्तर बनाकर बहुत से जगद्‌गुरु भ्रामक प्रचार कर रहे हैं। उनके बहकावे में नहीं आना चाहिए। वे अपने को ही ईश्वर कहते हैं और दो मिनट में ईश्वर दर्शन कराने का लोभ देते हैं।

१६३.—शरीर के और मन के रोग अलग अलग हैं। निरोग मन होगा तो हृदय में ज्ञान-भक्ति-वैराग्य का उदय होगा। रोगी मन में संसार के भोगों की कामना उदय होती है। मन के रोगों को दूर करने के लिए सद्‌गुरु ही वैद्य हैं। उनके वाक्यों में विश्वास, विषयों की आशाओं का त्याग यह संयम हैं। इस प्रकार मन के रोग दूर होते हैं।

१६४.—**'ईस रजाय सीस सबहीं कें।'** (मानस-अयो० २८१/५) ईश्वर की आज्ञा सबके ऊपर है। सभी को इसका पालन करना पड़ता है। वेद शास्त्र प्रभु की आज्ञा हैं।

१६५.—माता एक तीर्थ है। आप अच्छी तरह से सेवा करें इसी से लोक परलोक बन जायेगा। श्रीराम जी प्रसन्न होंगे। इसके साथ अपनी जीविका का कुछ उद्योग भी करते रहो। मेरा आशीर्वाद है। कभी कभी दादाजी के दर्शन कर आया करो। मेरा स्मरण मात्र कर लिया करो। मेरा शरीर अस्वस्थ है। ज्वर शरीर में रहता है, फिर भी मैं यथायोग्य सेवा-कार्य करता हूँ। प्रभु में विश्वास है। चलते फिरते राम नाम का स्मरण करते रहो। भगवान सब कल्याण करेंगे। मैं शरीर से रुग्ण होने पर भी चिन्ता नहीं करता हूँ। मृत्यु

अपने समय से अवश्य ही होगी। पाप के परिणामस्वरूप रोग होंगे। सब कष्ट सहना पड़ेगा। इस विश्वास के साथ जीवनयापन करता हूँ।

१६६.–स्वकर्तव्य परायण सज्जन इस लोक में तथा परलोक में सुखी एवं शान्त रहते हैं। **'स्वधर्मे निधनं श्रेय:।'** अपने धर्म का पालन करते-करते ही शरीर पूरा करना चाहिए। **'परधर्मो भयावह:।'** दूसरे के धर्म का पालन करने में भय है। अपना धर्म परोपकार सेवा है। ईश्वर की शरणागति सर्वश्रेष्ठ धर्म है। धर्म का पालन करने से प्राणी लोक-परलोक में सुख भोगता है। स्वर्गादि से फिर इसी लोक में आ जाता है। सामान्य धर्म से परमधर्म श्रेष्ठ है। परमधर्म का पालन करने से ईश्वर भक्ति प्रेम की प्राप्ति होती है।

१६७.–घटनाएँ ही संसार का अध्ययन है। अनुभव कर्त्तव्य है। अकारण करुणा वरुणालय प्रभु श्रीराम जी की कृपा का अनुभव हो। सम्प्रति तामस की वृद्धि दिखाई पड़ती है। गो-विप्र-सन्तों पर संकट हैं। सात्विकता का आश्रय सुखप्रद है। धर्माश्रय से अर्थ-काम आदि की सिद्धि होती है। इतने पर भी हम धर्म का आश्रय नहीं लेते हैं।

१६८.–अन्त:करण=मन बुद्धि अहंकार ये सब अपने स्थान पर स्थित रहें तो उस व्यक्ति को ही स्वस्थ माना जायगा। भौतिक शरीर की स्वस्थता तब होती है जब वात, पित्त, कफ अपने स्थान पर अपनी सीमा में रहें तो शरीर को स्वस्थ माना जाएगा। अनेक कारणों से शरीर किसी का भी स्वस्थ नहीं रह पाता है। एक न एक दोष रहते हैं। नाशवान शरीर प्रतिक्षण क्षीण होता है अत: उसकी कुशलता का प्रश्न व्यर्थ है। मेरा शरीर वृद्ध है, शिथिल है।

१६९.–सगुण ब्रह्म का प्रकाश ही निर्गुण ब्रह्म है, सूर्य चन्द्र की धूप चंद्रिका की तरह।

१७०.–अपने गुरुजनों, पिता, माता से डरना चाहिए। यदि जीवन से भय निकल जाय तो वह व्यक्ति उद्दण्ड उन्मत्त और उच्छृंखल हो सकता है। मर्यादा का त्याग कर सकता है।

श्रीराम जी लक्ष्मण पुष्प लेने गए, विलम्ब हो गया अत: गुरुदेव से डर रहे हैं। **'जानि विलम्ब त्रास मन माहीं।'** गोसाईं तुलसीदास जी कहते हैं। **'जासु त्रास डर कहँ डर होई। भजन प्रभाव देखावत सोई।'** जिसके भय से स्वयं भय भयभीत रहता है वह प्रभु भयभीत होकर श्रीविश्वामित्र जी के भजन का प्रभाव प्रकट कर रहें हैं। पिता माता, गुरु, ब्राह्मण से डरने वाला दुष्टों से नहीं डरता है। **'विप्र वंश की असि प्रभुताई। अभय होय जो तुमहि डेराई॥'** श्रीराम जी ने परसुराम जी से कहा कि ब्राह्मण की

ऐसी महिमा है कि जो कोई उनसे डरता हैं वह निर्भय हो जाता है। रावण अपने आतंक से सबको डराना चाहता है। राम जी जिनसे डरते हैं, रावण उन्हें डराना चाहता है।

'जाके डर सुर असुर डेराहीं। निशि न नींद दिन अन्न न खाहीं॥'

१७१.–माया (प्रकृति) भगवान की शक्ति है। संसार शक्ति का कार्य है, अतः संसार भगवान से अलग नहीं हो सकता है। शक्ति के, माया के स्वामी श्रीकृष्ण हैं। शक्ति प्रभु के अधीन है। प्रभु शक्ति के अधीन नहीं हैं। जैसे काले गोरे रंग को शरीर से अलग नहीं किया जा सकता है, उसी प्रकार जागृत स्वप्न आदि अवस्थाओं को शरीर से अलग नहीं किया जा सकता है। वैसे ही भगवान शक्ति से सर्वथा रहित कभी नहीं हो सकते हैं। शक्तिहीन एकदेशीय होता है, सर्वशक्तिमान सर्वदेशीय होता है। इसलिए माया, जीव, ब्रह्म को नित्य मानना वैष्णव सिद्धान्त है।

१७२.–शारीरिक स्थिति अवस्था के अनुसार रहती है। अत्यंत वृद्ध शरीर है इससे जितना स्मरण भजन हो सके उतनी श्रीजी की कृपा समझो। लोग वृद्धावस्था के कारण व्याकुल होकर मृत्यु की इच्छा करते हैं। परिवारीजन भी अश्रद्धा वश वृद्ध की मृत्यु चाहते हैं परन्तु यह विचार उत्तम नहीं है। जब तक शरीर है उससे प्रभु का नाम उच्चारण या श्रवण होता है तब तक उसकी सार्थकता है। समय के सदुपयोग की आवश्यकता है। वृद्ध जर्जर शरीर से भी सत्संगी भाइयों का सत्संग मिल जाता है, कुछ हरि चर्चा सुनने को मिल जाती है। इसलिए मैं श्रीराधारानी से प्रार्थना करता हूँ कि वे शरीर को स्वस्थ रक्खें।

इति शुभम्